इस अंक में

1.	**आदिशंकराचार्य का मतस्थापन और धर्म प्रचार : समाजशास्त्रीय विमर्श** प्रोफेसर श्यामधर सिंह डॉ0 अशोक कुमार सिंह	1-13
2.	**आर्थिक सुधारों की अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र के निजीकरण की नीति की उपयुक्तता : एक आर्थिक विश्लेषण** डॉ0 पूनम सिंह	14-20
3.	**हस्तशिल्प : देश की सांस्कृतिक धरोहर, कारीगरी, रोजगार एवं विदेशी मुद्रा अर्जन का महत्वपूर्ण स्रोत : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** डॉ0 गजवीर सिंह डॉ0 नीरज राठौर	21-29
4.	**पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण एवं राजनीतिक सशक्तीकरण** नगारची जामरे	28-38
5.	**भारतीय राष्ट्रवाद के विमर्श का नया केन्द्र : सोशल मीडिया** विशाल शर्मा	39-45
6.	**झारखण्ड की भूमि व्यवस्था : छोटानागपुर के विशेष संदर्भ में** योगेश कुमार	46-52
7.	**प्राचीन भारत में वर्णाश्रम एवं पितृसत्ता : एक ऐतिहासिक अध्ययन** अभिनव अर्चना	53-62
8.	**डूँगरपुर नगर का भूमि उपयोग प्रतिरूप : एक भौगोलिक अध्ययन** डॉ. गोविन्द लाल सरगड़ा	63-68
9.	**म.प्र. के मंदसौर जिले के माध्यमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन** अनिल बाबू डॉ. अराधना सेठी	69-76
10.	**पंचायती राज संस्थाओं में शैक्षिक योग्यता का ग्रामीण विकास कार्यो पर प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन** शिवकरण निमल	77-83
11.	**शिक्षा में लैंगिक भेदभाव - एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** सुश्री तृप्ति रानी	84-90
12.	**भारत में स्वस्थ राष्ट्रवाद का विकास स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में** रेखा मौनी	91-97

13.	**ऋणग्रस्तता निवारण में सर छोटूराम की भूमिका दक्षिण-पूर्वी पंजाब का एक अध्ययन** डॉ. मन्जू बाला	**98-105**
14.	**राष्ट्रवादियों को संगठित करने में दादाभाई नौरोजी की भूमिका** डॉ0 प्रियंका कुमारी	**106-113**
15.	**सामाजिक चेतना और विद्यासागर नौटियाल का साहित्य** डॉ0 गुड्डी बिष्ट, पँवार	**114-121**
16.	**चंद्रशेखर की आर्थिक नीति** डा0 आनन्द कुमार	**122-129**
17.	**पुस्तक समीक्षा (भारत-चीन कूटनीतिक संबंध)** समीक्षक - डॉ. वीरेन्द्र चावर	**130-132**

पत्रिका के सदस्यों की सूची

(गतांक से आगे)

854. डॉ. रीता मौर्य, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, कन्या महाविद्यालय, भूड़, बरेली (उ.प्र.)

855. डॉ. गुड्डी बिष्ट पंवार, असोशिएट प्रोफेसर हिन्दी, एच.एन. बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उत्तराखण्ड)

856. संजीव कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, आदर्श डिग्री कालेज, नवाबगंज, बरेली (उ.प्र.)

857. नगारची जामरे, शोध अध्येता राजनीतिविज्ञान, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

858. श्रीमती नीतू मिश्रा, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, पी.एल. मैमोरियल पी.जी. कालेज, लखनऊ (उ.प्र.)

859. सुश्री रेखा मौनी, शोध अध्येत्री राजनीति विज्ञान, स्वामी विवेकानंद राजकीय स्नातकोत्तर कालेज, लोहाघाट, चम्पावत (उत्तराखण्ड)

860. अभयवीर सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, विवेकानंद महाविद्यालय, दरवाड़ा, बिजनौर (उ.प्र.)

861. अनिल कुमार, शोध अध्येता राजनीति विज्ञान, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

862. शिवकरण निमल, शोध अध्येता राजनीति विज्ञान, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

863. अनिल बाबू, शोध अध्येता, मंदसौर इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, मंदसौर विश्वविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

864. डॉ. प्रियंका कुमारी, मेघा, दरभंगा (बिहार)

865. डॉ. पूनम सिंह, असोशिएट प्रोफेसर अर्थशास्त्र, एस.आर.एस. गर्ल्स पी.जी. कालेज, बरेली (उ.प्र.)

866. विशाल शर्मा, शोध अध्येता पत्रकारिता एवं सृजनात्मक लेखन विभाग, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश)

867. डॉ. गोविन्द लाल सरगड़ा, असिस्टेंट प्रोफेसर भूगोल, सर्वोदय कालेज, कलिंजरा, बांसवाड़ा (राज.)

868. श्रीमती कविता कनौजिया, अस्थायी प्रवक्ता समाजशास्त्र, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत (उ.प्र.)

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी–जून 2019
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

आदिशंकराचार्य का मतस्थापन और धर्म प्रचार : समाजशास्त्रीय विमर्श

❑ प्रोफेसर श्यामधर सिंह
❖ डॉ0 अशोक कुमार सिंह

आधारपीठिका : आदिशंकराचार्य अद्वैत मत के कट्टर समर्थक एवं वेदान्तदर्शन व वेदान्त सूत्र के प्रसिद्ध आचार्य थे। वे 'ब्रह्मसूत्र' के प्रसिद्ध भाष्यकार माने जाते हैं। आदिशंकराचार्य को ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार के रूप में विशेष प्रसिद्धि है। वेदान्तदर्शन के अद्वैतवाद का प्रचार भारत में यद्यपि बहुत प्राचीनकाल से था किन्तु आगे इसका अधिक ठोस प्रचार आदिशंकराचार्य के द्वारा ही हुआ। चूँकि अद्वैतवाद के समर्थन में जितने भी प्रधान ग्रन्थ अवलोकित होते हैं, वे सभी शंकराचार्य के द्वारा ही विरचित किये गये हैं। इसी कारण शंकराचार्य को अद्वैतमत का प्रवर्तक माना जाता है। यद्यपि प्राचीन दर्शन के सूक्ष्मतिसूक्ष्म निरीक्षण एवं परीक्षण से ऐसे कतिपय वेदान्ताचार्यों के नाम मिलते हैं, यथा- भर्तृप्रपंच, ब्रह्मनन्दी, टंक, गुहदेव, भारुचि, कपर्दी, उपवर्ष, बोधायन, भर्तृहरि, सुन्दरपाण्ड्य, द्रमिडाचार्य, ब्रह्मदत्त, आदि जो किसी न किसी सीमा तक अद्वैत मतवादी रहे हैं। इनमें सब ने अद्वैतवाद पर कुछ-न-कुछ लिखा है तथा कहा है। पर इतना सुनिश्चित है कि अद्वैतवाद के दार्शनिक क्षेत्र में शंकराचार्य का पाण्डित्य और प्रभाव तथा अद्वैतवाद की उनकी उत्कृष्ट व्याख्या और उसकी प्रतिष्ठा उन्होंने जिस ठोस भूमि पर की है, उसके आधार पर यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि उनका अद्वैतवाद उनके पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती आचार्यों एवं वेदान्ताचार्यों से किंचित भिन्न एवं किसी न किसी अंश में विलक्षण है। **यहाँ** हम अद्वैत एवं अद्वैतवाद का अर्थ सुस्पष्ट करना चाहेंगे। अद्वैत शब्द अ + द्वैत से व्युत्पन्न है जिसका तात्पर्य है द्वैत (दो के भाव) का अभाव। अद्वैतं द्वैतभिन्नं अर्थात् द्वैत भिन्न ही अद्वैत है। शास्त्रों में इसका प्रयोग 'मूलसत्ता' के निर्देश के लिए हुआ है। इसके अनुसार वस्तुतः एक ही सत्ता 'ब्रह्म' है। आत्मा और जगत् अथवा आत्मा और प्रकृति में जो द्वैत दिखाई पड़ता है वह वास्तविक नहीं है, वह माया अथवा अविद्या का परिणाम है। सम्पूर्ण जगत्प्रपंच अपने बदलते हुए दृश्यों के साथ मिथ्या है, केवल ब्रह्म सत्य है। अन्तिम विश्लेषण में आत्मा और ब्रह्म भी एक ही है। अस्तु इस सिद्धान्त का पोषण जो मत करता है वह अद्वैत मत है।

मूल सत्ता है अथवा नहीं अर्थात् यह सत् है या असत्, भावात्मक है या अभावात्मक, एक है अथवा दो या अनेक? ये सब आचार्यों द्वारा उठाये गये ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर में अनेक मतों, वादों व सम्प्रदायों का उदय हुआ है। वे मत जो मूलसत्ता को एक मानते हैं उनको एकतत्ववादी कहते हैं। वे जो

> भारतीय वैदिक धर्म की परम्परा की जो मशाल आदिशंकराचार्य ने जलायी थी उसका कोई जवाब नहीं था। वे जो कुछ कह रहे थे, उसका उत्तर न तो जैन और बौद्ध दे सकते थे, न ईसाई और मुसलमान एवं न पुराणों पर पलने वाले हिन्दू पण्डित तथा विद्वान। वैदिक मत की स्थापना कर उसके प्रचार-प्रसार में वे इस तरह जुटे कि अनेक ऋषि-मुनियों एवं महात्माओं, पण्डितों एवं दार्शनिकों को यह स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा कि सच ही अवैदिक धर्म में कोई सार नहीं है। इसमें कोई दो राय नहीं कि शंकराचार्य के बाद से भारत में कोई भी महर्षि, पण्डित, विद्वान् व दार्शनिक ऐसा नहीं हुआ जो इनसे बड़ा तपस्वी, उनसे बड़ा दार्शनिक, उनसे अधिक तेजस्वी वक्ता तथा अद्वैत मत की स्थापना में उनसे अधिक निर्भीक रहा हो। दुर्भाग्यवश इस महापुरुष के आविर्भाव, तिरोधान तथा उनकी धर्मसाधना के समस्त दर्शन की वैषयिक विवेचना अब तक न तो समाजशास्त्रियों द्वारा की गयी है और न ही अन्य समाजवैज्ञानिकों व साहित्यकारों एवं दार्शनिकों द्वारा ही। अतः इस शोध प्रपत्र की प्रामाणिकता के साथ ही भारतीय समाजशास्त्रियों व भारतीय दर्शन एवं साधना तथा वेदान्त तत्व के जिज्ञासुओं के लिए अनुसंधानीय उपादेयता भी सुस्पष्ट है। हम आश्वस्त हैं कि सुधी-समाज के आचार्यों, अन्वेषकों एवं अनुसंधाताओं द्वारा इस असाधारण, अप्रतीम, विलक्षण, अनुपम तपस्वी के जीवन व योगदान पर व्यापक अध्ययन होगा। कहना न होगा कि अद्वैत मत की स्थापना एवं प्रचार ही हिन्दुत्व की वह मिट्टी है जिसमें भारतीय वैदिक संस्कृति का मूल गड़ा हुआ है। यदि इस मिट्टी की उपेक्षा की गयी तो निस्सन्देह भारतीय वैदिक संस्कृति परम्परा रूपी वृक्ष सूख जाएगी।

❑ प्राक्तन प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)
❖ एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, जगतपुर पी.जी. कॉलेज, जगतपुर, वाराणसी (उ.प्र.)

मूलसत्ता को एक नहीं बल्कि दो तत्त्ववादी मानते हैं उन्हें द्वैतवादी कहते हैं। वे जो मूलसत्ता को एक नहीं, दो नहीं बल्कि अनेक मानते हैं वे अनेकतत्त्वादी, बहुतत्ववादी आदि नामों से अभिहित हैं। मतदर्शन की इनसे भिन्न एक सम्प्रदाय भी है जिसको 'अद्वैतवाद' कहा जाता है। इसके अनुसार 'सत्' न तो एक है और न ही अनेक बल्कि वह अगम, अगोचर, निर्गुण, अचिन्त्य तथा अनिर्वचनीय है जिसका नाम 'अद्वैतवाद' है। इसका नाम अद्वैतवाद इसलिए है क्योंकि यह एकतत्ववाद और द्वैतवाद दोनों का प्रत्याख्यान करता है। सिद्धान्ततः सत् का निर्वचन संख्या - एक, दो, अनेक - से नहीं हो सकता। इसीलिए उपनिषदों में उसे 'नेति नेति' ('ऐसा नहीं', 'ऐसा नहीं') कहा गया है।

यह अद्वैत सत्ता क्या है? इसके भी विभिन्न उत्तर हैं। माध्यमिक बौद्ध इसे 'शून्य', विज्ञानवादी बौद्ध विज्ञान, शब्दाद्वैतवादी वैयाकरण 'स्फोट' अथवा 'शब्द', शैव 'शिव', शाक्त 'शक्ति' और अद्वैतवादी वेदान्ती 'अद्वैत' (आत्मतत्त्व) कहते हैं। इन सभी मतों व सम्प्रदायों में सबसे प्रसिद्ध आदिशंकराचार्य का आत्माद्वैत अथवा ब्रह्मद्वैतवाद है। इसके अनुसार 'ब्रह्म' अथवा 'आत्मा' एकमात्र सत्ता है। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं (सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन)। अविद्या के कारण दृश्य जगत् ब्रह्म में आरोपित है। माया द्वारा वह ब्रह्म से विवर्तित होता है, उसी में स्थित रहता है और पुनः उसी में लीन हो जाता है। आदिशंकराचार्य का अद्वैतवाद रामानुज के विशिष्टाद्वैत और बल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत से भिन्न है।

निर्विवादितः सच है कि अद्वैतवाद का उद्‌गम स्रोत वेद है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सत् और असत् से विलक्षण सत्ता का स्पष्ट निर्देश पाया जाता है। उपनिषदों में तो विस्तार से अद्वैतवाद का निरूपण किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् में केवल आत्मा एवं ब्रह्म को ही वास्तविक माना गया है और जगत् के समस्त प्रपंच को वाचारम्भण (निरर्थक शब्द मात्र) विकार कहा गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में नानात्व का खण्डन करके (नेति नेति) केवल एकमात्र आत्मा को ही सत्य सिद्ध किया गया है। माण्डूक्य उपनिषद में भी आत्मा-ब्रह्मद्वैत प्रतिपादित किया गया है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भगवान् कृष्ण ने आत्मानुभूति के आधार पर अद्वैत का सारगर्भित विवेचन किया है। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता ये तीन अद्वैतवाद के प्रस्थान हैं। इन्हें प्रस्थानत्रयी कहते हैं। इसके अतिरिक्त, आदिशंकराचार्य के दादा गुरु गौडपादाचार्य ने अपने माण्डूक्योपनिषद् के भाष्य में अद्वैतमत का समर्थन किया है। आचार्य गौडपाद 'माण्डूक्यकारिका' के प्रणेता हैं। स्वयं आदिशंकराचार्य ने तीनों प्रस्थानों - उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता पर भाष्य लिखा। ब्रह्मसूत्र पर शंकर का 'शारीरिक भाष्य' अद्वैतवाद का सर्वप्रसिद्ध प्रामाणिक ग्रन्थ है।

आदिशंकराचार्य की गुरु-परम्परा : आदिशंकराचार्य को उनकी अलौकिक प्रतिभा, अगाध भगवद्‌भक्ति, घोर तपस्वी जीवन, अद्‌भूत योगैश्वर्य एवं उनके वैदिक धर्म संस्थापन के कार्य को देखकर लोगों को यह विश्वास हो गया कि वे साक्षात् शंकर के ही अवतार थे 'शंकरः शंकरः साक्षात्' और इसी से प्रायः उनको भगवान् शब्द से सम्बोधित किया जाता है।

भगवान् शंकर के गुरु का नाम गोविन्दपाद तथा गोविन्दपाद के गुरु का नाम गौडपादाचार्य है। गौड़पादाचार्य तक गुरु-परम्परा ऐतिहासिक काल के अन्तर्गत है, यह मान लेने से किसी प्रकार का मतभेद नहीं होता। हाँ, किन्तु, गौडपाद के गुरु शुकदेव एवं उनके गुरु व्यास इस क्रम के अनुसार प्राचीन गुरु-परम्परा वर्तमान ऐतिहासिक विचार के बाहर है। यदि इस सम्प्रदाय को, जिसका वर्णन साम्प्रदायिक ग्रन्थ में पाया जाता है, सत्य मान लिया जाय, तो यह भी मानना होगा कि व्यासपुत्र शुकदेव ने सिद्धशरीर या निर्माण-शरीर से आविर्भूत होकर गौडपादाचार्य को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया था। यहाँ यह कहना तर्कनाश्रित नहीं होगा कि जिस प्रकार मरमर्षि भगवान् कपिल ने निर्माणकाल का अवलम्बन करके जिज्ञासु शिष्य आसुरि को 'षष्टितन्त्र' का उपदेश दिया था, उसी प्रकार भगवान् शुकदेव ने भी गौडपादाचार्य को विद्या का उपदेश दिया होगा।

भगवान् शंकराचार्य का आविर्भाव-काल : भगवान् शंकराचार्य के आविर्भाव और तिरोभाव के काल-निरूपण के सम्बन्ध में आचार्यों एवं विद्वानों में मतवैभिन्य है। उनमें एकमतता का अभाव है। भगवान् शंकराचार्य ने ठीक किस समय जन्म ग्रहण किया, कितने दिनों तक मानव-शरीर में वर्तमान रहे, उन्होंने किन-किन ग्रन्थों की रचना की और कौन-कौन से काम किये, इसका ठीक-ठीक निर्णय बहुत ही कठिन है। शंकर के चरित-ग्रन्थ में ये विषय अल्पाधिक आलोचित हुए हैं। हाँ, किन्तु, इतना सर्ववादिसम्मत है कि उनका जन्म ईसापूर्व छठी सदी से ईसा की नवीं सदी के

बीच हुआ था। लेकिन किस वर्ष जन्म हुआ था, इस विषय में ठीक-ठीक कुछ जाना नहीं जा सका है। यह आज भी अन्वेषण एवं अनुसंधान का विषय है।

भगवान् शंकराचार्य के आविर्भाव के सन्दर्भ में कतिपय अनुसंधानी विद्वानों का एक मत है कि इनका जन्म ईसा-पूर्व 508 में हुआ और ईसा-पूर्व 476 (2625 कलिवर्ष), 32 वर्ष की अवस्था में उन्होंने देहत्याग किया। वे जो इस मत की पुष्टि करते हैं, उनकी दृष्टि में प्रचलित शंकरदिग्विजय आदि ग्रन्थों की अपेक्षा सर्वज्ञ सदाशिवबोध द्वारा विरचित पुण्यश्लोकमंजरी (आत्मबोधचरित उसका परिशिष्ट है), सदाशिव ब्रह्मेन्द्र-कृत गुरुरत्नमाला तथा आत्मबोध-कृत गुरुरत्नमालाटीका-सुषमा आदि ग्रन्थों की प्रामाणिकता अधिक है। ये सभी ग्रन्थकार कांचीवर्त्ती कामकोटिपीठ से संश्लिष्ट रहे।

कांची कामकोटिपीठ एवं द्वारकापीठ की आचार्य परम्परा काल के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि आदिशंकराचार्य ईसा-पूर्व पाँचवी शताब्दी में आविर्भूत हुए थे। हाँ, किन्तु, कांची और द्वारका के मत में भिन्नताएँ हैं।[1] कांची और द्वारकापीठ के मत में भिन्नता इसलिए है क्योंकि कांची के मत से उनका जन्मकाल ईसापूर्व 476 वर्ष जबकि द्वारकापीठ के मत से उनका निर्वाणकाल ई0पू0 475 वर्ष है।

केरलोत्पत्ति के मतानुसार शंकर का आविर्भाव-काल ईसा की चौथी शताब्दी है। इस मत से शंकर की आयु 32 वर्ष की जगह 38 वर्ष की मानी जाती है।[2] शंकर का जन्म छठी शताब्दी के शेषभाग में हुआ था, यह भी एक प्रचलित मत है।

वर्नेल ने अपने ग्रन्थ South Indian Palaeography (पृ. 37-111) में और सिवेल ने List of Antiquities in Madras नामक ग्रन्थ (पृ. 177) में लिखा है कि शंकराचार्य का आविर्भाव-काल ईसा की सातवीं सदी है।

राजेन्द्रनाथ घोष ने अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध करने की चेष्टा की है कि शंकराचार्य 608 शकाब्द अर्थात् 686 खृष्टाब्द में आविर्भाव हुए थे।[3] उनका कहना है कि शंकराचार्य का देहावसान 34 वर्ष की आयु में हुआ था। उनका यह अभिमत महानुभाव-सम्प्रदाय के दर्शन-प्रकाश नामक ग्रन्थ में उधृत शंकरपद्धति की उक्ति के अनुसार है। इस ग्रन्थ में शंकर के तिरोभाव का समय 'युग्म' (2) 'पयोधि' (4) रसमित (6) शकाब्द उल्लिखित है। इससे उनका जन्मकाल 642 शकाब्द अनुमित होता है। रसा पद एक या रसातल के रूप में छह माना जा सकता है। घोष साहब के अनुसार छह मानना ही युक्तिसंगत है। एक मानने से असम्भव दोष होता है। इसके अनुसार 642 + 78, अर्थात् 720 ई0 में शंकर की मृत्यु हुई।

शंकर आठवीं सदी के हैं, ऐसा भी एक मत है। प्राध्यापक Weber ने प्राचीन प्राचीन काल में इसका समर्थन किया है।[4] Lewis Rice श्रृंगेरीमठ के आचार्य परम्परा-काल को एक-एक करके जोड़कर अनुमान करते हैं कि शंकर 740 से 767 ईसवी के बीच में जीवित थे।[5]

इसके अतिरिक्त, एकमत यह भी है कि शंकराचार्य सन् 788 में आविर्भूत हुए तथा 32 वर्ष की आयु में अर्थात् सन् 820 ई. में तिरोहित हुए।[6] आजकल अधिकांश तत्त्ववेत्ता इसी मत को मानते हैं। शंकर के प्रमुख शिष्य देवेश्वर अर्थात् सुरेश्वराचार्य के शिष्य सर्वज्ञात्मा के द्वारा विरचित ग्रन्थ संक्षेपशारीरक तथा डॉ0 भण्डारकर की रचना Early History of the Deccan आदि से सिद्ध होता है कि शंकराचार्य नवीं शताब्दी के प्रथमांश में जीवित थे। इनका जन्म केरल प्रदेश के पूर्णा नदी के तट पर कालटी नामक गाँव में वैशाख शुक्ल पंचमी को हुआ था। पिता का नाम शिवगुरु तथा माता का नाम आर्यम्बा था।

आदिशंकराचार्य का तिरोधान : शंकर के आविर्भाव के बारे में जैसे आचार्यों एवं विद्वानों में मतैक्य नहीं है, वैसे ही उनके देहावसान के विषय में भी उनमें प्राचीन काल से ही मतभेद दृष्टिगोचर होता है। विभिन्न भाषाओं में लिखे विभिन्न प्राचीन 'शंकर चरित्र' में उनका जो जीवन-विवरण मिलता है, बहुत अंशों में उसकी प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता पर आचार्यों में गहरा मतभेद है। हाँ, किन्तु यह सच है कि शंकर दीर्घजीवी नहीं थे। उन्होंने कम आयु में ही विद्यार्जन करके ग्रन्थ-निर्माण तथा धर्म-प्रचार किया। यह बात स्वयम्प्रकाश मुनि के एक श्लोक से सुस्पष्ट होती है। इस श्लोक में शंकर का जीवन-चित्र अंकित है। वह श्लोक इस प्रकार है :

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरम्यगात्।।

माधवाचार्य ने 'शंकरदिग्विजय' में कहा है कि शंकराचार्य ने अपने शिष्यों को विभिन्न मठों में मठ के कार्य का निरीक्षण करने के लिए भेजा और स्वयं उन्होंने बदरीनारायण की यात्रा की। यह भी प्रसिद्ध है कि बदरीनारायण से कैलासधाम में जाकर वे तिरोहित हुए। चिद्विलासेन्द्र ने अपने 'शंकरविजय' में लिखा है कि शंकराचार्य ने कांची

में सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किया, काश्मीर में नहीं। तदनन्तर, अनेक तीर्थों के दर्शन करने के बाद उन्होंने बदरीनारायण एवं कैलास की यात्रा की। माधवाचार्य ने जिन दो श्लोकों (16:51-52) में शंकर के काश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण का वर्णन किया है, वे दोनों श्लोक राजचूड़ामणि के शंकराभ्युदय (8 : 68-69) के ही हैं; किन्तु 'शंकराभ्युदय' में लिखा है कि यह घटना कांची में घटी थी, काश्मीर में नहीं, यही अन्तर है।

शंकर-सम्प्रदाय के मतानुसार, शंकर अन्तिम समय तक कांची में ही थे और कम्पासरोवरतीरवासिनी भगवती कामेश्वरी अथवा कामकोटि देवी की अर्चना में निरन्तर रत रहकर अन्त में उन्होंने ब्रह्मानन्द-लाभ किया। काँची के कामकोटिपीठ के 38वें शंकराचार्य, जो धीरशंकर नाम से परिचित थे, सारे भारतवर्ष का भ्रमण करके काश्मीर में सर्वज्ञपीठ पर आरुढ़ हुए, और अन्त में हिमालय की दत्तात्रेयी-गुफा में तिरोहित हुए। अनुमान किया जाता है कि धीरशंकर की घटनाएँ किसी प्रकार से अदिशंकर पर आरोपित हो गयी हैं। मलयालम भाषा में शंकर की एक जीवनी प्रकाशित हुई है। उसमें कहा गया है कि शंकर ने वृषाचल अथवा गजाचल में पीठारोहण करके वहीं सिद्धि प्राप्त की। श्रीवरदराज स्वामी के स्थान का नाम हस्तिगिरि या वृषाचल है। गजाचल ही हस्तिगिरि का दूसरा नाम है। यह स्थान कांची में है। सम्भवतः, शंकर यहीं सर्वज्ञपीठ पर आरुढ़ हुए थे और देहावसान तक यहीं थे। सदाशिव ब्रह्मेन्द्र-कृत 'गुरुरत्नमालिकाटीका' एवं 'गुरुपरम्परा स्तोत्र' में कहा गया है कि भगवान् शंकर अपने जीवन के अन्तिम समय तक कांची में ही रहे तथा उनका देहावसान भी वहीं हुआ। एक हस्तलिखित पोथी में वर्णित है -

तत्र संस्थाप्य कामाक्षीं जगाम परमं पद्म।
विश्वरूपयतिं स्थाप्य स्वाश्रमस्य प्रचारणे।।
विश्वरूप सुरेश्वर का नामान्तर है।

रामभद्रदीक्षित लिखित 'पतंजलिचरित' (8:71) से भी प्रमाणित होता है कि शंकर का देहावसान कांची में ही हुआ था।

शंकराचार्य के काल का सामाजिक-सांस्कृतिक एवं दार्शनिक परिवेश : आदि शंकराचार्य जिस समय आविर्भूत हुए थे उस समय देश की सामाजिक-सांस्कृतिक एवं दार्शनिक अवस्था से परिचित हुए बिना उनके कार्यों, उपलब्धियों एवं योगदान की समीक्षा नहीं की जा सकती। ब्रह्मसूत्रकार बादरायण तथा शंकराचार्य-कृत ब्रह्मसूत्रभाष्य एवं बहुतेरे प्राचीन आचार्यों एवं वेदान्ताचार्यों की कृतियों की पर्यालोचना से प्रतीत होता है कि बादरायण के समय से शंकर के समय तक देश में भिन्न-भिन्न प्रकार के धर्म एवं तत्सम्बन्धी दार्शनिक मतवादों का प्रचार था। इनमें कुछ मत को छोड़कर अधिकांशतः आंशिक या पूर्णरूप से अवैदिक थे। ये सभी अवैदिक मत कहीं-कहीं वैदिक मत के विरोधी तथा कहीं-कहीं वैदिक मत से अलग रूप में रहते हुए भी अपने को वैदिक मत का अंग मानते थे। परम्परापोषक वैदिक जन उन्हें वैदिक नहीं स्वीकार करते थे। शंकर ने वैशेषिक, सांख्य तथा योगदर्शन को भी एक प्रकार से वेदवाह्य जैसा ही माना। इनके अतिरिक्त, जैन, बौद्ध, पांचरात्र तथा पाशुपत-दर्शन तो उनकी दृष्टि में स्पष्टतः ही अवैदिक थे। इसीलिए, तर्कपाद में उन्होंने इन सभी मतों का विशेष रूप से खण्डन किया है। हाँ, किन्तु, शंकर-मत में पांचरात्र सिद्धान्त का कुछ अंश वैदिक सिद्धान्त के अनुकूल माना गया है। उसे आचार्य शंकर ने उपादेय मानकर अंगीकार किया है।[7]

जैनधर्म, बौद्धधर्म आदि के वेद-विरोधी एवं सामाजिक आन्दोलनों तथा ईसाई एवं मुस्लिम आक्रमणों के परिणामस्वरूप हिन्दुओं के आचार-विचार और व्यवहार दो भागों में विभाजित होने लगे। हिन्दुओं का एक विशाल समुदाय वैदिक धर्म का अनुयायी था। वह वर्णाश्रम व्यवस्था में विश्वास करता था, जाति-प्रथा में आस्था रखता था, स्मृतियों के मार्ग का अनुशीलन करता था, तीर्थ-स्नान को पुण्य मानता था, व्रत, उपवास, वर्ग, नरक, पितृश्राद्ध आदि में विश्वास करता था तथा सभी देवी-देवताओं और उप-देवताओं की पूजा करता था। किन्तु, इसके विपरीत, एक और समुदाय था जो वर्णाश्रम व्यवस्था व जाति व्यवस्था को नहीं मानता था, जो मन्दिरों, तीर्थों और पुरोहितों में विश्वास नहीं करता था तथा जिसे देवी-देवताओं की शक्तियों में विश्वास नहीं था। यह समुदाय, विशेषतः उन योगियों और तांत्रिकों से प्रभावित था जो यह कहते थे कि मनुष्य की सारी शक्तियाँ उसके अपने शरीर में छिपी हुई हैं तथा शरीर और चित्त की शुद्धि के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। ये योगी व्रत, उपवास, यज्ञ, होम और शास्त्र-वचन को मिथ्या मानते थे और जनता को यह उपदेश देते थे कि धर्म के बाहरी ढकोसलों में कहीं कुछ नहीं है। धर्म के वाह्याचार मिथ्या हैं। वेदों और शास्त्रों का अध्ययन केवल मस्तिष्क का बोझ है, ब्राह्मणों और पुरोहितों से किसी का उपकार नहीं हो सकता। तीर्थ और

मन्दिर में जाने से मनुष्य को कुछ भी प्राप्त नहीं होता। जाति-प्रथा झूठी है और स्मृतियों के द्वारा बताये गये मार्ग भी गलत हैं। कितने ही तांत्रिक मतों ने अपने को खुल्लमखुल्ला वेद-विरोधी सम्प्रदाय घोषित किया और दृढ़ कण्ठ से समस्त वैदिक मतों का प्रत्याख्यान किया। प्रतिक्रिया इतनी उग्र थी कि अत्यन्त सहज बात को भी वे लोग भड़काने वाली भाषा में कहते थे और हर प्रकार से, वैदिक मार्ग का उलटा सुनायी देने वाला वक्तव्य देते थे। **प्राचीन** काल से ही यह प्रसिद्धि है कि बौद्ध आदि अवैदिक धर्म-प्रचार एवं तदनुयायी दर्शनशास्त्र की प्रबलता से जिस समय भारतीय वर्णाश्रम-धर्म में विप्लव उपस्थित हुआ था, उस समय कुमारिल, प्रभाकर, मण्डनमिश्र, शंकराचार्य आदि मनीषी महपुरुषों ने विरोधी व अवैदिक मतों का खण्डन करके फिर से वैदिक मत की प्रतिष्ठा की। कतिपय विद्वानों का कहना है कि इन्हीं लोगों के पराक्रम से बौद्धधर्म भारत से निर्वासित होकर लुप्तप्राय हो पड़ा है। यह मत सम्पूर्णतया सत्य नहीं होने पर भी, इसमें सन्देह नहीं है कि आचार्य शंकर के प्रभाव और प्रयत्न से ही वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा हुई थी। सारा देश उनके ब्रह्मचर्य, विद्या, धी पाण्डित्य, प्रतिभा एवं तपस्या से नतमस्तक होकर उनकी दार्शनिक विचारधारा को मानने को बाध्य हुआ था। वैष्णव, शैव, शाक्त, तान्त्रिक, कापालिक, पाशुपत, गाणपत्य, पंचरात्र एवं अन्य अैदिक सम्प्रदाय यद्यपि सैकड़ों वर्षों से उनके अद्वैत सिद्धान्त का विरोध करते आ रहे हैं, तथापि यह निश्चित है कि उनका प्रताप और प्रभाव तनिक भी क्षुण्ण नहीं हुआ है। शंकराचार्य ने अपने शास्त्रीय विचार से विभिन्न मतों सभी विपक्षियों को पराभूत किया था। जो सब पुण्य क्षेत्र उस समय विधर्मियों के अधीन थे, उन्होंने यथासम्भव उनका उद्धार किया था। आचार्य शंकर ने स्वयं ग्रन्थों की रचना करके, शिष्यों से ग्रन्थ आदि की रचना कराके तथा शास्त्रसिद्धान्त की यथार्थ व्याख्या करके वैदिक धर्म एवं उपनिषद् के निगूढ़ रहस्यों की उपलब्धियों का पथ परिष्कृत किया। उन्होंने ऐसे उपाय का सहारा लिया, जिससे समग्र देशवासी उनके द्वारा प्रचारित धर्म का मर्म ग्रहण करने में सक्षम हुए।

आदिशंकराचार्य के जन्म-स्थान एवं उनके जीवन की मुख्य मूर्तित घटनाएँ : आचार्य शंकर का जन्म दक्षिणभारत में केरल राज्य के कालडी नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम पण्डित शिवगुरु एवं उनकी माता का नाम आर्यम्बा था। माता-पिता की वर्षों की तपस्या के पश्चात् वैशाख शुक्ल पंचमी तिथि सन् 788 ई. में देवी आर्यम्बा की कोख से पुत्र के रूप में आचार्य शंकर का जन्म हुआ। शंकर बड़े भारी मातृभक्त थे। उनकी माता प्रतिदिन अपने गाँव कालडी से दूर पूर्णा नदी में स्नान करने जाती थीं। किन्तु, अक्सर बीमार रहने के कारण उनकी माता को दूर जाकर नदी में स्नान करने में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। अतः शंकर अपने तपोबल से पूर्णा नदी को अपने घर के पास तक ले आये। ऐसा करने से स्नान के लिए उनकी माता को दूर नहीं जाना पड़ता। शैशवकाल में ही आचार्य शंकर के पिता की मृत्यु हो गयी। इसके बावजूद उन्होंने मन-ही-मन संन्यास लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया। एक विचित्र घटना के परिणामस्वरूप शंकर का संकल्प पूर्ण हुआ। विचित्र घटना ग्राह-प्रसंग है। एक दिन माँ-बेटा नदी में स्नान करने के लिए पूर्णा नदी गये। माता स्नान कर घाट पर खड़ी कपड़े बदल रही थीं, तभी अचानक शंकर की करुण चीत्कार सुनाई पड़ी। पलटकर देखा तो उसके प्रिय बेटे शंकर को भीमकाय ग्राह पकड़े हुए है और उसे निगल जाने के लिए तैयार है। शंकर के सब प्रयत्न विफल हुए। माता ने भी अपने पुत्र को बचाने के लिए काफी हाथ-पैर मारे, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। बड़ा ही करुणाजनक दृश्य था। असहाय माता घाट पर फूट-फूटकर रो रही थी। इसी बीच शंकर ने माता को आवाज दी। हे माते! यदि आप मुझे संन्यास ग्रहण करने की अनुमति दे दें तो ग्राह मुझे जीवनदान दे सकता है। माता धर्म-संकट में आ गयीं। अन्ततः बाध्य होकर अनुमति दे दीं। ग्राह ने शंकर को छोड़ दिया। शंकर के प्राण बच गये। उस समय वे आठ वर्षायु के थे। काल के गाल से बचने के सन्दर्भ में माता शंकर को यद्यपि संन्यासी बनने की अनुमति तो दे दी, किन्तु, वह नहीं चाहती थीं कि उनका एकमात्र पुत्र बीतरागी साधुवेशधारी सन्यासी बने। उस समय शंकर ने माता की इच्छा के अनुरूप दृढ़प्रतिज्ञा की कि वे उनकी (माता की) मृत्यु के समय उनके समक्ष अवश्य उपस्थित हो जायेंगे और अपने हाथों ही उनका दाह-संस्कार व अन्त्येष्टि संस्कार सम्पादित करेंगे। तत्पश्चात् अगले दिन शंकर गृह त्यागकर गुरु की तलाश में वहाँ से उत्तर भारत की ओर चल दिये। महायोगी गोविन्द भगवत्पाद जिनका शरीर रस प्रक्रिया द्वारा सिद्ध था, ऐसी किंवदन्ती साधक मण्डल में अब भी प्रचलित है, को अपना गुरु बनाने के

सन्दर्भ में शंकर नर्मदा के तट पर आये। यह भी प्रसिद्धि है कि उनकी देह हजार वर्ष तक स्थूल जगत् में रहते हुए भी उसमें जरा (बुढ़ापा) का नाम मात्र भी नहीं था। वह सदा सोलह साल के लगते थे। विद्यारण्य के अनुसार गोविन्दपाद महाभाष्यकार पतंजलि के प्रतिरूप थे (द्रष्टव्य : शंकर दिग्विजय, 5 : 94)। कहते हैं ओंकारनाथ में भयंकर बाढ़ थी। किन्तु शंकर को अपने गुरु गोविन्दपाद तक जाना था। अस्तु वे नर्मदा के सम्पूर्ण जल को अपने कमण्डल में समेटकर गुरु तक पहुँच गये।

अब फिर तीर्थयात्रा प्रसंग। वे वहाँ से तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। रामेश्वरम्, कांचीकामकोटि, द्वारका, काशी, बद्रीनाथ, केदारनाथ, सोमनाथ, महाकालेश्वर, नागेश्वर, वैद्यनाथ, भीमशंकर, मल्लिकार्जुन आदि तीर्थ-स्थलों पर जाकर उन्होंने भिन्न-भिन्न देवों का दर्शन किया। बद्रीनाथ की यात्रा के दौरान उन्होंने भगवान् बदरिकेश्वर की मूर्ति का उद्धार किया। वस्तुतः बद्रीनाथ जाकर अलकनन्दा नदी से भगवान् बद्रीनारायण की मूर्ति निकालकर मन्दिर में उसको पुनः स्थापित किया। यहाँ से वे केदारनाथ गये और फिर वहाँ से कैलाश गये जहाँ उन्हें भगवान् शिव एवं देवी पार्वती का साक्षात् दर्शन हुआ। भगवान् शिव ने उन्हें पाँच स्फटिक के शिवलिंग दिये और सौन्दर्य लहरी (सौन्दर्य की लहरें) दी, जिसे भगवान् शिव ने स्वयं देवी पार्वती की प्रशंसा में गाया था। कैलाश से लौटते समय आचार्य प्रवर ने नेपाल जाकर भगवान् पशुपतिनाथ के भी दर्शन किये।

तदनन्तर वे काशी गये। वहाँ कई कुत्तों के साथ आते हुए एक चण्डाल से उनकी मुठभेड़ हुई। उन्होंने उसे 'दूरं गच्छ' का आदेश दिया। चाण्डाल ने शास्त्रार्थ करने के लिए उन्हें चुनौति दिया। शंकर ने उस चुनौति को स्वीकार किया। शास्त्रार्थ में आचार्य शंकर पराजित हुए। चाण्डाल स्वयं भगवान शंकर थे। भगवान् शंकर ने आचार्य शंकर को ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने की प्रेरणा दी। इस प्रसंग में आचार्य भाष्य-लेखन हेतु बद्रीनाथ स्थित व्यास-गुफा में गये जहाँ उन्हें व्यासदेव का साक्षात् दर्शन हुआ। व्यास ने उन्हें ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने का आशिर्वाद दिया और उनके मरण-योग को टालकर उनकी आयु में सोलह वर्ष का और विस्तार कर दिया।

इसके पश्चात् आचार्य शंकर प्रयाग में त्रिवेणी के तट पर आये। यहाँ उनके आने का उद्देश्य कुमारिलभट्ट से शास्त्रार्थ करना था। कुमारिलभट्ट प्रायश्चितक्रम में तुषानल में धीरे-धीरे अपने आपको जला रहे थे। उन्होंने आचार्य शंकर से कहा कि यदि उन्हें शास्त्रार्थ करना ही है तो वे माहिष्मती नगरी जाँय। वहाँ उनके शिष्य मण्डन मिश्र रहते हैं। शंकर वहाँ से माहिष्मती नगर गये। वहाँ उन्होंने सिर के ऊपर घड़ा रखकर पनघट की ओर जाने वाली पनिहारिनों को देखा। उन पनिहारिनों से शंकर ने मण्डन मिश्र के निवास- स्थान का पता पूछा। पनिहारिनों ने उन्हें बताया कि जिस घर के दरवाजे पर तोते इस प्रश्न पर शास्त्रार्थ कर रहे हों कि जगत् नित्य है अथवा अनित्य, वेद में स्वतः प्रामाण्य है अथवा परतः - प्रामाण्य, वही मण्डन मिश्र का निवास- स्थान है। शंकरदिग्विजय में यों कहा गया है -

जगद् ध्रुवं स्यात् जगद्ध्रुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरंगिरन्ति।
द्वारस्थ-नीडारन्तर-सन्निरूद्धा, जानीहि तन्मण्डन पण्डितौकः।।
स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं, कीराङ्गना यत्र गिरंगिरन्ति।
द्वारस्थ नीडारन्तर-सन्निरूद्धा, जानीहि तन्मण्डन पण्डितौकः।।

आचार्य शंकर मण्डन मिश्र के निवास-स्थान पर पहुँचे, किन्तु, उनके भवन का दरवाजा बन्द पाया। द्वारपालों से पूछा कि तुम्हारे स्वामी कहाँ हैं और द्वार बन्द होने का क्या कारण है? द्वारपालों ने उत्तर दिया कि हमारे स्वामी भवन के भीतर अपने पिता का श्राद्ध कर्म कर रहे हैं, अस्तु उन्होंने भीतर किसी को जाने देने के लिए मना कर रखा है।' तत्पश्चात् आचार्य शंकर योगबल से आकाश मार्ग से होकर मण्डन मिश्र के उस प्रांगण में पहुँच गये जहाँ व्यास और जैमिनि जैसे धर्मधुरन्धर आमंत्रित होकर पूर्व से ही विद्यमान थे। श्राद्ध में किसी संन्यासी का पदार्पण अशुभ समझा जाता है। अस्तु ऐसे समय में एक संन्यासी को अपने आँगन में आया देखकर मण्डन मिश्र को बहुत क्रोध आया, किन्तु व्यास एवं जैमिनि के अनुरोध से किसी तरह उनका क्रोध शान्त हो गया। आचार्य शंकर ने अपना परिचय दिया और अपने आने का कारण बताया। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। निर्णायिका बनी मण्डन मिश्र की पत्नी भारती। भारती ने अपने पति और आचार्य शंकर को माला पहनायीं। यह माना गया कि जिसका माला सूख जायेगा, वह पराजित समझा जाएगा। मण्डन मिश्र की माला सूख गयी। अस्तु, वे पराजित माने गये। शर्त के अनुसार वे शंकराचार्य के शिष्य हो गये और उनका नाम

हुआ सुरेश्वराचार्य। भारती शारदा हो गयीं। शारदा के नाम पर द्वारका में शारदापीठ की स्थापना हुई। हाँ, किन्तु देवी शारदा ने शंकर को चुनौती देते हुए शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। देवी शारदा ने आचार्य शंकर से कामसूत्र पर प्रश्न करना पसन्द किया। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। शारदा ने काम विषयक अद्‌भुत प्रश्न पूछा - 'भगवन्! काम की कितनी कलायें होती हैं? इनका स्वरूप क्या है? वे कहाँ निवास करती हैं? शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष में इनकी स्थिति एक समान रहती है या भिन्न-भिन्न हुआ करती है? पुरुष में तथा युवती में इन कलाओं का निवास किस प्रकार से होता है? शंकरदिग्विजय में इसप्रकार कहा गया है -

'कलाः कियन्त्यो वद पुष्पधन्वनः,
किमत्यिका किंचपदं समाश्रिताः।
पूर्वे च पक्षे कथमन्यथां स्थितिः,
कथं युवत्यां कथमेव पुरुषे।।'

आचार्य शंकर बाल-ब्रह्मचारी थे। उन्हें कामशास्त्र के विषयमें कोई ज्ञान नहीं था। अतः इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए शंकर ने एक माह की अवधि माँगी। बस क्या था, शंकर ने योगबल से परकाया में प्रवेश किया। परकाया थी मृत राजा अमरुकदेव की। उनके यह शिष्य पद्‌मपाद (सनन्दन) ने इस कृत्य का विरोध किया। आचार्य शंकर के तर्क के प्रयोग से सबको झुकना पड़ा। अन्ततः शंकर ने अपनी आत्मा को मृत अमरूक राजा के शरीर में संक्रमित करके राज-सुख-उपभोग करने लगे। मन्त्रियों को राज्य संभालने में लगाकर स्वयं सुन्दरी विलासिनी स्त्रियों के साथ रमण करना आरम्भ कर दिया। किन्तु, शंकर की विशुद्ध आत्मा सम्पूर्ण रूप से पवित्र और निर्मल ही रही। आचार्य शंकर के विषय में एक उक्ति है - ''काच्यामथ सिद्धिमबाप'' अर्थात् उन्होंने कांची में सिद्धि प्राप्त की। सिद्धिका अर्थ समाधि भी लगाया जाता है। कीर्ति-स्तम्भ में इसका वर्णन नहीं है। आचार्य शंकर ने यथासमय अपने शरीर में प्रवेश कर मण्डन मिश्र के यहाँ प्रत्यागमन किया। शारदा और आचार्य शंकर का शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। अन्त में आचार्य शंकर ने मण्डल मिश्र की पत्नी शारदा को शास्त्रार्थ में पूर्णरूप से परास्त कर दिया। आचार्य शंकर के युक्तियुक्त उत्तरों को सुनकर देवी शारदा ने प्रफुल्लित होकर अपनी पराजय स्वीकार कर ली। इस प्रकार शंकराचार्यका उपनिषद्‌मूलक अद्वैतवाद मण्डन मिश्र एवं देवी शारदा के उपनिषद् विरुद्ध अद्वैतवाद पर भारी पड़ा।

इधर आचार्य शंकर की माता का अन्तिम समय अर्थात् स्वर्गारोहण का समय आ गया। प्रतिज्ञानुसार आचार्य घर लौटे। सन्यासी होते हुए भी वे माता का अग्नि संस्कार करने के लिए उद्यत हुए। लोग इसे अनुचित मान रहे थे। एक सन्यासी अग्नि स्पर्श कैसे कर सकता है? बाध्य होकर आचार्य ने अपने घर के सामने ही माता का दाह-संस्कार किया। आचार्य नम्बूदरी ब्राह्मण थे। कहा जाता है कि तभी से नम्बूदरी ब्राह्मणों में घर के सामने दाह-संस्कार करने की प्रथा चल पड़ी। तत्पश्चात् आचार्य शंकर सम्पूर्ण भारत की पद-यात्रा की और अद्वैत तत्व को अन्तिम सत्य के रूप में स्थापित किया। उनका व्यक्तित्व पूर्णतया चमत्कारिक था तभी तो एक गूँगा, बहरा बालक आचार्य शंकर के आशिर्वाद से बोलने लगा। आगे चलकर यही बालक हस्तामलकाचार्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। शंकर अद्वैत सत्य है, इसके प्रमाण के लिए शिवलिंग से, एक हाथ निकला और वाणी निकली ''अद्वैतं सत्यम्'' अर्थात् अद्वैत ही सत्य है। निस्सन्देह इस पक्ष का अनुशीलन कर आचार्य शंकर ने इसके विरुद्ध मतवादों के आचार्यों के अपसिद्धान्तों का युक्तियुक्त खण्डन किया और अपने पाण्डित्य एवं लोकोत्तर प्रतिभा से अद्वैतवादी गंगा के भगीरथ हुए और उन्होंने देहसरिता को वेदान्तधारा से निकालकर न केवल सम्पूर्ण भारत में बल्कि सारे विश्व में फैला दिया। आचार्य शंकर के अलौकिकत्व की एक मुख्य विशेषता यह है कि वे परमार्थतः अद्वैतवादी होते हुए भी व्यवहार-भूमि पर देवी-देवताओं की उपासना तथा तीर्थों एवं देव-मन्दिरों की सार्थकता को दृढ़तापूर्वक अंगीकार करते थे और लोकशिक्षा के लिए स्वयं भी वैसा आचरण करते थे। तभी तो अद्वैतवादी आचार्य शंकर रामेश्वरम् में श्रीरामनाथ की पूजा करते दिखाई पड़ते हैं, श्रीरंगम में भगवान् रंगनाथ की पूजा करते दिखाई पड़ते हैं, तिरुपति में वेंकटेश्वर की पूजा करते दिखाई पड़ते है। द्वारकापुरी में भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना करते दीख पड़ते हैं। फिर कापालिकों के भी मध्य जाते हैं। कापालिक उनकी बलि देने पर उतारू हो जाते हैं। आचार्य अपना सर उसके आगे करते हैं। इसी बीच पद्‌मपाद नरसिंह के रूप में आकारबद्ध हो जाते हैं और कापालिक का बध कर देते हैं। आचार्य शैल पर्वत पर मल्लिकार्जुन की पूजा करते हैं। वे केदारनाथ, बद्रीनाथ, भीमशंकर, काशी विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि देवताओं की पूजा करते हैं। वे व्यास-गुफा में ब्रह्म-सूत्र पर भाष्य लिखते

हैं और शिष्यों को उसका अर्थ समझाते हैं।

लिंग स्थापन : प्रसिद्धि है कि शंकराचार्य कैलास से पाँच स्फटिकलिंग लाये। उन्होंने चार की यथाक्रम बदरीनारायण, नीलकण्ठक्षेत्र (नेपाल), श्रृंगेरी तथा चिद्म्बरम् में स्थापना की। सर्वश्रेष्ठ पाँचवें लिंग, को उन्होंने अपने साथ रखा। वह योगलिंग के नाम से प्रसिद्ध है। कांची में शंकर सदा उसी की पूजा में लीन रहते थे। देहत्याग के समय शंकर उस लिंग, कांचीपीठ तथा शारदामठ का भार सुरेश्वर को सौंप गये (यह शारदामठ श्रृंगेरी-शारदापीठ से भिन्न है)। शिवरहस्य (9:16) में लिखा है कि इस योगलिंग की स्थापना कांची में हुई। मार्कण्डेयसंहिता (काण्ड 72, परिस्पन्द 7) में लिखा है कि शंकर ने कामकोटिपीठ में योगलिंग की स्थापना की और उसकी पूजा का भार सुरेश्वराचार्य के हाथों में सौंपा।

आदिशंकराचार्य का मतस्थापन एवं धर्म-प्रचार : आचार्य शंकर ने उपनिषद् के एकतत्ववादी प्रवृत्ति को अद्वैतवाद के रूप में स्थापित किया। इसीलिए इनके दर्शन को एकतत्त्ववाद कहने के बजाय अद्वैतवाद कहा जाता है। वेदान्त-दर्शन का प्रमुख प्रश्न है - ब्रह्म और जीव में क्या सम्बन्ध है? ये दो हैं या एक ही हैं? मुख्यतः इन्हीं दो प्रश्नों के उत्तरों पर वेदान्त के विभिन्न सम्प्रदायों की सृष्टि हुई जिसमें निम्नलिखित चार सम्प्रदाय मुख्य हैं - (1) अद्वैतवाद, (2) विशिष्टाद्वैतवाद, (3) द्वैतवाद, और (4) द्वैताद्वैतवाद। आचार्यशंकर के दर्शन को अद्वैतवाद कहा जाता है। उनके अनुसार ब्रह्म और जीव दो नहीं हैं। इनमें द्वैत नहीं है। रामानुजाचार्य अद्वैत को स्वीकार करते हुए भी कहते हैं कि एक ही ब्रह्म में जीव तथा अचेतन प्रकृति भी विश्लेषण रूप में हैं। अनेक विश्लेषण-विशिष्ट एक ब्रह्म को मानने के कारण इस मत का नाम पड़ा है विशिष्टाद्वैत। मधवाचार्य ब्रह्म और जीव को दो मानते हैं। अतः इस मत को द्वैतवाद कहा जाता है। निम्बार्काचार्य का मत है कि ब्रह्म और जीव किसी दृष्टि से दो हैं और किसी दृष्टि से दो नहीं हैं। इस मत को द्वैताद्वैत कहते हैं। इस प्रकार ब्रह्म और जीव के भेद, अभेद और भेदाभेद सम्बन्ध भिन्न-भिन्न प्रकार स्थापित करने वाले अनेक मत हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध हैं शंकर का अद्वैत।

आचार्य शंकर के अद्वैतवाद का मूलाधार है - 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' अर्थात् ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, जगत् मिथ्या है तथा जीव और ब्रह्म भिन्न-भिन्न नहीं हैं बल्कि अभिन्न हैं।

इस प्रकार आचार्य शंकर के अद्वैतवाद के चार बुनियादी आधार हैं - (1) ब्रह्म ही सत्य है, (2) जगत् मिथ्या है, (3) जीव ही ब्रह्म है, और (4) जीव ब्रह्म से कथमपि भिन्न नहीं है। शंकर ने ब्रह्म को परम सत्य माना है। ब्रह्म को छोड़कर किसी अन्य सत्ता को सत्य नहीं माना है। ब्रह्म ही पारमार्थिक सत्य है। ईश्वर, जगत्, सृष्टि, जीव इत्यादि की सत्यता का खण्डन हुआ है। आचार्य शंकर के दर्शन में अद्वैतवादी प्रवृत्ति इतनी तीव्र है कि उसने माया को भी असत्य माना है। आचार्य शंकर ने आत्मा और ब्रह्म, ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध की व्याख्या भी इस ढंग से की है जिससे उनको अद्वैतवाद का समर्थक मानना सिद्ध होता है। जिस प्रकार अग्नि और इसकी चिंगारियाँ अभिन्न हैं उसी प्रकार जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं। आत्मा और ब्रह्म के सम्बन्ध के बारे में कहा जाता है कि दोनों वस्तुतः एक ही वस्तु के दो नाम हैं। आत्मा और ब्रह्म में अभेद है। **शंकराचार्य** ने शास्त्रीय विचार से अद्वैत मत के सभी विपक्षियों को पराभूत कर अपने मत अर्थात् अद्वैतवाद की स्थापना की। जो सब पवित्र क्षेत्र उस समय विधर्मियों के अधीन थे, उन्होंने यथासम्भव उनका उद्धार किया था। आचार्य शंकर ने स्वयं नूतन सद्ग्रन्थों की रचना करके, शिष्यों से ग्रन्थ आदि की रचना कराके तथा शास्त्र-सिद्धान्त की यथार्थ व्याख्या करके वैदिक धर्म एवं उपनिषद् के निगूढ़ रहस्यों की उपलब्धि का पथ परिष्कृत किया। उन्होंने ऐसे उपाय का सहारा लिया, जिससे समग्र देशवासी उनके द्वारा प्रचारित मत व धर्म का मर्म ग्रहण करने में सक्षम हुए। शाक्तागम-साहित्य के श्रीविद्यार्णव नामक ग्रन्थ के अनुसार आचार्य शंकर ने जहाँ एक ओर गृहत्यागी संन्यासियों को शुद्ध ज्ञानमार्ग का उपदेश दिया था, वहाँ दूसरी ओर गृहस्थों के लिए उपासना-मार्ग का प्रचार किया था। प्राचीन समय में बौद्ध समाज में प्रायः ऐसी ही व्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त, बौद्धों की तरह उन्होंने भी संन्यासियों को सम्बद्ध करने की चेष्टा की तथा अपने मत के प्रचार के लिए भारत के चारों दिशाओं या कोनों में चार पीठ या मठों की प्रतिष्ठा की।

चार प्रधान पीठ : आचार्य शंकर ने भारत के चारो कोनों में जिन चार प्रधान पीठों की स्थापना की, उनके माध्यम से उन्होंने डूबते हुए सनातन धर्म की रक्षा की । इन पीठों को मठ के नाम से भी अभिहित किया गया है। उनके धर्म संस्थापन के इस कार्य को देखकर लोगों को यह विश्वास हो गया कि वे साक्षात् भगवान् शंकर के ही

अवतार हैं – 'शंकरः शंकरः साक्षात्' और इसी से प्रायः भगवान् शब्द के साथ उनका स्मरण किया जाता है। इन चार पीठों के नाम हैं – ज्योतिर्मठ-जोशीमठ-बदरिकाश्रम के निकट, शारदामठ-द्वारकाधाम-प्रभास क्षेत्र में, श्रृंगेरीमठ-श्री कांचीकामकोटिपीठ-रामेश्वर क्षेत्र में तथा गोवर्धनमठ-पुरुषोत्तम क्षेत्र में अवस्थित हैं। इन चार मठों में आचार्य शंकर ने त्रोटकाचार्य, हस्तमलकाचार्य, सुरेश्वराचार्य एवं पद्मपादाचार्य – इन चार शिष्यों को प्रतिनिधि के रूप में प्रतिष्ठित किया। कुरु, काश्मीर,कम्बोज, पांचाल आदि देश अर्थात् भारत के उत्तर एवं पश्चिम का अधिकांश भू-भाग ज्योतिर्मठ के शासनाधीन हुआ। उसी प्रकार, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र आदि देश अर्थात् भारत वर्ष का पश्चिम भूभाग शारदामठ के, आन्ध्र, द्राविण, कर्णाट, केरल आदि देश अर्थात् भारत का दक्षिण भू-भाग श्रृंगेरीमठ के तथा अंग, बंग, कलिंग, मगध, उत्कल बर्बर आदि देश अर्थात् भारत का पूर्वभाग गोवर्धन मठ के शासनाधीन हुआ। इस व्यवस्था का उद्देश्य था कि शंकर के निर्वाण के बाद भी जिसमें वर्णाश्रम धर्म वेदान्त के दृढ़ आश्रम में सुरक्षित रहे और उन मठों की अनुगतता में स्थिर रहे। प्रत्येक मठ का कार्यक्षेत्र अलग-अलग था। प्रत्येक मठधारी का ही मुख्य कर्त्तव्य था – अपने-अपने मठ के अन्तर्गत देश के वर्णाश्रमधर्मियों को धर्मोपदेश देकर स्वधर्म में प्रतिष्ठित रखना। शंकराचार्य के प्रतिनिधि होने के नाते ये मठाध्यक्ष 'शंकराचार्य' कहलाते हैं।

इन मठों की स्थापना के बारे में मतैक्य नहीं दिखाई पड़ता है। पुरी के गोवर्द्धन मठ से प्रकाशित मठाम्नाय में चार मठों के जो परिचय मिलते हैं, उसका विवरण यहाँ निम्नलिखित सारणी के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है –

सारणी संख्या 1

मठाम्नाय के आधार पर चारो मठों के आचार्यों के नाम एवं उनकी अन्य विशेषताएँ

क्रम	1	2	3	4
मठ	**गोवर्धन**	**श्रृंगेरी**	**शारदा**	**ज्योतिर्मठ (श्रीमठ)**
आम्नाय	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
सम्प्रदाय	भोगवार	भूरिवार	कीटवार	आनन्दवार
पद	अरण्य वन	सरस्वती, भारती, पुरी	तीर्थ, आश्रम	गिरि, पर्वत, सागर
क्षेत्र	पुरुषोत्तम	रामेश्वर	द्वारका	बदरिकाश्रम
देव	जगन्नाथ	आदिवाराह	सिद्धेश्वर	नारायण
देवी	विमला	कामाक्षी	भद्रकाली	पूर्णगिरि
आचार्य	पद्मपाद	पृथ्वीधर (हस्तामलक)	विश्वरूप (सुरेश्वर)	त्रोटक
तीर्थ	महोदधि	तुंगभद्रा	गोमती	अलकनन्दा
ब्रह्मचारी	प्रकाश	चैतन्य	स्वरूप	आनन्द
वेद	ऋक्	यजु	साम	अथर्व
महावाक्य	प्रज्ञानं ब्रह्म	अहं ब्रह्मास्मि	तत्त्वमसि	अयमात्मा ब्रह्म
गोत्र	काश्यप	भूर्भुवः	अधिगत	भृगु
शासनाधीन देशों के नाम	अंग, वंग, कलिंग, उत्कल, बर्बर आदि	आन्ध्र, द्राविड़, केरल, कर्णाटक आदि	सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र आदि	कुरु, काश्मीर, पांचाल, कम्बोज आदि

ध्यातव्य : अन्य मत से शंकर गोवर्धन मठ में हस्तामलक को, श्रृंगेरीमठ में पृथ्वीधर को, द्वारकामठ में पद्मपाद को एवं ज्योतिर्मठ में त्रोटक को मठाधिपति नियुक्त किया था तथा काशी के सुमेरुमठ में, जो ऊर्ध्वाम्नाय के अन्तर्गत है, महेश्वर को मठाधिपति नियुक्त किया था।

व्यासाचलीय तथा केरलीय 'शंकरविजय' आदि में लिखा है कि अन्यान्य स्थानों में मठ की स्थापना करने के पहले आचार्य शंकर ने निम्बूदरी (नम्बूद्रि) ब्राह्मणों के संस्कार के लिए अपने जन्मस्थान में मठ की स्थापना की। उसके बाद श्रृंगेरी आदि चार स्थानों एवं काशी (वाराणसी) में मठ की स्थापना की। काशी के मठ में शंकर ने महेश्वर नाम के अपने शिष्य को मठाध्यक्ष नियुक्त किया। अपने रहने के लिए उन्होंने कांचीकामकोटिपीठ का चयन किया था। ऐसा कहा जाता है कि कांची में कामाक्षी देवी के मन्दिर में ही जहाँ आचार्य शंकर की प्रस्तर-प्रतिमा है, उन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी।

आदिशंकराचार्य-प्रदत्त पच्चीस-श्लोकविशिष्ट एक महानुशासन इस सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है। उस महानुशासन में मठ के विषय में अनेक उपदेश हैं। उनका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मठ के आचार्य अपने-अपने क्षेत्र में सदा पर्यटन करते हुए धर्मानुशासन करेंगे। मठाध्यक्ष सदैव मठ में नहीं रहेंगे। वर्णाश्रम-धर्म की रक्षा के लिए जब जिस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए, उन्हें उसका अवलम्बन करना उचित है। एक आचार्य दूसरे आचार्य की शासन-सीमा का उल्लंघन नहीं करेंगे। आवश्यकता होने पर और संशयपूर्ण विषय उपस्थित होनेपर - परस्पर मिलकर व्यवस्था करना उनका कर्त्तव्य है। कभी किसी बात में किसी भी मर्यादा नष्ट न हो, इसके लिए विशेष सतर्क रहना होगा; क्योंकि मर्यादानाश से शुभ विषयों के लुप्त होने की आशंका रहती है। पीठाधीश के लिए वेद, वेदान्त आदि सभी शास्त्रों में पाण्डित्य, योग के सहारे अपरोक्ष ज्ञानलाभ, संयम, सदाचार, नीतिपरायणता आदि सभी सद्गुणों से भूषित होना आवश्यक है। जिनमें ये सब गुण दिखाई नहीं देते, जनता के हाथ में उनको बहिष्कृत करने का अधिकार रहता था। आदिशंकर ने विशेष रूप से जनता की दृष्टि को इस रूप में आकृष्ट किया कि पीठाधीश वास्तव में उसी के प्रतिनिधि हैं। मठ न उजड़े, इस पर दृष्टि रखना मठाधीश का मुख्य कर्त्तव्य होगा।

आदिशंकराचार्य की शिष्य-परम्परा : श्रीविद्यार्णव ग्रन्थ के अनुसार शंकराचार्य के चौदह शिष्य थे। ये सब के सब देवी के उपासक एवं निग्रहानुग्रह करने में समर्थ, साथ ही अलौकिक शक्ति से सम्पन्न थे, ऐसा वर्णन मिलता है। चौदह शिष्यों में पाँच संन्यासी थे, शेष नौ गृहस्थ। पाँच संन्यासी शिष्यों में एक शंकर नाम के भी थे। शेष चार के नाम हैं- पद्मपाद, बोध, गीर्वाण एवं आनन्दतीर्थ। गृहस्थ शिष्यों के नाम हैं : सुन्दर, विष्णुशर्मा, लक्ष्मण, मल्लिकार्जुन, त्रिविक्रम, श्रीधर, कपर्दी, केशव और दामोदर।

पद्मपाद के छह शिष्य थे। उनके नाम हैं - माण्डल, परपावक, निर्वाण, गीर्वाण, चिदानन्द एवं शिवोत्तम। ये सब-के-सब संन्यासी थे। बोधाचार्य के अनेक शिष्य थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि सभी देशों में इनके दो प्रकार के शिष्य थे - संन्यासी तथा गृहस्थ। गीर्वाणेन्द्र के मुख्य शिष्य का नाम है विद्वद्गीर्वाण। विद्वद्गीर्वाण के शिष्य कानाम विबुधेन्द्र, विबुधेन्द्र के शिष्य का नाम सुधीन्द्र तथा सुधीन्द्र के शिष्य का नाम मन्त्रीगीर्वाण है। मन्त्रीगीर्वाण के संन्यासी तथा गृही, दोनों ही प्रकार के शिष्य थे। आनन्दतीर्थ के सभी शिष्य गृही थे। वे पादुकापीठ की आराधना करते थे। सुन्दराचार्य के तीन प्रकार के शिष्य थे - पीठनायक, संन्यासी और गृही। विष्णुशर्मा के शिष्य का नाम प्रगल्भाचार्य है। उक्त 'विद्यार्णव' ग्रन्थ के लेखक लक्ष्मणाचार्य प्रगल्भाचार्य के शिष्य थे। ग्रन्थ में लिखा है कि ग्रन्थ समाप्त होने पर जगद्धात्री महामाया उनके सामने प्रकट होकर बोलीं - 'वत्स, वर माँगो।' जगद्धात्री को अपने सामने खड़ी देखकर उन्होंने कहा, ''माँ यदि कोई साधक केवल मेरे ग्रन्थ के आधार पर गुरु-परम्परा तथा मन्त्र आदि देखकर मुझे गुरु के रूप में स्वीकार करके भक्तिपूर्वक जप करे, तो वह दीक्षित न होने पर भी सिद्धि प्राप्त करे।' देवी ने 'तथास्तु' कहकर उन्हें ईप्सित वर दिया।

लक्ष्मणाचार्य की तपस्या, विद्या और श्री असाधारण कोटि की थी। चतुर्थ अवस्था में वह वीतराग होकर यहाँ-वहाँ देश-भ्रमण करते फिर रहे थे। इसी भ्रमणकाल में एक दिन उन्होंने प्रौढदेव नाम के राजा की राजधानी में प्रवेश किया। प्रौढदेव ने उनके लिए निवास, अन्न, भूषण एवं परिचारक की व्यवस्था की। एक दिन लक्ष्मण जब राजसभा में उपस्थित थे, तब वणिकों ने दूसरे देशों से लाये हुए वस्त्र तथा बहुमूल्य वस्तुएँ राजा को भेंट दीं। राजा ने वे मूल्यवान् वस्त्र लक्ष्मण को दे दिये। उन चीजों को लेकर आचार्य लक्ष्मण अपने घर आये। कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित करके उन्होंने उन सारे वस्त्रों की आहुति दे दी। जब यह संवाद प्रौढदेव के पास पहुँचा, तब उन्होंने दूत द्वारा उनसे यह कहला भेजा कि वे सारे वस्त्र या उनका मूल्य भेज दें। यह बात सुनकर लक्ष्मण क्रुद्ध हुए और 'ब्रह्मस्वापहारक' कहकर राजा को शाप दिया कि 'तू निर्बंश हो जा।' इसके बाद अपने इष्टदेवता की प्रार्थना करके लक्ष्मण ने वस्त्र वापस भेज दिये और उस राज्य को छोड़कर वह दक्षिण की ओर अग्रसर हुए। लक्ष्मण की इस अलौकिक शक्ति की बात सुनकर राजा प्रौढदेव का मन उद्विग्न हुआ और वह उनके पास गये तथा उनके क्रोध की शान्ति के लिए विनीत होकर प्रार्थना की। प्रार्थना से सन्तुष्ट होकर लक्ष्मण ने कहा : 'तुम्हें पुत्र होगा, पर तुम उस पुत्र से सुखी नहीं हो सकोगे।' उन सिद्ध महात्मा के कथनानुसार समय पर राजा को एक पुत्र हुआ। किन्तु, पुत्र के जनमते ही राजा का देहावसान हो गया। ऐसी प्रसिद्धि है कि ऐसे समय राजा प्रजा के अनुरोध से राजकुमार के प्रतिनिधि- स्वरूप

लक्ष्मण राज्य का भार लेकर शासन करते रहे और 'श्रीचक्र' के आकार में नगर बसाकर उसका नाम 'श्रीविद्यानागर' रखा। राजकुमार जब बड़ा हुआ, तब उन्होंने उसका नाम अम्बदेव रखकर उसे 'राजसिंहासन पर बिठाया। नये राजा की आज्ञा एवं राजसभा के पण्डितों की प्रार्थना से, भगवती का आदेश लेकर, उन्होंने प्राचीन आगम-ग्रन्थ[8] यामलग्रन्थ आदि की विशेष आलोचना के साथ कादिमत और हादिमत के सूक्ष्म रहस्यों की खोज करके इस विशिष्ट ग्रन्थ ('विद्यार्णव') की रचना की।

मल्लिकार्जुन के अधिकांश शिष्य विन्ध्यदेशवासी थे। इसी प्रकार त्रिविक्रम के शिष्य जगन्नाथ-क्षेत्र में; श्रीधर के शिष्य गौड़, मिथिला और वंगदेश में तथा कपर्दी के शिष्य काशी, अयोध्या आदि देशों में वास करते थे। केशव और दामोदर के विषय में इस शोध-पपत्र में विशेष कुछ उल्लेख नहीं हैं।[9]

मत प्रचार का मन्त्र : आदिशंकराचार्य ने भारत के चारो कोने में चार पीठों की स्थापना कर तथा मेधावी प्रतिभाशाली और तेजस्वी शिष्यों के सहारे अपने मत व धर्म का भरपूर प्रचार किया। ये सब मिलकर जगह-जगह अपने उद्देश्यानुकूल आश्रम, मठ व गुरुकुल स्थापित किये, जिनमें वेदों व उपनिषदों की विशेष रूप से पढ़ाई होती है और जहाँ के विद्यार्थी आचार्य शंकर के उद्देश्यों के मूर्तिमान रूप बनकर बाहर आते हैं। इन गुरुकुलों, आश्रमों व मठों में विद्यार्थी ब्रह्मचर्य-वास भी करते हैं। विधर्मियों से हिन्दुत्व की रक्षा करने में जितनी कठिनाइयों का सामना स्वयं शंकर एवं उनके शिष्यों और उनके अनुयायियों ने झेली है शायद उतनी किसी और ने नहीं। सच पूछिये तो सम्पूर्ण भारत में हिन्दुओं को जगाकर उन्हें वैदिक धर्म की ओर मोड़ने का सारा श्रेय आचार्य शंकर को है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुओं को वेदों और उपनिषदों का ज्ञान प्रदान कर, तीर्थों एवं मन्दिरों के सन्दर्भ में अपने नवीन अनुसंधानों और उपदेशों से उन्हें उपदेशित कर उन्होंने इस प्रकार जगाया, मानो भगवान् आचार्य शंकर के रूप में स्वयं भारत की आध्यात्मिक साधनाओं को फिर से जीवित करके शेष विश्व के सामने कोई समाधान उपस्थित कर रहे हों। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि आचार्य शंकर की तेजस्विता से भारत की प्राचीन वैदिक परम्परा ने अपनी प्रौढ़ता प्राप्त की। ऐसा लगता है मानो उपनिषद्काल तक इस आध्यात्मिक देश के मनीषियों ने जो आत्म-मन्थन किया; विधर्मियों की ग्लानि को धोने के लिए अपनी श्रेष्ठ शक्तियों का जो चिन्तन और ध्यान किया, आचार्य शंकर उसी तपस्या के वरदान बनकर प्रकट हुए।

भारत पर अशेष ऋण : आचार्य शंकर ने सनातन वैदिक धर्म और भारतीय संस्कृति की जो सेवा की उसका मूल्य नहीं चुकाया जा सकता। जब भारत में आज से लगभग ग्यारह व बारह सौ वर्ष पूर्व अध्यात्मचिन्तन की विभिन्न सम्प्रदायगत धाराएँ प्रवहमान थीं। जब अपने-अपने मत व सिद्धान्त की प्रधानता सिद्ध करने में सारे आचार्यगण आन्दोलनरत थे, अपने-अपने मतों के समर्थन में अन्य मतों की उपेक्षा करने में तल्लीन थे। सामान्य लोग वैदिक धर्म से विमुख हो रहे थे और विधर्मियों द्वारा प्रचारित धर्मों के प्रभाव से सनातन हिन्दुत्व विघटित होता जा रहा था। जब विधर्मियों द्वारा वेदों और उपनिषदों के विभिन्न अंगों की बखिया उधेड़ी जा रही थी, अपनी हीनता और विरोधियों द्वारा प्रचारित मतों की श्रेष्ठता के ज्ञान से हिन्दुओं की आत्मा दबी जा रही थी, वैदिक धर्म की निन्दा सुनते-सुनते हिन्दुओं का दिल फलता जा रहा था, उस समय आचार्य शंकर का अवतरण भारत-भूमि पर हुआ। अब तक वैदिक धर्म की निन्दा व आलोचना करने वाले लोग निश्चिन्त थे कि वैदिक धर्मावलम्बी अपना वैदिकगीत भले ही गाता हो, किन्तु बदले में अवैदिकों की निन्दा व आलोचना करने का उसे साहस नहीं होगा। किन्तु, इस मेधावी एवं तपस्वी वीतरागी संन्यासी ने उनकी आशा पर पानी फेर दिया। सम्पूर्ण भारत में अवैदिक एवं विरोधी मतवादियों से आचार्य शंकर ने शास्त्रार्थ कर अपने पाण्डित्य से उनके मतों का खण्डन कर उन्हें परास्त किया और अपने मत अद्वैतवाद की स्थापना की। शंकर जैसे महाज्ञानी और महायोगी पुरुष ने किसी भी अवैदिक पण्डित को बेदाग नहीं छोड़ा है।

अद्वैत मत का प्रचार करने के लिए आचार्य शंकर ने सारे देश का दौरा करना आरम्भ किया और जहाँ-जहाँ वे गये, अवैदिक परम्परा के पण्डित और विद्वान उनसे हार मानते गये। संस्कृत भाषा का उन्हें अगाध ज्ञान था। संस्कृत में वे धारावाहिक रूप से बोलते थे। साथ ही वे प्रचण्ड तार्किक थे और सत्य ही, रथारूढ़ वैदिक-धर्म के जैसे परम्परापोषक नेता आदिशंकराचार्य हुए, गोस्वामी तुलसीदास को छोड़कर और कोई नहीं हुआ। यह बिलकुल सही बात है कि शंकराचार्य अद्वैत मत का कट्टर समर्थक होते हुए भी भक्ति एवं उपासना के क्षेत्र में मूर्तिपूजा, अवतारवाद,

तीर्थों और अनेक पौराणिक अनुष्ठानों एवं इनसे सम्बन्धित कृत्यों और विश्वासों को अवैदिक घोषित नहीं किया। अवैदिकों के पाश से मुक्त करके जनता को वैदिक-धर्म की ओर ले जाने का यह ढंग प्रशंसनीय अवश्य है। भारत के लोगों में एकता कैसे लायी जाय, इसके लिए आचार्य शंकर ने भारत के चारो कोनों में चार पीठों की स्थापना की। चारों पीठों की उक्षि से भारत में सांस्कृतिक एकत्व व सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ एवं लोगों में अपनी संस्कृति व धर्म के भविष्य के प्रति उज्जवल आशा संचरित हुई। फिर आचार्य शंकर के उपदेशों से भारतवासियों ने यह सीखा कि अद्वैतमत विश्व के सभी मतों में पूर्ण, वैज्ञानिक, दर्शनयुक्त एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है। इससे बढ़कर दूसरा कोई मत नहीं है। अद्वैत मत सभी मतों में समन्वय चाहता है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, यहूदी आदि जो भी चाहे, अपने मत को मानते हुए अद्वैतवादी हो सकता है। अद्वैतमत को अंगीकार कर हिन्दू अच्छा हिन्दू, मुसलमान अच्छा मुसलमान और ईसाई अच्छा ईसाई बन सकता है। अद्वैतवाद का ध्येय है कि सभी मतों में जो तत्व समान है, उन्हें लेकर सभी मतों के बीच एकता स्थापित की जाय। सच पूछिये तो भारतवर्ष की धार्मिक समस्या का जो समाधान अद्वैतमत के आधार पर आचार्य शंकर ने दिया है, उससे बड़ा और अधिक उपयोगी समाधान और कोई हो नहीं सकता। सचमुच में, भारतीय जनता की पाँच हजार वर्ष पुरानी धर्म-साधना रूपी लता पर आचार्य शंकर सबसे नवीन पुष्प बनकर चमके और उन्हें देखकर भारतीय जनता को फिर से यह विश्वास हो गया कि भारत में धर्म की अनुभूति जगाने वाले जिन अनन्त ऋषियों और सन्तों की कथाएँ सुनी जाती हैं, वे झूठी नहीं हैं। आचार्य शंकर के उपदेशों से भारतवासियों ने यह भी सीखा कि भारतवर्ष का अतीत इतना उज्जवल और महान है कि उसके प्रति गौरव और अभिमान होना ही चाहिए। उनके उपदेशों से हमें यह ज्ञान हुआ कि हमारी वैदिक संस्कृति प्राणपूर्ण एवं आज भी विश्व का कल्याण करने वाली है।

सन्दर्भ

प्रस्तुत लेख आचार्य शंकर के चरित्र-विषयक ग्रन्थों के आधार पर विरचित किया गया है। ये ग्रन्थ हमें सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पुस्तकालय में उपलब्ध हुए। कुछ तो बहुत ही जीर्ण-शीर्ण स्थिति में हैं। हम आभारी हैं पुस्तकालय के कर्मचारियों के जिन्होंने मुझे इन दुर्लभ ग्रन्थों का अवलोकन करने का अवसर दिया।

शंकर के चरित्र-विषयक ये सब ग्रन्थ विशेष उल्लेख योग्य हैं –

(1) माधवाचार्य-कृत शंकरदिग्विजय।
(2) आनन्दगिरि-कृत शंकर विजय।
(3) राजचूड़ामणि-कृत शंकराभ्युदय।
(4) चिद्विलासेन्द्र-कृत शंकरविजय।
(5) सदानन्द रचित शंकरजय।
(6) सर्वज्ञसदाशिव-बोधकृत पुण्यश्लोकमंजरी।

1. कांची की आचार्य-परम्परा एन. वेंकटरमण कृत "Sankaracharya the Great and His Successors in Kanchi" नामक ग्रन्थ में (सन् 1923 ई.) एवं द्वारका का आचार्य परम्परामूल काल Theosophist पत्र के सोलहवें खण्ड के तीसरे एवं पाँचवें अंक में बाबू गोविन्ददास की रचना में द्रष्टव्य है।
2. द्रष्टव्य : प्दकपंद ःदजपुनंतलए पृ0 282.
3. द्रष्टव्य : आचार्य शंकर एवं रामानुज (बंगला) पृ0 787-807.
4. द्रष्टव्य : History of Indian Literature, P. 51, Note -
5. Proceedings of the Third Oriental Conference, p. 225.
6. नीलकण्ठ भट्ट कृत 'शंकरमन्दारसौरभ' में भी यही मत गृहीत हुआ है (द्रष्टव्य : आर्यविद्यासुधाकर)। प्राध्यापक टीले ने अपने Outline of the History of Ancient Religions नामक ग्रन्थ (पृ0 141) में इसी मत को स्वीकार किया है। के. बी. पाठक ने बेलगाँव में तीन पत्रयुक्त एक पुस्तक पायी थी। उसके अन्तिम अंश में ऐसा लिखा है :

दुष्टाचारविनाशाय प्रादुर्भूतो महीतले।
स एव शंङ्कराचार्यः साक्षात् कैवल्यनायकः।।
निधिनागेभवह् न्यब्दे (3889 कल्यब्द त्र शकाब्द 710 त्र खृष्टाब्द 788) विभवे शङ्करोदयः।
अष्टवर्षे चतुर्वेदान द्वादशे सर्वशास्त्रकृत।
षोडसे कृतवान भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्।।
कल्यब्दे चन्द्रनेत्राङ्कवह् न्यब्दे (3931) गुहाप्रवेशः।
वैशाखे पुर्णिमायान्तु शङ्करः शिवतामियात्।।
(द्रष्टव्य : के.बी. पाठक The Date of Shankaracharya नामक रचना, Indian Antiquary, 1882, pp. 173-175) कृष्णब्रह्मानन्द-कृत शंकर विजय में भी शंकर का जन्मकाल इस प्रकार कहा गया है -
निधिनागेमवह् न्यब्दे विभवे शङ्रोदयः।
कलौ तु शालिवाहस्य सखेन्दुशतसप्तके (710)।।
कल्यब्दे भूद्गगङ्काग्निसम्मिते शङ्करो गुरुः।
शालिवाहशके त्वक्षि सिन्धुसप्तभितेऽभ्यगात्।।

अतएव शंकर का आविर्भाव-काल कल्पब्द 3889 अथवा शकाब्द 710 एवं तिरोभाव-काल 3921 अथवा शकाब्द 742 है।

7. जो इस विषय में पूर्ण विवरण चाहते हैं, उन्हें आचार्य वेदान्तदेशिक के पांचरात्र विषयक ग्रन्थ के साथ ही अहिर्बुध्न्यसंहिता, जयाख्यसंहिता आदि पांचरात्र-ग्रन्थों को देखना चाहिए। प्रसंगतः D. Otto Schrader द्वारा लिखित Introduction to Panchratra नामक पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ भी देखना आवश्यक है।

8. तन्त्रराज, मातृकार्णव, त्रिपुरार्णव, योगिनीहृदय आदि।

9. 'गद्यवल्लरी' नामक श्रीविद्या के एक पद्धतिग्रन्थ का पता चलता है। इस ग्रन्थ का प्रणेता श्रीनिजात्मप्रकाशानन्दनाथ मल्लिकार्जुन योगीन्द्र हैं। यह ग्रन्थ 1435 शकाब्द, अर्थात् 1513 खृष्टाब्द में लिखा गया ('शके वाण त्रिवेदशशिसम्मिते')। ग्रन्थ से ही ऐसी प्रतीति होती है। यह शंकराचार्य-सम्प्रदाय का तान्त्रिक ग्रन्थ है। इसके प्रारम्भ में शंकर की गुरु-परम्परा और शिष्य परम्परा का कुछ वर्णन मिलता है। पाठकों के उत्सुकता-निवारण के लिए उसका सारांश यहाँ दिया जा रहा है। इस मत के अनुसार शंकर-सम्प्रदाय के प्रवर्तक शिव हैं। इनके परवर्ती गुरुओं के नाम इस प्रकार हैं - विष्णु, ब्रह्मा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक्र, गौडपाद, गोविन्द और शंकराचार्य। शंकर की शिष्य-परम्परा इस प्रकार है - विश्वरूप बोधधन, ज्ञानधन, ज्ञानोत्तम, शिव, ज्ञानगिरि, ईश्वरतीर्थ, नृसिंहतीर्थ, विद्यातीर्थ, शिव, भारतीतीर्थ, विद्यारण्य, मलयानन्द, देवतीर्थसरस्वती, नृसिंहतीर्थ, विद्यातीर्थ, शिव, भारतीतीर्थ, विद्यारण्य, मलयानन्द, देवतीर्थसरस्वती, नृसिंहसरस्वती, माधवेन्द्रसरस्वती, मल्लिकार्जुन, योगीन्द्र, रामदेव, दायदेवयति, गगनानन्द, चिद्घनान्द, महेश्वरानन्द, चिदानन्द तथा आनन्दचित्प्रतिबिम्ब।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी–जून 2019
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

आर्थिक सुधारों की अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र के निजीकरण की नीति की उपयुक्तता : एक आर्थिक विश्लेषण

❑ डॉ0 पूनम सिंह

वर्तमान समय में सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का निजीकरण निरन्तर किया जा रहा है। बढ़ती हुयी निष्पादकता और लाभ प्रदता के बाद भी सरकार की नीति निजीकरण को बढ़ावा देने की रही है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य इस नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए उन कारकों पर प्रकाश डालना है जिनसे प्रभावित हो कर विनिवेश की नीति बनायी जा रही है। रोजगार और श्रम कल्याण की कसौटी पर सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके पश्चात् भी सरकार विनिवेश और निजीकरण में वृद्धि करती जा रही है जो अर्थव्यवस्था के लिए उचित नहीं है, क्योंकि निजीकरण से भ्रष्टाचार और श्रमिकों की छटनी निरन्तर बढ़ रही है। श्रम प्रधान देश में अर्थव्यवस्था में श्रमिकों के कुशल प्रबन्धन के लिए तथा बेरोजगारी को कम करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का कुशल प्रबन्धन अधिक आवश्यक है। निजी क्षेत्र को इन उद्यमों के बेचने के बजाय सरकार को इनकी लाभदेयता, पूंजी निवेश, कुशल प्रबन्धन और निश्चित समय मे परियोजना को पूरा करने पर ध्यान देना चाहिए।

भारतीय अर्थव्यवस्था का वर्तमान ढांचा मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जाता है जिसमें उत्पादन निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत होता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् सिंचाई संचार, रेल, बन्दरगाह, प्रसारण तथा कुछ विभागीय औद्योगिक संस्थानों को सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत रखा गया है। कुछ उद्योग सरकारी क्षेत्र के साथ-साथ निजी क्षेत्र में भी स्थापित किए गए जिसमें एल्युमिनियम, लघु औजार, औजारी इस्पात, उर्वरक, कृत्रिम रबर, सड़क यातायात आदि प्रमुख हैं जबकि निजी क्षेत्र के लिए उपभोक्ता माल बनाने वाले सभी उद्योग छोड़ दिए गए। इस व्यवस्था के साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे विकास की ओर अग्रसर हुयी।

विचारणीय तथ्य यह है कि इस्पात, भारी इंजीनियरिंग और अन्य आधारभूत उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के लिए क्यों चुने गए जबकि उपभोग पदार्थों का उत्पादन निजी क्षेत्र के लिए क्यों छोड़ दिए गए? वास्तव में भारत सरकार की 1955 के पश्चात् की औद्योगिक नीति दो मान्यताओं पर आधारित थी-प्रथम, सामान्य उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन जिन उद्योगों के द्वारा किया जाता है, उसमें प्रेरित निवेश होता है – जो लाभ की प्रेरणा से होता है। अतः यदि आयात पर नियंत्रण करके इन उद्योगों को संरक्षण दिया जाए तो इनका लाभ प्राप्त करने की क्षमता बढ़ती है और इनके कुल उत्पादन में भी वृद्धि होगी जिससे सकल घरेलू उत्पाद भी बढ़ेगा। द्वितीय, जिन उद्योगों की स्थापना के लिए विदेशी विनिमय की अधिक आवश्यकता पड़ती है तथा जिनमें जटिल तकनीक होती है, उनमें स्वायत्त निवेश की आवश्यकता होती है। स्वायत्त निवेश बिना लाभ की प्रत्याशा के राज्य के द्वारा किए जाते हैं। अतः इन उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में रखना उचित है।[1]

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम बुनियादी आर्थिक संरचना के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। औपनिवेशिक काल से स्वतन्त्र भारत को अल्प विकसित बुनियादी संरचना विरासत में मिली थी। आज़ादी प्राप्त होने के बाद निजी क्षेत्र ने इसके विकास में कोई रूचि नहीं दिखायी। अंततः राज्य और सार्वजनिक क्षेत्र के प्रयास से ही औद्योगिक विकास के लिए सुदृढ़ आधारभूत संरचना का आधार तैयार हुआ जिसका लाभ निजी क्षेत्र को भी मिला। आज देश का औद्योगिक आधार 1950-51 की तुलना में अधिक सुदृढ़ है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की महती भूमिका है। सरकार ने लोहा, भारी इंजीनियरिंग, कोयला, बिजली के भारी उपकरण, तेल एवं प्राकृतिक गैस, रसायन एवं औषधि, उर्वरक आदि उद्योगों की स्थापना कर औद्योगिक क्षेत्र के उत्पादन का विस्तार किया है और अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ आधार दिया है। ये उद्योग अल्पकाल में लाभ की संभावनाएं कम होने के कारण निजी क्षेत्र में स्थापित नहीं हो सकते थे। बिना इन उद्योगों की स्थापना

❑ एसोसिएट प्रोफेसर-अर्थशास्त्र, साहू राम स्वरूप महिला महाविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

के निजी क्षेत्र में स्थापित उपभोग पदार्थों का उत्पादन करने वाले उद्योगों का भी विकास नहीं हो सकता।[2] आर्थिक सुधारों के बाद भारत में सरकारों का एक प्रमुख उद्देश्य सार्वजनिक उपक्रमों के विनिवेश और निजीकरण का रहा है। 1956 की औद्योगिक नीति के प्रस्ताव में 17 उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित रखा गया था जबकि 1991 की औद्योगिक नीति में इनकी संख्या कम करके 8 कर दी गयी। परन्तु वर्तमान में केवल 3 उद्योग- परमाणु ऊर्जा (उत्पादन व उपयोग) सूची 1995 में सूचित खनिज तथा रेल परिवहन, ही सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित रखे गए हैं। वर्तमान समय में रेल परिवहन के निजीकरण पर भी काफी चर्चा परिचर्चा चल रही है।

उपर्युक्त सन्दर्भ के आधार पर प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य सरकार की सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण की नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन करके यह स्पष्ट करना है कि क्या यह नीति अर्थव्यवस्था के लिए वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों में उचित है।

साहित्य पुनरावलोकन :- हजारी और ओझा के अनुसार इस्पात और भारी इंजीनियरिंग उद्योग में उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत ही होना चाहिए क्योंकि इनमें अधिक तकनीक, अधिक पूंजी और कम लाभ की स्थिति होती है।[3] ए0एच0 हेन्सन के अध्ययन में भी यह स्पष्ट किया गया है कि उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के लिए यदि निजी उद्योगों की स्थापना होती है तो उनके विकास के लिए आधारभूत भारी उद्योगों की स्थापना अत्यन्त आवश्यक है। अतः सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को उपेक्षित नहीं किया जा सकता।[4]

सुनीलमानी के अध्ययन निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि सार्वजनिक क्षेत्र में अधिकांश औद्योगिक इकाइयों का आधार आर्थिक कार्यकुशलता को ध्यान में रखकर किया जाता है। भारत में विभिन्न बुनियादी उद्योगों की सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापना से प्राप्त होने वाली पैमाने की किफायतों से सार्वजनिक उद्योगों के सार्वजनिक लाभ में वृद्धि ही हुयी है।[5] बलदेव राज नायर ने अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि सरकार में आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण पर नियंत्रण और क्षेत्रीय असमानताओं में कमी लाने के उद्देश्य से सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना की थी और उसमें वह सफल भी रही।[6]

उपर्युक्त पुनरावलोकन से स्पष्ट है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसको दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोध पत्र उन कारकों पर प्रकाश डालना चाहता है जिनके कारण सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के निजीकरण और विनिवेश की नीति पर बल दे रही है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का निष्पादन और लाभ प्रदता :- सार्वजनिक उद्यम उन क्षेत्रों में स्थापित किए जाते हैं जहां लाभोत्पादकता कम होती है और लाभ काफी समय के बाद मिलने की आशा होती है। परन्तु इन क्षेत्रों मे निवेश महत्वपूर्ण है क्योंकि ये भविष्य में औद्योगिक गतिविधियों के विकास का आधार बनते हैं। कुछ सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम निजी क्षेत्र के लिए आगत उपलब्ध कराते हैं। इन उद्यमों के उत्पादन की कीमत प्रायः कम रखी जाती है जिससे सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि न हो अन्यथा उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो सकती है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम भारत जैसे विकासशील और अत्यधिक श्रम वाले देश में केवल पूंजी प्रधान तकनीक से उत्पादन नहीं कर सकते। उपरोक्त तर्कों से यह स्पष्ट है कि सार्वजनिक उद्यमों के निष्पादन का मूल्यांकन केवल उनके लाभ पर आधारित न होकर इस आधार पर होना चाहिए कि उन्होंने अर्थव्यवस्था में उत्पादन व सेवा क्षेत्र में क्या योगदान दिया है। स्वतंत्रता के पश्चात् सार्वजनिक क्षेत्र का तेजी से विकास हुआ है। पहली पंचवर्षीय योजना में जहां देश में केवल 5 सार्वजनिक उद्यम थे और जिनका कुल निवेश केवल 29 करोड़ था, वहीं 31 मार्च 2018 को यह संख्या 248 थी जिसमें से 220 कार्यरत थे।

तालिका-1

केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का निष्पादन (करोड़ रू0)

वर्तमान चालू उद्यम	1999-2000	2006-07	2012-13	2017-18
संख्या	232	217	217	220
लगायी गयी पूंजी	302947	661338	908007	1249499
बिक्री	389199	964890	1244805	2073319
लाभांश भुगतान	5455	26819	37223	45681
ब्याज	20333	27481	40330	38998
कर पूर्व लाभ	22037	111527	123957	191627
कर उपरान्त लाभ	14331	77175	93939	106324
बिक्री से निबल लाभ का अनुपात प्रतिशत	3.7	8.0	7.7	6.9
पूंजी से निबल लाभ का अनुपात प्रतिशत	4.7	11.7	9.2	10.1

स्त्रोत : Tata Services Ltd., Statistical Otline of India, Mumbai 2013 Government of India- A Reference Annual (New Delhi 2015) Economic Survey 2019, GOI

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की बिक्री में निरन्तर वृद्धि हुयी है। थोड़े उतार चढ़ाव के साथ लाभ का लगायी गयी पूंजी से अनुपात में भी वृद्धि हुयी है। केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का कोयला व लिग्नाइट उत्पादन, पेट्रोलियम उत्पादन तथा जिंक जैसी अलौह धातुओं के उत्पादन में महत्वपूर्ण हिस्सा है। यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का निष्पादन जानने के लिए लाभ को ही कसौटी मानना सही नहीं है तब भी इनकी स्थापना में चूंकि सरकार करोड़ों रूपये खर्च करती है अतः इनकी वित्तीय निष्पत्ति महत्वपूर्ण है। कर उपरान्त लाभ की राशि तथा इसका कुल बिक्री से अनुपात भी निरन्तर बढ़ता रहा है। इससे यह स्पष्ट है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की लाभदेयता निश्चित रूप से पंचवर्षीय योजनाओं के साथ बढ़ी है। यह भी महत्वपूर्ण है कि इन उद्यमों की बजटीय साधनों पर निर्भरता में कमी आयी है तथा आंतरिक साधन सृजन में वृद्धि हुयी है। रोजगार और श्रम कल्याण की कसौटी पर भी सार्वजनिक क्षेत्र का निष्पादन संतोषजनक है। देश के रोज़गार की स्थिति सुधारने में इन उद्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। पूंजीगत वस्तुओं, औद्योगिक मशीनरी तथा अन्य उपकरण जिनका चार दशक पहले तक आयात होता था, अब देश में ही बनाए जाते हैं जिससे विदेशी मुद्रा की बचत हुयी है। तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग तथा भारतीय तेल निगम ने आयातों पर निर्भरता को कम किया है।

इतनी भारी उपलब्धियों के बाद यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यदि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की निष्पादकता और लाभदेयता संतोषजनक है तो आर्थिक सुधारों के बाद सरकार की नीति इनके निजीकरण और विनिवेश की क्यों है?

इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र की देश के विकास में भूमिका के महत्व पर बहुत विवाद नहीं है। लेकिन अनेक शोध पत्रों के द्वारा यह धारणा स्थापित की गयी है कि इनके द्वारा अर्जित लाभ की दर या तो बहुत कम है या अधिकांश की कार्यकुशलता का स्तर बहुत ही निम्न है।[7,8] सार्वजनिक क्षेत्र के किसी भी उद्योग की कार्यकुशलता उसके औद्योगिक ढांचे को बदल सकने की क्षमता, आधुनिकीकरण, देशव्यापी स्तर पर श्रम की उत्पादकता में सुधार आदि पर निर्भर करती है। सार्वजनिक क्षेत्र की आलोचना करना आम बात हो गयी है जबकि इस क्षेत्र ने भारत के विकास में दूसरी पंचवर्षीय योजना से निरन्तर महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका निभायी है जिसे उत्पादन के बिक्री मूल्य के द्वारा नहीं मापा जा सकता। जबकि निजी क्षेत्र इस अवधि में अपनी तकनीकी क्षमताओं तथा तकनीकी विशेषज्ञों की आपूर्ति के लिए सार्वजनिक क्षेत्र पर निर्भर बना रहा।[9] सन् 1991 में नई आर्थिक नीति की घोषणा के बाद सार्वजनिक उद्यमों की मूल्य नीति में स्पष्ट परिवर्तन हुआ है। नयी नीति में बाजार आधारित मूल्य नियमन नीति अपनाने का प्रयास किया गया।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की प्रमुख समस्या यह है कि

इनकी उत्पादन क्षमता का अल्प प्रयोग किया गया। अनेक अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह सरकार की अदूरदर्शिता तथा तीसरी योजना के बाद प्राथमिकताओं के निर्धारण का निर्णय दबाव में लेने के कारण इन उद्यमों की उत्पादन क्षमता का पूर्ण दोहन नहीं किया जा सका। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र के अनेक बीमार उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में इसलिए सम्मिलित कर लिया गया जिससे वे बन्द न हों और बेरोजगारी भी न बढ़े। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक परियोजनाओं में गलत अनुमानित लागत, पूरा करने में देरी, अनुपयुक्त तकनीकी आदि के कारण भी इन उद्यमों की क्षमता का पूरा प्रयोग नहीं हो पाया। वास्तव में बहुत बड़े निवेश कार्यक्रमों और परियोजनाओं को बिना पूरी तैयारी के लागू कर दिया गया।[10] पिछड़े हुए क्षेत्रों में बड़े-बड़े सार्वजनिक उद्यमों को स्थापित करने के निर्णय से भी इन क्षेत्रों में आधारभूत संरचना के निर्माण में अधिक व्यय करना पड़ा जिससे लागतें अधिक बढ़ीं।[11]

उपर्युक्त समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए आर्थिक सुधारों की अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति नीति परिवर्तित हो गयी, जिसके प्रमुख चार बिन्दु निम्न प्रकार हैं-

1. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या 17 से घटाकर पहले 8 और फिर 3 कर दी गयी।
2. साधन एकत्रित करने के लिए और सामान्य जनता व श्रमिकों की सार्वजनिक क्षेत्र में भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ चुने हुए सार्वजनिक उद्यमों के शेयरों का विनिवेश किया गया।
3. अस्वस्थ सार्वजनिक इकाइयों के लिए वही नीति अपनाने की घोषणा की गयी जो अस्वस्थ निजी इकाइयों के लिए अपनायी जाती है (निजीकरण में वृद्धि)
4. समझौता ज्ञापनों के द्वारा सार्वजनिक उद्यमों के निष्पादन में सुधार पर अधिक बल दिया गया। इस नीति के अन्तर्गत सार्वजनिक उद्यमों के प्रबन्धकों को अधिक अधिकार और स्वायत्तता देने के साथ ही उन्हें निष्पादन के लिए उत्तरदायी बनाने की व्यवस्था की गयी।

नवरत्नों, महारत्नों तथा मिनी रत्नों के लिए अलग नीति :- सरकार ने 15 सार्वजनिक उद्यमों को नवरत्नों की श्रेणी में सम्मिलित किया है। इन नवरत्नों को संपूर्ण वित्तीय और प्रबन्धकीय स्वायत्तता की घोषणा की गयी है जिससे ये विश्वस्तर के बड़े उद्यम बन सकें। इनके लिए स्वायत्तता पैकेज की घोषणा की है जिसके अनुसार इन्हें निम्न सुविधाएँ दी गयी हैं:-

1. ये उद्यम जितना पूँजी व्यय करना चाहें कर सकते हैं।
2. इन्हें घरेलू या अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से पूँजी एकत्र करने की स्वतंत्रता है।
3. प्रौद्योगिकी संयुक्त परियोजनाओं तथा पूर्ण स्वामित्व वाले सहायक उद्यमों में 200 करोड़ रूपये तक का इक्विटी निवेश कर सकते हैं।
4. संगठनात्मक पुर्नगठन कर सकते हैं तथा अपने बोर्ड में बाहर से विशेषज्ञों को अंशकालिक नियुक्तियाँ दे सकते हैं।

सरकार ने कुछ शर्तों के आधीन लाभ प्राप्त करने वाले कुछ सार्वजनिक उद्यमों के लिए वित्तीय और प्रबंधकीय स्वायत्तता पैकेज की घोषणा की है। इन उद्यमों को मिनी रत्न की संज्ञा दी गयी है। दिसम्बर 2009 में केन्द्रीय सार्वजनिक उद्यमों के लिए एक नए महारत्न वर्ग की घोषणा की गयी। इसका उद्देश्य सुयोग्य केन्द्रीय सार्वजनिक उद्यमों को ऐसी शक्तियाँ प्रदान करना है जिससे वे अपने प्रचालन क्षेत्र का विस्तार कर सकें तथा वैश्विक स्तर पर प्रभावी रूप से कार्य कर सकें। महारत्न वर्ग के सार्वजनिक उद्यमों के बोर्ड को वे सारे अधिकार होंगे जो नवरत्न सार्वजनिक उद्यमों के बोर्ड को हैं।

निजीकरण की नीति :- भारत सरकार ने औद्योगिक क्षेत्र से अपने कदम वापस खींचना आरम्भ कर दिया है। उसके अनुसार वह सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का चरणवद्ध तरीके से निजीकरण कर रही है। इसके लिए सरकार का मुख्य दृष्टिकोण यह है कि सभी गैर सामरिक सार्वजनिक उद्यमों में सरकारी भागीदारी को 26 प्रतिशत तक या उससे कम कर दिया जाए तथा उन इकाइयों को बन्द कर दिया जाए जिन्हें पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। निजीकरण की नीति का सबसे महत्वपूर्ण कदम कुछ विशेष चयनित सार्वजनिक उद्यमों में शेयरों का विनिवेश है जिसका मुख्य लक्ष्य बजट के लिए गैर स्फीतिकारी वित्तीय साधन जुटाना है। सरकार ने विनिवेश के लिए दो विधियों का प्रयोग किया है-

1- विशिष्ट सार्वजनिक उद्यमों के शेयरों की बिक्री (विनिवेश)।
2- सार्वजनिक इकाइयों की निजी क्षेत्र को बिक्री जिसे स्ट्रेटेजिक बिक्री कहा गया है।

1991-92 से 1998-99 की अवधि में सरकार ने शेयर बिक्री की विभिन्न रीतियों के द्वारा विनिवेश किया। 1999-2000 से 2003-04 तक स्ट्रेटेजिक बिक्री का सहारा लिया गया। 2004-05 के बाद से शेयरों की बिक्री द्वारा विनिवेश किया गया है। तालिका नं0-2 में 1991-92 से 31 मार्च 2014 तक विनिवेश के संबंध में उपलब्धियों के आंकड़े दिये गये हैं-

तालिका-2

सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में विनिवेश (1991-92 से 31.03.2014 तक)(करोड़ रूपए)

वर्ष	लक्ष्य	प्राप्ति	संचयी प्राप्ति
1991-92	2,500	3,038	3,038
1992-93	2,500	1,913	4,951
1993-94	3,500	0	4,951
1994-95	4,000	4,843	9,794
1995-96	7,000	168	9,962
1996-97	5,000	380	10,342
1997-98	4,800	910	11,252
1998-99	5,000	5,371	16,623
1999-2000	10,000	1,860	18,483
2000-01	10,000	1,871	20,354
2001-02	10,000	5,658	26,012
2002-03	12,000	3,348	29,360
2003-04	14,500	15,547	44,907
2004-05	4,000	2,765	47,672
2005-06	-	1,570	49,242
2006-07	-	-	49,242
2007-08	-	4,181	53,423
2008-09	-	-	53,423
2009-10	-	23,553	76,976
2010-11	40,000	22,144	99,120
2011-12	40,000	13,894	1,13,014
2012-13	30,000	23,956	1,36,970
2013-14	40,000	15,820	1,52,790

स्रोतः Department of Disinvestment http:\\divest.nic.in

1991-92 में विनिवेश की प्रक्रिया शुरू होने पर सरकार ने अच्छा व खराब प्रदर्शन करने वाले सार्वजनिक उद्यमों के शेयर इकट्ठा 'समूह' में बेचे। परन्तु इससे लाभ होने के स्थान पर हानि हुई और 'समूह' में शेयरों की बिक्री से काफी कम औसत कीमत प्राप्त हो पाई। इसके परिणामस्वरूप बहुत अच्छी कंपनियों के शेयर भी बहुत सस्ते बिक गए। इसलिए सरकार ने 1992-93 में 'समूह' में शेयर बेचने की नीति छोड़ दी और नीलामी द्वारा प्रत्येक कंपनी के शेयर अलग-अलग बेचने शुरू किए। 1994-95 में अनिवासी भारतीय तथा अन्य लोगों को भी नीलामी में हिस्सा लेने की अनुमति दी गई। 1999-2000 के बाद से अधिकतर विनिवेश स्ट्रेटेजिक बिक्री के द्वारा किया गया है और सरकार सार्वजनिक उद्यमों का नियंत्रण निजी क्षेत्र के उद्यमियों के हाथ सौंप रही है। विनिवेश की रीति में इस परिवर्तन के पीछे यह तर्क है कि शेयरों की बिक्री अल्पकालीन बाज़ार प्रत्याशाओं पर आधारित होती है जबकि स्ट्रेटेजिक बिक्री कंपनी की 'दीर्घकालीन मूल कीमत' को प्रतिलक्षित करती है। निजी क्रेता, कंपनी पर नियंत्रण पाने के बदले, कंपनी की ज़्यादा कीमत देने को तैयार हो जाता है। सरकार ने जिन सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की स्ट्रेटेजिक बिक्री की है उनमें प्रमुख हैं - MFIL, VSNL, IPCL, BALCO, CMC Ltd., HTL Ltd., IBP, ITDC (13 होटल), HZL, HCL (3 होटल), PPL, MUL इत्यादि।

1991-92 से 9 अप्रैल, 2013 तक सरकार को विनिवेश से 1,36,971 करोड़ रूपए की प्राप्ति हुई। परन्तु जैसा कि तालिका-2 से स्पष्ट है, कई वर्षों में वास्तविक प्राप्ति, लक्ष्य की तुलना में काफी कम रही है। 2009-10 में 40,000 करोड़ रूपए के लक्ष्य के विपरीत, वास्तविक प्राप्ति 23,553 करोड़ रूपए थी। वर्ष 2011-12 में भी 40,000 करोड़ रूपए के विनिवेश का लक्ष्य रखा गया परन्तु सरकार विनिवेश द्वारा केवल 13,894 करोड़ रूपए ही प्राप्त कर पाई। वस्तुतः इस वर्ष केवल दो कंपनियों में ही विनिवेश हो पाया -PFC तथा ONGC में। PFC में विनिवेश से 1,144.55 करोड़ रूपए की प्राप्ति हुई। ONGC में सरकार ने फरवरी 2012 के अन्त में 5 प्रतिशत शेयर बेचने की घोषणा की। शेयरों की बिक्री दो स्टॉक एक्सचेंजों में खुली नीलामी द्वारा की गई। परन्तु नीलामी असफल रही और आम जनता ने शेयर खरीदने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। आलोचकों के अनुसार इसका कारण यह था कि सरकार ने शेयर की न्यूनतम कीमत 290 रूपए रखी जबकि बाज़ार कीमत उससे कम (283 रूपए) थी। लक्ष्यों की तुलना में वास्तविक प्राप्तियाँ कम होने के कारण सरकार ने वर्ष 2012-13 के लिए विनिवेश का लक्ष्य कम करके 30,000 करोड़ रूपए कर

दिया जबकि विनिवेश की वास्तविक प्राप्ति 23,956 करोड़ रूपए रही (इस वर्ष NTPC के शेयरों की बिक्री से 11,458 करोड़ रूपए प्राप्त हुए) 2013-14 में विनिवेश का लक्ष्य 40,000 करोड़ रूपए रखा गया जबकि विनिवेश से वास्तविक प्राप्ति 15,820 करोड़ रूपए रही।

निजीकरण : एक आलोचना

1. **घाटे पर शेयर-बिक्री** - सरकार ने विनिवेश की प्रक्रिया किसी आयोजित ढंग से नहीं की। इसलिए न केवल वास्तविक साधन एकत्रण संभाव्य साधन एकत्रण से कम रहा अपितु विनिवेश के अन्य उद्देश्य भी प्राप्त नहीं किए जा सके। सरकार ने यह कार्यक्रम शीघ्रता में, बिना उपयुक्त तैयारी किए, लागू कर दिया। उसने स्टॉक एक्सचेन्ज पर सार्वजनिक इकाइयों के शेयर लिस्ट नहीं किए इसलिए उनकी संभावित कीमत के बारे में कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिल पाई। न ही सार्वजनिक इकाइयों तथा पूंजी बाजार के बीच कोई संबंध स्थापित करने की चेष्टा की गई। सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के विनिवेश की देख-रेख की उचित व्यवस्था नहीं की गई। सार्वजनिक उद्यमों से संबंधित विभाग तथा वित्त मंत्रालय ने शेयरों की कीमत निर्धारण की तथा उन्हें बेचने की जो विधियां अपनाई वे दोषपूर्ण थीं इसलिए शेयरों की बिक्री से जो साधन एकत्रण हुआ वह बहुत कम था। यह भारत के कन्ट्रोलर और आडिटर जनरल द्वारा पेश की गई तीनों रिपोर्टों से स्पष्ट होता है।[12] CAG ने 1993 में प्रकाशित पहली रिपोर्ट में सरकार को विनिवेश के पहले दो दौर से होने वाले घाटे का अनुमान लगाया था। कम कीमत के कारण, प्रतिशत के रूप में विभिन्न कम्पनियों के शेयरों पर यह घाटा 127 प्रतिशत से लेकर 616 प्रतिशत तक था। औसतन घाटा लगभग 256 प्रतिशत रहा। यदि इस औसतन घाटे के आधार पर अनुमान लगाया जाए तो संभावित विक्रय राशि 12,554 करोड़ रूपए बनती है जबकि वास्तविक विक्रय से सरकार को मात्र 4,951 करोड़ रूपए प्राप्त हुए।[13] CAG की दूसरी रिपोर्ट 2005 में प्रकाशित हुई जिसमें दो सरकारी होटलों की बिक्री नीति की समीक्षा की गई। इस रिपोर्ट का निष्कर्ष यह था कि बिक्री केवल एक बोली के आधार पर कर दी गई और मूल्यांकन की नीति दोषपूर्ण थी जिसके कारण न्यूनतम बिक्री मूल्य (इसे reserve price कहा जाता है) बहुत कम रखा गया। CAG की तीसरी व नवीनतम रिपोर्ट 2006 में प्रकाशित हुई। इसमें नौ ऐसे सार्वजनिक उद्यमों की समीक्षा की गई जिनकी बागडोर सरकार ने स्ट्रेटेजिक बिक्री के माध्यम से निजी क्षेत्र को सौंप दी है। इस रिपोर्ट के अनुसार, अधिकतर स्थितियों में मूल्यांकन की रीति दोषपूर्ण थी और न्यूनतम बिक्री मूल्य निर्धारित करते समय सरकार ने प्लांट व मशीनरी, आवासीय गृहों, भूमि तथा अन्य संम्पत्तियों की कीमतों को शामिल नहीं किया, प्रतिस्पर्धा का सहारा न लेते हुए केवल एक ही बोली को स्वीकार कर लिया (कई बार यह निर्णय लेते समय अन्य बोलियों को बिना कोई उचित कारण बताइए अस्वीकार कर दिया), तथा स्ट्रैटिजिक पार्टनर को निजीकृत सरकारी उद्यम की बची हुई इक्विटी खरीदने का अधिकार दे दिया (इसके परिणामस्वरूप HZL के स्ट्रैटिजिक पार्टनर ने लगभग आठ करोड़ शेयर 40.51 रूपए प्रति शेयर की कीमत से खरीद लिए जबकि उनकी बाजार में कीमत 119.10 रूपए प्रति शेयर थी। इसी प्रकार की नीति BALCO के स्ट्रैटिजिक पार्टनर ने अपनाई।[14]
2. **परिसंपत्ति बेचकर घाटे को पूरा करना** -विनिवेश से प्राप्त राशि के प्रयोग की भी कुछ अर्थशास्त्रियों ने आलोचना की है। सरकार ने इस पूंजी प्राप्ति का प्रयोग राजस्व प्राप्ति में घाटे को पूरा करने के लिए तथा इस प्रकार राजकोषीय घाटा पूरा करने के लिए किया है जो कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश द्वारा रखी गई शर्त थी। परन्तु लाभकारी सार्वजनिक उद्यमों की परिसंपत्ति बेचकर प्राप्त की गई राशि का प्रयोग वर्तमान उपयोग के लिए करना कहाँ तक उचित है?
3. **निजीकरण का निष्पादन से सीधा संबंध नहीं**- हाल के वर्षों में किए गए कुछ अध्ययनों में इस बात की आलोचना की गई है कि निजीकरण से निष्पादन में अनिवार्य रूप से सुधार होता है। इन अध्ययनों में कहा गया है कि इकाई के स्वामित्व स्वरूप तथा निष्पादन में कोई सीधा व धनात्मक सम्बन्ध नहीं है। उदाहरण के लिए, प्रणब बर्धन तथा जान ई. रोईमर के अनुसार, कुशल व प्रभावी अर्थव्यवस्था के लिए प्रतिस्पर्धात्मक बाजारों का होना आवश्यक है। परन्तु केवल निजी स्वामित्व से ही प्रतिस्पर्धात्मक बाज़ार विकसित हों ऐसा नहीं है।

सार्वजनिक उद्यमों की बिक्री से तब तक कोई लाभ नहीं होगा जब तक समग्र आर्थिक वातावरण में सुधार न हो और यदि आर्थिक नीति सुधार कर इस वातावरण को सुधार लिया जाता है तो फिर बिक्री की आवश्यकता ही नहीं रहती।[14,15]

निष्कर्ष :- निजीकरण के खतरों की तरफ सरकार अधिक ध्यान नहीं दे रही है। भ्रष्टाचार और श्रमिकों की छंटनी ऐसी दो प्रमुख समस्याएं हैं जो निजीकरण की ही देन हैं। कुछ प्रमुख निजी उद्यम सरकारी कर्मचारियों की सहायता से लाभकारी सार्वजनिक उद्यमों को सस्ती कीमतों पर क्रय करने में सफल हो जाते हैं। जहाँ सरकारी तंत्र भ्रष्ट हो वहां निजीकरण की प्रक्रिया में भ्रष्टाचार होना लगभग तय है। निजीकरण के परिणाम स्वरूप श्रमिकों की छंटनी भी होती है जिसका श्रम संगठन विरोध करते हैं। वर्तमान में रेलवे और सार्वजनिक बैंक इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। निजी क्षेत्र के द्वारा सरकार पर लगातार श्रम कानूनों को लचीला बनाने का दबाव बनाया जाता है। वे इस बात की भी मांग करते हैं कि उन्हें श्रमिकों को रखने या हटाने की छूट दी जाए यह श्रमिकों के दृष्टिकोण से निश्चित रूप से चिन्ता का विषय है।

अंततः एक कल्याणकारी राज्य के रूप में कार्य करने वाली सरकार को अपनी नीतियों को बनाते समय उसके दूरगामी परिणामों को और अपने राष्ट्र की परिस्थितियों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

सन्दर्भ

1. जालान विमल *'भारत की आर्थिक नीति'* रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया प्रकाशन, नई दिल्ली 1996, 127
2. Shirokav G.K., *'Industrialisation of India'*, Astral International Press, Moscow, 1973 P. 179
3. हाजरी आर0के0 एवं ए0एन0 ओझा, 'भारत के सार्वजनिक उपक्रम', प्रगति प्रकाशन नई दिल्ली 1970
4. Hazri R.K. and A.N. Oza - *'Public Sector and Profitability in India EAG Robinson and M. Kidron eds. Economic development in South Asia'*,The Penguin Press, London, 1972, P. 91
5. Mani Sunil, *'National Manufacturing Policy : Making India a Power House'*, Economic and Political Weekly, Dec. 31, 2011, PP 16-19
6. Nayyar Baldev Raj, *'Globlisation and Nationalism'*, Prabhat Prakashan, New Delhi, 2001 PP-173-174
7. Sahrif Arif, "Planning dishonourable exit". The Economic Times April 4, 1994, P. 7
8. Bhagwati Jagdish and Padma Desai, *'India : Planning for Industrialisation'*, London, 1970 P. 158
9. Chaudhary Pramit, *'The Indian Economy'*, Sage Publication, Delhi, 1979 P.P. 157-158
10. Bardhan Pranab and John E Roemen, *'Market Socialism, A case of Rejuvenation'*, Journal of Economic Perspectives Vol. 6, No. 3. 1993 PP-101-102
11. Bimal Jalan, *'India's Economic Crisis : The way Ahead'*, RBI, New Delhi, 1996 P.-76
12. Stiglitz Joseph, *'Globlisation and its Discontents'*, The Penguin Press ,2002, P 58
13. CAG Report 1993, 2005,2006 , New Delhi,
14. Sunil Mani, *'Economic Liberalization and the Industrial Sector'*, Economic and Political Weekly, May 27, 1995, pp47.49
15. B.P. Mathur, *'Audit Reports on Disinvestment'*, Economic and Political Weekly, December 16, 2006, p. 5115.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी-जून 2019

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

हस्तशिल्प : देश की सांस्कृतिक धरोहर, कारीगरी, रोजगार एवं विदेशी मुद्रा अर्जन का महत्वपूर्ण स्रोत : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ0 गजवीर सिंह
❖ डॉ0 नीरज राठौर

भारत की सांस्कृतिक विविधता का प्रतिनिधित्व करता भारतीय हस्तशिल्प उद्योग अतिशय व्यापक परम्परा का बोध कराता है। यह उद्योग देश की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण तथा रोजगार के साथ-साथ विदेशी मुद्रा प्रदान करने की दृष्टि से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह हमारी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को उजागर करने का एक सशक्त माध्यम है। वर्तमान भारत में हस्तशिल्प उद्योग को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने राष्ट्रीय स्तर पर अनेकानेक योजनाएं संपादित की हुई हैं। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत हस्तशिल्प उद्योग की सांप्रतिक स्थिति, इसके महत्व तथा इसकी समस्याओं को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

भारत समृद्ध संस्कृति, इतिहास और परम्पराओं का देश है। वह कई दशकों से हस्तशिल्प उत्पादों के प्रमुख उत्पादक और आपूर्तिकर्त्ता देशों में शामिल है। हस्तशिल्प उत्पादों की आर्थिक और सांस्कृतिक मान्यता के कारण हाल के वर्षों में इनका महत्व बहुत बढ़ गया है। लघु उद्योग जिसमें हस्तकला भी शामिल है विकसित और विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हस्तशिल्प को उन उत्पादों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो पूरी तरह से हाथों से या उपकरणों की सहायता से बनाए जाते हैं। भारत का हस्तशिल्प उद्योग उसकी प्राचीन सभ्यता के सभी पहलुओं को दर्शाता है।[1] भारत का हस्तशिल्प उद्योग सच्ची भावना के साथ हमारी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि भारतीयों की जीवनशैली की झलक इन उत्पादों में मिलती है, जो बड़ी सादगी और देशज औजारों के साथ यहाँ के दस्तकार बनाते हैं। इन उत्पादों में भारतीय हस्तशिल्प उद्योग की परम्परा बहुत व्यापक है क्योंकि यह देश की सांस्कृतिक विविधता का प्रतिनिधित्व करती है। यह उद्योग वर्षों से रोजगार और विदेशी मुद्रा की कमाई में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।[2] सुन्दर हस्तकलाओं के व्यापक दायरे में हमारे देश की समृद्ध विरासत के सबसे महत्वपूर्ण तत्व शामिल हैं चाहे वह गुजरात के कच्छ की कसीदाकारी हो, उत्तर-प्रदेश की ज़री-जरदोजी, चिकनकारी, कर्नाटक के लकड़ी के खिलौने या असम में बांस से जुड़ी हस्तकला, राजस्थान की कठपुतली या बिहार की सिक्की, तिकुली, मधुबनी पेंटिग, ये सभी न सिर्फ अपने-अपने राज्यों की पारम्परिक कलाऐं हैं अपितु वास्तव में कलाकारों के वैकल्पिक आय का अहम साधन भी हैं। इन तमाम विरासतों के कारण भारत को अन्तराष्ट्रीय बाजार में अपनी अलग पहचान स्थापित करने में मद्द मिली है।[3] देश में लगभग 70 लाख शिल्पकार हैं। इनमें से 20 लाख कालीन क्षेत्र में जुड़े हुए हैं। शिल्पकार 500 से भी ज्यादा तरह के कौशल के क्षेत्र में काम करते है, जैसे जरी जरदोजी, टेराकोटा, पत्थरों को तराशने से जुड़ा कार्य, फुलकारी, लकड़ी संबंधी कार्य, कशीदाकारी, बरतन बनाने का काम आदि।[4]

देश की अर्थव्यवस्था में हस्तशिल्प क्षेत्र की अहम भूमिका है। यह ग्रामीण और अर्द्ध शहरी क्षेत्रों में एक बड़े वर्ग को रोजगार उपलब्ध कराता है और देश के लिए बड़े पैमाने पर विदेशी मुद्रा की कमाई करता है। साथ ही यह देश की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में भी सहायक है। हस्तशिल्प में जबरदस्त संभावना है। यह न सिर्फ देश के तमाम कोनों में लाखों शिल्पकारों के अस्तित्व के लिए अहम है, बल्कि ऐसी गतिविधियों से जुड़ने वाले नए लोगों के लिए जरूरी हैं।[5] हस्तशिल्प क्षेत्र के माध्यम से आर्थिक स्वतंत्रता हासिल होने से आजीविका जैसी चुनौतियों से निपटा जा सकता है और इससे ग्रामीण इलाकों में भी आय पैदा होने का मार्ग प्रशस्त होगा। साथ ही कौशल का

❑ प्रोफेसर समाजशास्त्र, एल.बी.एस. मैमोरियल कालेज, गोहावर, बिजनौर (उ.प्र.)
❖ एसोशिएट प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान विभाग, बरेली कालेज, बरेली (उ.प्र.)

उन्नयन और शिल्पकला के क्षेत्र में विकास, शिल्पकारों का विकास, गरीबी को कम करने और आय का साधन पैदा करने का शानदार तरीका है, जिससे सतत् विकास के लक्ष्यों को हासिल करने में सहायता मिलेगी।[6]

''यदि भारत के गरीबों को खुशहाल होना है तो उन्हें व्यवसाय और आजीविका के सहायक स्रोत की आवश्यकता है। वह केवल कृषि पर निर्भर नहीं रह सकते।'' महात्मा गाँधी की यह उक्ति आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी 100 वर्ष पहले थी जब यह बोली गयी थी। इसमें कोई शक नहीं कि आज हम गांव, गरीब, किसान और पर्यावरणीय चिंताओं से चिन्तित होने के दौर में हैं। ऐसे में हमें सोचना चाहिए कि भारत के गांव, गरीब और प्रकृति को खुशहाल करने वाले व्यवसाय और आजीविका के सहायक स्रोत क्या और कैसे हों? इसका उत्तर है- हस्तशिल्प। हस्तशिल्प यानि हाथों की कारीगरी।[7] रोजगार सृजन के अलावा हस्तशिल्प उद्योग कम पूंजी निवेश के कारण आर्थिक रूप से व्यवहार्य है। इतना ही नहीं विभिन्न हस्तशिल्प उत्पादों के निर्यात की संभावना काफी अधिक है। इसलिए यह हमारे देश के लिए विदेशी मुद्रा अर्जन का भी महत्वपूर्ण स्रोत है।[8] एसोचैम के एक अध्ययन के अनुसार वित्त वर्ष 2020-21 तक भारत का हस्तशिल्प निर्यात 24000 करोड़ रुपये से अधिक हो जाने की उम्मीद है। ब्रांड इमेज बनाने, लक्षित देशों में क्राफ्ट फेस्टिवल तथा रोड शो आयोजित करने और आकर्षक प्रदर्शन तथा बैनरों के द्वारा प्रचार के साथ-साथ नवीन तथा आकर्षक पैकेजिंग जैसे विपणन के तरीकों को सरकार और अन्य परिषदों द्वारा बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करने की आवश्यकता है। सरकार को निजी क्षेत्र की भागीदारी से कौशल प्रशिक्षण, उत्पाद अनुकूलन, व्यवसायिक प्रशिक्षण और उद्यमिता विकास के लिए स्थानीय केन्द्रों जैसी सहायक सेवाएं प्रदान करने, एकीकृत उद्यम विकास को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।[9]

भारत विश्व के बाजार में हस्तशिल्प का एक प्रमुख आपूर्तिकर्त्ता है। दुनिया के बदलते परिदृश्य में विभिन्न देशों को निर्यात किए जाने वाले इस तरह के उत्पाद अंतराष्ट्रीय बाजार में लाइफस्टाइल उत्पाद का हिस्सा बन गए हैं। उपभोक्ता की बदलती पंसंद और मिजाज को देश में मौजूद 70 लाख शिल्पकार भी समझ रहे हैं और उनके उत्पादों में इसका असर भी देखने को मिल रहा है। हालांकि दुनिया के बदलते बाजार में इन शिल्पकारों, कलाकारों को अपनी-अपनी जगहों पर संस्थागत सहायता की आवश्यकता है। इसके अंतर्गत विभिन्न जगहों पर शिल्पकला क्षेत्र बनाए जा सकते है ताकि चीन, कोरिया, थाईलैंड आदि देशों के मुकाबले भारतीय शिल्पकारों के उत्पाद का प्रदर्शन ज्यादा बेहतर हो सके। घरेलू और अंतराष्ट्रीय बाजारों में भारतीय शिल्पकारों के उत्पादों और उनके पारंपरिक कौशल की भारी मांग है।[10] 2013-14 से भारत हाथ से बनी कालीन का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक है। फिलहाल विश्व के कुल निर्यात में भारत की हिस्सेदारी 35 प्रतिशत है। देश में इस तरह के कुल उत्पादन का 85 प्रतिशत हिस्सा 100 से ज्यादा देशों को निर्यात किया जाता है। कुल निर्यात में अमेरिका की हिस्सेदारी 45 प्रतिशत है और जर्मनी, ब्रिटेन एवं संयुक्त अरब अमीरात की संयुक्त हिस्सेदारी 20 प्रतिशत है। भारत में हाथ से बनी कालीन अपने खूबसूरत कौशल, पर्यावरण के अनुकूल रंगों, डिजाइन, विविधता और किफायती दरों में उपलब्धता के लिए दुनिया भर में मशहूर है।[11] भारतीय वस्त्र उद्योग में प्राकृतिक से लेकर मानव निर्मित फाइवर से लेकर घर की वस्तुओं तक की सम्पूर्ण मूल्य श्रृंखला इस क्षेत्र की ताकत है। इस क्षेत्र के निर्यात से होने वाली देश की आय में लगभग 27 प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 2 प्रतिशत और राष्ट्र के निर्यात में 13 प्रतिशत का योगदान है। साथ ही साथ भारत के हस्तशिल्प निर्यात में वर्ष दर वर्ष 1.65 प्रतिशत की वृद्धि के साथ अप्रैल-नवम्बर 2018 के मध्य तक 2.42 अरब अमरीकी डॉलर की वृद्धि हुई है। इस प्रकार इन उद्योगों के आधुनिकीकरण, विकास और सर्वांगीण विकास तथा कौशलीकरण का भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार पर सीधा असर होता है।[12]

भारत का गौरव देश के शिल्प और वस्त्र धरोहर में समाहित है। भारतीय बुनकर परम्पराएं और हस्तशिल्प प्राचीनकाल से मौजूद हैं और ये देश के भीतर कई अनूठी उप-संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा वस्त्र और गारमेन्ट का उत्पादक है तथा हस्तशिल्प के निर्यात में शीर्ष तीन स्थानों में शामिल है। कपास, ऊन, रेशम और पटसन जैसे कच्चे माल की प्रचुर उपलब्धता के साथ एक कुशल कार्यान्वयन ने देश को वैश्विक वस्त्र बाजार के लिए अग्रणी सोर्सिंग हब बना दिया है। भारतीय बुनकरों और शिल्पकारों का संरक्षण समय की जरूरत है क्योंकि दुनिया हमारी बेहद अनोखी विरासत को

देख रही है तथा कारीगरों और हस्तकारों के लिए अपनी क्षमता के सदुपयोग का समय आ गया है।[13] बुनकरों एवं हस्तशिल्पकारों को बेहतर ढंग से सहयोग प्रदान करने के लिए हस्तशिल्प समृद्ध भौगोलिक क्षेत्रों को विभिन्न 'मेगा क्लस्टरों' के अंतर्गत विभक्त किया गया है। इस रणनीति का उद्देश्य जमीनी स्तर पर लाभार्थियों की आधुनिक प्रौद्योगिकी प्रशिक्षण एवं मार्केट लिंकेज तक पहुंच सुनिश्चित करना है। इन क्लस्टरो के अंतर्गत मुख्यतः बरेली, लखनऊ, कच्छ, जोधपुर, मुरादाबाद, नरसापुर, भदोही, मिर्जापुर एवं जम्मू-कश्मीर के नाम लिए जा सकते हैं। इन क्लस्टरों को गति प्रदान करने के उद्देश्य से 'हैंडी क्राफ्टस मेगा क्लस्टर मिशन' की शुरूआत की गई है। 'कॉम्प्रिहेंसिव हैंडी क्राफ्टस, क्लस्टर डेवलपमेंट स्कीम' के अंतर्गत आन्ध्रप्रदेश के नरसापुर में अन्तर्राष्ट्रीय लेस ट्रेड सेंटर एवं मुरादाबाद में संसाधन केन्द्र की स्थापना की गई है। काष्ठ-आधारित शिल्पों को तकनीकी सहयोग प्रदान करने हेतु सहारनपुर में प्रौद्योगिकी उन्नयन केन्द्र की शुरूआत की गई है। डिजाइन एवं उत्पादों को बेहतर फिनिशिंग सम्बंधी सहयोग प्रदान करने हेतु जोधपुर एवं सहारनपुर में कॉमन फैसिलिटी सेंटर स्थापित किए गये हैं।[14] कहना न होगा कि हस्तशिल्प कारीगरी भी है, रोजगार भी और स्वावलंबन प्राप्त करने का माध्यम भी है, जनसंख्या वितरण में असंतुलन, संसाधनों की छीना-झपटी और इसके कारण उपज रही वैश्विक अशांति को नियन्त्रित करने का भी हस्तशिल्प एक अनुपम माध्यम है।[15] देश में हस्तशिल्प उद्योग को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर अनेकों कार्य योजनाएं संचालित हैं जैसे रोजगार की संभावना को सच में बदलने के लिए सहयोगी भूमिका निभाने के लिए नियति सम्वर्द्धन परिषद, केन्द्रीय खादी ग्रामोद्योग, राष्ट्रीय कौशल विकास निगम, रोशनी, राष्ट्रीय हथकरघा विकास कार्यक्रम, बुनकर मित्र, बुनकर मुद्रा योजना, बुनकर मुद्रा पोर्टल, अम्बेडकर हस्तशिल्प विकास योजना, पहचान पहल, हस्तशिल्प पुरस्कार और प्रदर्शनियाँ भी हैं।[16] सरकार ने पिछले चार वर्षों में परंपरागत शिल्प को बढ़ावा देने की कई योजनाएं शुरू की हैं। इनमें प्रधानमंत्री कौशल विकास और प्रधानमंत्री मुद्रा योजना का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। अधिकतर मामलों में ये योजनाऐं एक-दूसरे की पूरक बन जाती हैं। यानि कौशल विकास में लाभार्थी अपने परंपरागत या नए चुने हुए कौशल को सीखता-निखारता है और फिर उसे मुद्रा योजना के अंतर्गत बिना किसी बैंक गांरटी या गिरवी के आसानी से ऋण मिल जाता है। इस प्रकार ये दोनों योजनाएँ समावेशी और लाभकारी हैं।[17] प्रधानमंत्री कौशल विकास देश के 40 क्षेत्रों (जिनमें टेक्सटाइल्स एण्ड हेण्डलूम, होम फर्नीशिंग भी शामिल हैं) में पाठ्यक्रम पेश करता है, जो उद्योगों और सरकार के नेशनल स्किल क्वालिफिकेशन फ्रेमवर्क मानकों के अनुरूप है। यह कोर्स एक व्यक्ति को कार्य के व्यवहारिक विस्तार और उसके तकनीकी अभ्यास में ध्यान केन्द्रित करने मे मदद करता है, जिससे वह अपनी नौकरी के लिए पूर्ण रूप से तैयार हो सके और कम्पनी को उसके प्रोफाइल के लिए प्रशिक्षण देने की आवश्यकता ना पड़े।[18] प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के शब्दों में ''कौशल विकास योजना केवल जेब में रुपये भरना नहीं है, बल्कि गरीबों के जीवन को आत्मविश्वास से भरना है।'' कौशल भारत कुशल भारत अभियान को जागरूकता अभियान के साथ सभी लोगों को उनके हुनर में कुशल करके भारत से बहु आयामी समस्याओं का निराकरण करना है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के शब्दों में ''मैं भारत को विश्व की कौशल राजधानी बनाने के लिए पूरे राष्ट्र को प्रतिज्ञा करने के लिए आह्वान करता हूँ।''[19]

अप्रैल, 2015 में शुरू की गई प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के अंतर्गत सूक्ष्म उद्यमों को त्वरित एवं बाधारहित ऋण उपलब्ध कराने के लिए मुद्रा (माइक्रो यूनिट्स डेवलवमेंट एंड रिफाइनैंस एजेंसी) की स्थापना की गई है। इस कदम के अंतर्गत उद्यम के जीवनकाल के चरण के अनुसार एवं उद्यमियों की वित्तीय आवश्यकता के अनुरूप उन्हें तीन विभिन्न श्रेणियों- 'शिशु', 'किशोर' एवं 'तरूण' के अंतर्गत सस्ते ऋण प्रदान किये जाते हैं। योजना के अंतर्गत अधिकृत वित्तीय संस्थानों (कमिर्शयल बैंक, सहकारी बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक आदि) से भौतिक तरीके से अथवा सम्बन्धित पोर्टल के माध्यम से भी ऋण का आवेदन किया जा सकता है। कपड़ा मंत्रालय, भारत सरकर के एक प्रतिवेदन के अनुसार इस योजना से विभिन्न प्रकार के उद्यमियों के अतिरिक्त हस्तशिल्पकारों को भी सस्ता ऋण प्रदान कराया गया है, जिससे उनके उद्यम का आभार बढ़ने और उनकी आय में वृद्धि की अपेक्षा की जा सकती है। आर्थिक आंकड़े बताते हैं कि हस्तशिल्प के क्षेत्र में निवेश के लिए निजी बैंक भी तेजी से आगे आ रहे हैं। यह प्रमाणित करता है कि इस क्षेत्र में बैंकों को ऋण डूबने

का अंदेशा काफी कम है।[20]

हस्तकला प्रोत्साहन में विपणन सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। हस्तशिल्प और हस्तकला को उचित बाजार उपलब्ध कराने के लिए पिछले चार वर्षों में अनेक सार्थक प्रयास किए गए हैं। इन्ही प्रयासों में से एक है वाराणसी में नवनिर्मित स्टेट ऑफ-द- आर्ट विपणन केन्द्र और हस्तकला संग्रहालय। इसका लोकार्पण प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 22 सितंबर, 2017 को किया था। साढ़े सात एकड़ क्षेत्रफल में फैला यह केन्द्र जिला मुख्यालय से लगभग पांच किलोमीटर दूर बड़ा लालपुर में निर्मित किया गया है। इस केन्द्र में व्यापारियों और हस्तशिल्पियों के लिए पैवेलियन हैं, जो किराये के लिए उपलब्ध हैं। बहुमंजिला संकुल में आधुनिक हाट के साथ-साथ कन्वेंशन सेंटर, म्यूजियम, फूड कोर्ट और पार्किंग की सुविधा है। वर्तमान में इस केन्द्र की आधे से अधिक दुकानें बुक हो चुकी हैं। लाल बहादुर शास्त्री हवाई अड्डे के निकट होने के कारण देशी-विदेशी पर्यटकों- व्यापारियों की इस संकुल तक पहुँच आसान है। इसकी स्थापना से न केवल छोटे और मंझोले उद्यमियों को एक विश्वस्तरीय मंच मिला है, बल्कि परोक्ष रूप से इससे पर्यटन को भी बढ़ावा मिलेगा। वाराणसी में ही चौकाघाट में स्थापित 'अर्बन हाट' में वैयक्तिक-स्तर पर काम करने वाले शिल्पियों को दुकाने दी गई हैं। यहाँ देशभर के हस्तशिल्प की प्रदर्शनियों के आयोजन भी होते रहते हैं।[21] राष्ट्रीय हस्तशिल्प विकास कार्यक्रम, कपड़ा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा संचालित अम्बेडकर हस्तशिल्प विकास योजना का उद्देश्य जागरुकता प्रशिक्षण एवं प्रौद्योगिकी जैसे उपायों से हस्तशिल्पकारों को सशक्त बनाना है। योजना के एक प्रमुख घटक, 'दस्तकार सशक्तीकरण योजना' के अतिरिक्त अन्य घटकों जैसे डिजाइन एवं प्रौद्योगिकी उन्नयन मानव संसाधन विकास हस्तशिल्पकारों को प्रत्यक्ष लाभ, बुनियादी ढांचा व प्रौद्योगिकी संबंधी सहयोगों से हस्तशिल्पकारों की स्थिति को बेहतर बनाने के प्रयास किए जा रहे है।[22] लेकिन इतना सब होने के बावजूद हस्तशिल्प से जुड़े कई पहलुओं पर अध्ययन करने की आवश्यकता है जैसे क्या हस्तशिल्प सांस्कृतिक धरोहर के साथ विदेशी मुद्रा के अर्जन का महत्वपूर्ण स्रोत है? क्या हस्तशिल्प कारीगरी और रोजगार उपलब्ध कराने का सशक्त माध्यम है? क्या कौशल का उन्नयन एवं शिल्पकारों का विकास हस्तशिल्प द्वारा सम्भव है? क्या हस्तशिल्प सतत् विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक है? एवं साथ ही हस्तशिल्प उद्योग के विकास में कौन-कौन सी प्रमुख समस्याऐं हैं। इन सब स्थितियों के आलोक में एक आनुभाविक अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की गई, प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास है।

शोध प्रारूप :- प्रस्तुत आनुभाविक अध्ययन उत्तर प्रदेश के जनपद जे0पी0नगर (अमरोहा) के हस्तशिल्प उद्योग (कालीन बनाने एवं ढोलक बनाने) वाले कामगारों पर आधारित है क्योंकि अमरोहा की बनी कालीन और ढोलक प्रदेश एवं देश स्तर के साथ-साथ विश्व स्तर पर भी अपनी विशेष पहचान रखती है, जो कि जिले मे रोजगार देने के साथ आय प्राप्ति का महत्वपूर्ण साधन भी है। इसीलिए सोउदेश्यपूर्ण निदर्शन विधि द्वारा इस क्षेत्र में कार्यरत 150 अध्ययन इकाइयों (कामगारों) को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है। तत्पश्चात् अध्ययन इकाइयों से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया है। उसके बाद तथ्यों के वर्गीकरण व सारणीयन के साथ उनका सांख्यिकीय विश्लेषण करके निष्कर्ष प्राप्त किये गये हैं।

प्रस्तुत शोध प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों ही प्रकार के तथ्यों पर आधारित है। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची को आधार बनाया गया है तथा द्वितीयक तथ्यों हेतु पुस्तकालय, शासकीय प्रतिवेदन, संचालित योजनाओं, सम्बन्धित शोध, इंटरनेट, समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं आदि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य :-

1. यह अध्ययन करना कि हस्तशिल्प देश की सांस्कृतिक धरोहर के साथ विदेशी मुद्रा के अर्जन का महत्वपूर्ण स्रोत है।
2. यह अध्ययन करना कि हस्तशिल्प कारीगरी के साथ रोजगार को बढ़ावा देने में कितना सहायक है?
3. यह अध्ययन करना कि हस्तशिल्प उद्योग की कौशल के उन्नयन एवं शिल्पकारों के विकास में क्या भूमिका है?
4. यह अध्ययन करना कि हस्तशिल्प सतत् विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।
5. यह अध्ययन करना कि हस्तशिल्प उद्योग में कार्यरत् कामगारों के समक्ष आने वाली प्रमुख समस्याऐं क्या है।

उपकल्पनाऐं :-

1. हस्तशिल्प का विदेशी मुद्रा के अर्जन में महत्वपूर्ण योगदान है।

2. हस्तशिल्प अधिकांश व्यक्तियों को रोजगार देता है।
3. हस्तशिल्प के द्वारा कौशल का उन्नयन एवं शिल्पकारों का विकास सम्भव है।
4. हस्तशिल्प के द्वारा सतत् विकस के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।
5. हस्तशिल्प उद्योग में कार्यरत व्यक्तियों को कुछ प्रमुख समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

उपलब्धियाँ - अध्ययन से सम्बन्धित उद्देश्यों एवं उपकल्पना की जाँच करने के लिए सबसे पहले सारणी संख्या 01 में अध्ययन इकाइयों से यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या हस्तशिल्प सांस्कृतिक धरोहर के साथ विदेशी मुद्रा के अर्जन का भी महत्वपूर्ण स्रोत है?

सारणी संख्या-01

हस्तशिल्प विदेशी मुद्रा-अर्जन का महत्वपूर्ण स्रोत

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
पूर्णतः सही है	116	77.33
आंशिक रूप से सही है	23	15.33
बिल्कुल सही नहीं है	11	7.33
योग	150	99.99

सारणी संख्या-01 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक सूचनादाता (77.33 प्रतिशत) इस तथ्य को पूर्णतः सही मानते है कि हस्तशिल्प सांस्कृतिक धरोहर के साथ विदेशी मुद्रा के अर्जन का महत्वपूर्ण स्रोत है। 15. 33 प्रतिशत सूचनादाता इस तथ्य को आंशिक रूप से सही मानते हैं जबकि 7.33 प्रतिशत सूचनादाता इस तथ्य को बिल्कुल सही नही मानते है।

सारणी संख्या-02 के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या सूचनादाताओं के अनुसार हस्तशिल्प कारीगरी और रोजगार उपलब्ध कराने का सशक्त माध्यम है?

सारणी संख्या-02

कारीगरी और रोजगार का सशक्त साधन

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
हाँ	117	78.00
नहीं	33	22.00
योग	150	100.00

सारणी संख्या-02 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश सूचनादाता (78.00 प्रतिशत) हस्तशिल्प उद्योग को कारीगरी और रोजगार उपलब्ध कराने का सशक्त साधन मानते हैं जबकि 22.00 प्रतिशत सूचनादाता ऐसे है जो कि हस्तशिल्प को कारीगरी और रोजगार उपलब्ध कराने का सशक्त साधन नहीं मानते हैं।

सारणी संख्या-02 के अवलोकन और सूचनादाताओं की वास्तविक स्थिति ज्ञात करने के उद्देश्य से सारणी संख्या-03 में यह जानने की जिज्ञासा हुई कि सूचनादाता (कामगार) अपनी आने वाली पीढ़ी (बच्चों) के लिए हस्तशिल्प को किस रूप में पंसद करेंगें अथवा किसी रूप में पसंद नहीं करेंगे।

सारणी संख्या-03

अपने बच्चों के लिए हस्तशिल्प की पसंद

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
मुख्य व्यवसाय के रूप में	79	52.66
सहायक व्यवसाय रूप से	43	28.66
किसी भी रूप में नहीं	28	18.66
योग	150	99.98

सारणी संख्या-03 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिसंख्यक (52.66 प्रतिशत) सूचनादाता अपने बच्चों के लिए हस्तशिल्प को मुख्य व्यवसाय के रूप में पसंद कर रहे हैं, जबकि 28.66 प्रतिशत सूचनादाता ऐसे है जो कि इस व्यवसाय को सहायक व्यवसाय के रूप में अपनाना पसंद कर रहे हैं किन्तु 18.66 प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जो कि अपने बच्चों के लिए हस्तशिल्प को किसी भी रूप में पसंद नहीं कर रहे हैं।

शोध पत्र का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह ज्ञात करना था कि हस्तशिल्प उद्योग की कौशल के उन्नयन एवं शिल्पकारों के विकास में क्या भूमिका है जिससे सम्बन्धित आंकड़े सारणी संख्या-04 में प्रदर्शित हैं।

सारणी संख्या-04

कौशल उन्नयन एवं शिल्पकारों के विकास में भूमिका

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
महत्वपूर्ण भूमिका है	108	72.00
कम भूमिका है	31	20.66
बिल्कुल नहीं हैं	11	7.33
योग	150	99.99

सारणी संख्या-04 में प्रदर्शित आंकड़ों से ज्ञात होता है कि अधिकांश (72.00 प्रतिशत) सूचनादाताओं का मानना है कि कौशल के उन्नयन एवं शिल्पकारों के विकास में हस्तशिल्प की महत्वपूर्ण भूमिका है, जबकि 20.66 प्रतिशत सूचनादाता हस्तशिल्प की इस क्षेत्र में कम भूमिका मानते है और 7.33 प्रतिशत सूचनादाता कौशल के उन्नयन एवं शिल्पकारों के विकास में हस्तशिल्प की कोई

भूमिका नहीं मानते हैं।

सारणी संख्या-05 में अध्ययन के उद्देश्य से सम्बन्धित इस तथ्य को ज्ञात करने का प्रयास किया गया कि क्या हस्तशिल्प सतत् विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक है।

सारणी संख्या-05

सतत् विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
हाँ	109	72.66
नहीं	27	18.00
पता नहीं हैं	14	9.33
योग	150	99.99

सारणी संख्या-05 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश (72.66 प्रतिशत) सूचनादाताओं का मानना है कि हस्तशिल्प वास्तव में सतृत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक है जबकि 18.00 प्रतिशत सूचनादाताओं के अनुसार हस्तशिल्प सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक नही है और 9.33 प्रतिशत सूचनादाता ऐसे है जिनको इस बारे में पता नहीं है।

अध्ययन का एक महप्वपूर्ण उद्देश्य यह भी ज्ञात करना था कि हस्तशिल्प के क्षेत्र में कार्यरत सूचनादाताओं (कामगारों) की प्रमुख समस्याऐं क्या हैं? जिससे सम्बन्धित आंकड़े सारणी संख्या-06 में प्रदर्शित किये गये हैं।

सारणी संख्या-06

हस्तशिल्प के क्षेत्र की प्रमुख समस्याएं

प्रमुख समस्या	संख्या	प्रतिशत
कच्चा माल का अभाव	17	11.33
कम पारिश्रमिक	39	26.00
काम करने की प्रतिकूल दशाऐं	33	22.00
शासकीय योजनाओं का कम लाभ	37	24.66
विपणन की समस्या	24	16.00
योग	150	99.99

सारणी संख्या-06 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक 26.00 प्रतिशत सूचनादाताओं की प्रमुख समस्या कम पारिश्रमिक का मिलना है। दूसरे स्थान पर 24.66 प्रतिशत सूचनादाताओं की प्रमुख समस्या शासकीय योजनाओं का पूरी तरह से लाभ न मिलना है। तीसरे स्थान पर 22.00 प्रतिशत सूचनादाताओं की प्रमुख समस्या काम करने की उचित दशाओं का न मिलना है, जबकि 16.00 प्रतिशत सूचनादाताओं की प्रमुख समस्या तैयार किये गये माल के विपणन की है और 11.33 प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जिनकी प्रमुख समस्या कच्चे माल का अभाव या आसानी से उपलब्ध न होना है।

निष्कर्ष एवं सुझाव :- शोधपत्र के अध्ययन के उद्देश्यों एवं उपकल्पनाओं के सत्यापन के आधार पर निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि हस्तशिल्प देश की सांस्कृतिक धरोहर के साथ, कारीगरी, रोजगार को बढ़ावा देने के साथ विदेशी मुद्रा के अर्जन का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत भी है। हस्तशिल्प को मजबूती देने एवं उसके विस्तार से हस्तशिल्पकारों की आय में वृद्धि होगी और इन उद्यमों में रोजगार पाने वालों की संख्या बढ़ेगी। यह संबर्धित एवं सुदृढ़ सूक्ष्म शिल्प उद्यम, बेरोजगारी में कमी एवं जीवन-स्तर में सुधार लाने का माध्यम बनेगें। बेहतर आय के कारण गाँव से शहर की ओर पलायन रूकेगा। यही नहीं यह सृदृढ़ सूक्ष्म शिल्प इकाईयाँ विरासत के रूप में अगली पीढ़ी को सौपी जा सकेगी, जिससे हमारी इस समृद्ध विरासत का संरक्षण होगा एवं सतृत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता होगी।

हस्तशिल्प को बढ़ावा देने एवं इस क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के समक्ष आने वाली समस्याओं के समाधान हेतु कुछ सुझाव निम्नलिखित है-

1. कच्चे माल की अनुपलब्धता एवं विपणन की समस्या पर जनसमुदाय एवं शासकीय स्तर पर ध्यान दिया जाये।
2. हस्तशिल्प के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों को उचित पारिश्रमिक एवं काम करने की उचित दशाऐं देने का प्रयास, सम्बन्धित व्यक्तियों, मालिकों एवं अधिकारियों द्वारा किया जाये।
3. जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर हस्तशिल्प के क्षेत्र में संचालित कार्यक्रमों एवं योजनाओं का क्रियान्वयन पूरी कर्तव्यनिष्ठा एवं ईमानदारी के साथ किया जाये।
4. वर्तमान हस्तशिल्पियों की अभिरूचि सुनिश्चित करने के लिए ग्रामीण तहसील/ब्लॉक स्तर पर कार्यशालाएं हों और स्तरीय आंकड़ा कोष (डाटाबेस) बने।
5. हस्तशिल्पी समूहों को उनके कलक्टर (समूह) उत्पाद के उत्पादन की कार्यनीति, योजना तथा आवश्यकता विवरण तैयार करने के लिए प्रेरित व प्रशिक्षित करना चाहिए।
6. उत्पाद की गुणवत्ता से समझौता किए बगैर न्यूनतम लागत सुनिश्चित करने के सभी तरीके अपनाने के

लिए प्रशिक्षण तथा प्रोत्साहन के लिए सफल हस्तशिल्पियों तथा डिज़ायन, हस्तशिल्प व विपणन से जुड़े संस्थानों को जोड़ना चाहिए।

7. शासकीय खरीददारी में एक सुनिश्चित प्रतिशत हस्तशिल्प उत्पादों के लिए तय कर दिया जाए। उपहार और विशेष अवसरों की खरीददारी के लिए हस्तशिल्प उत्पादों को समुदाय स्वयं प्राथमिकता देना शुरू करे, जिससे हस्तशिल्प उत्पादों को और बढ़वा मिले।

8. ऐसे प्रत्येक प्रयास व प्रावधान को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जो इस प्रयोग को स्वावलम्बी दिशा में ले जाने में सहयोगी हो, किन्तु इसे परावलम्बी बनाने वाले हर कदम से बचना चाहिए।

9. इसके नियोजन, निर्माण और बिक्री में किसी भी तरह के अनैतिक तौर-तरीके यानी बेईमानी एवं दलाली को स्थान न मिलने पाये। इससे यह धीमी, किंतु मजबूत नींव बनकर गांव, समाज ही नहीं समस्त भारत का हित करेगा।

सन्दर्भ

1. मेहता, रंजीत, *'हस्तशिल्प और कपड़ा निर्यात : वर्तमान और भविष्य'* योजना, अप्रैल-2019, वर्ष-63, अंक-04, पृ. 28
2. गुप्ता, एस0एस0, *'पत्र सूचना कार्यालय, भारत सरकार,'* भारतीय हस्तशिल्प उद्योग- विशेष लेख- Google.A Press, Information Bureau , Pib. Nic.in.
3. नक्वी, हिना, *'हस्तशिल्प कलाकारों का आर्थिक सशक्तीकरण'* योजना, अप्रैल- 2019, वर्ष-63, अंक-04, पृ. 11
4. शांतमनु, *'प्रतिभावान हाथों का जादू-हस्तशिल्प कलाकारों का सशक्तीकरण'* योजना, वर्ष-63 अंक-04, अप्रैल- 2019, पृ. 7-8
5. शांतमनु, पूर्वोक्त, पृ. 7
6. शांतमनु, पूर्वोक्त, पृ. 9
7. तिवारी, अरूण, *'हस्तशिल्प-गांवों की खुशहाली का अनुपम स्रोत,'* योजना, अप्रैल-2019 पृ. 50
8. मेहता, रंजीत, पूर्वोक्त, पृ. 28
9. मेहता, रंजीत, पूर्वोक्त, पृ. 29
10. शांतमनु, पूर्वोक्त, पृ. 8
11. शांतमनु, पूर्वोक्त, पृ. 9
12. कपूर, गौरव, 'कौशल से निखरती कारीगरी' योजना, अप्रैल-2019, वर्ष-63, अंक-04, पृ. 33
13. कपूर, गौरव, पूर्वोक्त, पृ. 33
14. नकवी, हिना, *'परमपरागत शिल्प को वढ़ावा'* कुरूक्षेत्र, जनवरी 2019, वर्ष 65, अंक-03 पृ. 45
15. तिवारी, अरूण, पूर्वोक्त, पृ. 50
16. तिवारी, अरुण, पूर्वोक्त, पृ. 52
17. नकवी, हिना, पूर्वोक्त, पृ. 44-45
18. सिंह, गजवीर, *'प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'* 'राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा' जनवरी-जून- 2019, वर्ष-19, अंक-01, पृ. 49
19. www.hindikiduniya.com भारत सरकार : *'प्रधानमंत्री कौशल विकास अभियान' 'स्किल इंडिया मिशन'* कौशल भारत-कुशल भारत, 13 जनवरी 2016
20. नकवी, हिना, पूर्वोक्त, पृ. 45
21. नकवी, हिना, पूर्वोक्त, पृ. 45
22. नकवी, हिना, पूर्वोक्त, पृ. 45-46

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी-जून 2019

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण एवं राजनीतिक सशक्तीकरण

❑ नगारची जामरे

प्रस्तुत अध्ययन पंचायती राज संस्थाओं में निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों की राजनीतिक सशक्तीकरण एवं नेतृत्विक स्थिति पर आधारित है। 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के अंतर्गत महिलाओं को प्रदप्त आरक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित हो पायी है। पंचायतो में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित होने व उनके निर्वाचन के परिणामस्वरूप उनमें निर्णय-निर्माण की क्षमता, जागरूकता, नेतृत्व विकास एवं उनका राजनीतिक व सामाजिक सशक्तीकरण भी हुआ है। किन्तु आज भी स्थानीय स्तर पर शिक्षा के अभाव के कारण महिला जनप्रतिनिधियों को पंचायती दायित्वों के निवर्हन में समस्याओं का सामना करना पड़ता है तथा अधिकांश महिला जनप्रतिनिधियों का परिवार जीविका उपार्जन हेतु मजदूरी पर आश्रित है। वस्तुतः गरीबी, बेरोजगारी एवं अशिक्षा जैसी समस्याएँ उनके सशक्तीकरण में बाधक हैं। जब तक ऐसी बुनयादी समस्याओं को दूर नहीं किया जायेगा तब तक पंचायती राज व्यवस्था की सफलता तथा महिला सशक्तीकरण का महत्वकांक्षी उद्देश्य कभी साकार नही हो सकता है।

भारतीय लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का मूलाधार पंचायत राज व्यवस्था रही है। सभ्य समाज की स्थापना के बाद से ही मनुष्य ने समूह में रहना सीखा, इस तरह पंचायती राज के आदर्श एवं मूल सिद्धांत उनकी चेतना में विकसित होते आये हैं। इस व्यवस्था को विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न नाम से पुकारा जाता रहा है। कभी वे गणराज्य तो कभी नगर शासन व्यवस्था और कभी किसी अन्य नाम से उसकी पहचान हुई है।[1] यद्यपि भारतीय राजनीतिक चिंतन प्राचीन समय से आधुनिक समाज के बीच विविध धाराओं में प्रवाहित हुआ है। भारतीय दर्शन परम्परा में गणतांत्रिक संस्थाओं को बहुत महत्व दिया गया है।[2] परिणामतः आज भारत में स्थानीय स्वशासन की सफलता प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन की अमूल्य देन है।

भारत में, स्थानीय राजनीतिक संस्थाएँ जिनका उद्देश्य बुनियादी स्तर पर प्रतिनिधि लोकतंत्र के विचार को साकार करना है ये संस्थाएँ प्रायः प्राचीनकाल से चली आ रही थीं, परन्तु विदेशी शासन के दौरान यह साधारणतः अशक्त या लुप्त हो गईं।[3] स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अन्तर्गत राज्य को निर्देश दिया गया कि वह ग्राम पंचायतों का गठन करे ताकि वे स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें। आज पंचायती राज संस्थाएँ भारत-वर्ष के विभिन्न राज्यों, जिलों एवं गाँव के स्थानीय स्वशासन की त्रिस्तरीय व्यवस्था है, जो ग्रामीण भारत को संस्थागत तंत्र प्रदान कर रहा है।[4] इस तरह पंचायतों के द्वारा प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की सार्थक संकल्पना को व्यवहारगत रूप से साकार कर रहा है।

आजादी के बाद देश के विकास कार्य में जनसहभागिता सुनिश्चित करने के लिए 1956 में बलवंतराय मेहता समिति का गठन किया गया। मेहता समिति के सिफारिशों के आधार पर 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने पंचायती राज व्यवस्था का शुभारंभ किया। तत्पश्चात् 1977 में अशोक मेहता समिति, 1985 में पी. के. राव समिति, 1986 में एल. एम. सिंघवी समिति तथा 1989 पी. के. थंगुन समिति बनाई गई ताकि त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं की कमियों को दूर कर उसे और भी अधिक सशक्त एवं जवाबदेही बनाया जा सके। पंचायती राज व्यवस्था प्रजातंत्र की परम्परा को मजबूत बनाती है और यह परम्परा अपने बहुआयामी प्रभाव के कारण, न केवल ग्रामीण समुदाय को बल्कि पूरे देश को राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से संपूर्णता प्रदान करती है।

समाज वस्तुतः दो लिंगो से मिलकर बना है महिला और पुरूष। लेकिन भारतीय समाज की प्रारम्भ से ही यह विडम्बना रही है कि कभी भी महिलाओं को पुरूषों के बराबर समानता नही दी गई।[5] पुरूष प्रधान समाज होने के नाते महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं

❑ शोध अध्येता, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

शैक्षणिक गतिविधियों से वंचित रखना व पुरूषों द्वारा उन पर अपना आधिपत्य बनाये रखने व उन्हें दोयम दर्जा प्रदान करने की जीवंत परम्परा भारतीय समाज में प्रचलित रही है। यद्यपि महिलाओं की राजनीतिक स्थिति देश की राजनीतिक दशा एवं विद्यमान राजनीतिक प्रणाली पर निर्भर करती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे संविधान निर्माताओं ने सभी सार्वजनिक निकायों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए भारतीय संविधान में विशेष उपबंध भी किये साथ ही क्रमशः 1957 एवं 1977 में गठित बलवंतराय मेहता समिति एवं अशोक मेहता समिति ने महिलाओं को पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण दिये जाने की सिफारिशें कीं।[6] फलस्वरूप भारतीय संविधान के 73वे संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के अंतर्गत अनुच्छेद 243 घ(4) में त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए एक-तिहाई आरक्षण को विनिर्दिष्ट किया गया।

भारत में स्थानीय स्वशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

स्थानीय स्वशासन का अभिप्राय वह प्रथा है जिसके द्वारा नगर, कस्बों और ग्रामों में निवास करने वाली जनता को अपनी निर्वाचित संस्थाओं द्वारा अपना शासन आप करने का अधिकार दिया जाता है।[7] जहाँ तक स्थानीय मामलों का संबंध है जनता अपनी निर्वाचित संस्थाओं द्वारा उनका स्वतः ही प्रबंध कर लेती है और स्थानीय समस्याओं के कारणों की खोज कर उसका समाधान भी स्वयं ढूंढ लेती है। भारत में स्थानीय शासन की संस्थाएँ अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही हैं। प्राचीन काल में पंचायतें जिन्हें ग्रामीण सरकारें कहा जाता था, बड़ी पुरातन संस्थाएँ थीं और स्वयं अपने आप में एक लघु गणराज्य थीं। उनका ग्रामीण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर अधिकार एवं नियंत्रण हुआ करता था, जो व्यवस्था अपने परिवर्तितरूप में आज भी कायम है, जो जनता एवं राज्य शासन के मध्य योजनाओं, नीतियों, विचारों और भावनाओं के सम्प्रेषण का महत्वपूर्ण माध्यम है।

भारत में स्थानीय शासन, प्रायः स्थानीय स्वशासन कहलाता है। इस पद की उत्पत्ति उस समय हुई जब देश ब्रिटिश शासन के अधीन था और जनता को केन्द्रीय अथवा प्रांतीय किसी भी स्तर पर स्वशासन उपलब्ध नही था।[8] जब ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को स्थानीय शासन से सम्बद्ध करने का निर्णय किया तो उसका अभिप्राय जनता को कुछ अंशो में स्वशासन प्रदान करना था। किन्तु आज जबकि देश में केन्द्रीय तथा राज्यीय दोनों स्तरों पर स्थानीय स्वशासन की स्थापना हो चुकी है, स्थानीय स्वशासन शब्द प्रचलन में लुप्त सा हो चुका है, जिसे आज पंचायती राज व्यवस्था के नाम से जाना जाता है, जो भावनात्मक रूप से पंच निर्णय की व्यवस्था को सुशोभित करता है। यद्यपि स्थानीय प्रशासन का क्षेत्राधिकार छोटा परंतु निश्चित क्षेत्र तक एक गाँव अथवा नगर तक सीमित होता है। इसका कार्य उस निश्चित क्षेत्र में रहने वाले निवासियों के लिए नागरिक सेवाएँ प्रदान करना होता है। यद्यपि वी.वी.राव का मानना है कि ''स्थानीय प्रशासन सरकार का वह भाग है जो स्थानीय विषयों का प्रबंध करता है, जो सत्ताधारी राज्य सरकार के अधीन प्रशासन चलाते हैं, परन्तु उनका निर्वाचन राज्य सरकार के स्वतंत्र व सक्षम निवासियों द्वारा किया जाता है।''[9] इसी प्रकार से बी.के. गोखले ने भी स्थानीय प्रशासन को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है- ''एक निश्चित इलाके में निवास करने वाले लोगों द्वारा अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों की सरकार ही स्थानीय स्वशासन है।''[10] उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि स्थानीय राजनीति में स्थानीय लोगो के द्वारा ही, स्थानीय समस्याओं के समाधान हेतु नीतियों एवं कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है। प्रायः उसे हम स्थानीय स्वशासन कह सकते हैं। वस्तुतः ग्रामीण स्थानीय शासन/प्रशासन समाज के सबसे निचले स्तर पर काम करता है। यह जमीनी स्तर पर काम करने वाला ऐसा प्रशासन है, जो आम आदमी के दैनिक जीवन से जुड़ा होता है।[11] इस प्रकार भारत में स्थानीय प्रशासन, स्थानीय समस्याओं के निराकरण में अहम भूमिका निभाता है।

आजादी के बाद भारत में संवैधानिक नीति-निर्देशक सिद्धांतो के उद्देश्य के अन्तर्गत नवीन सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने व गाँवो के आर्थिक और सामाजिक जीवन में परिवर्तन लाने के लिए सामुदायिक विकास और ग्रामीण प्रसार को एक इकाई मानकर व्यवस्था की गई थी। इस प्रकार 2 अक्टूबर, 1952 को ऐतिहासिक सामुदायिक विकास कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ।[12] पंचायती राज व्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के लिए 1956 में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया था। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट 4 नवम्बर, 1957 में प्रस्तुत कर दी।[13] समिति की सिफारिशों को 1 अप्रैल, 1958 को लागू किया गया तथा इसी सिफारिश के

आधार पर सर्वप्रथम राजस्थान विधान सभा द्वारा 2 सितम्बर, 1959 को पंचायती राज अधिनियिम पास किया गया तथा इसे नये अधिनियम के आधार पर 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा पंचायती राज का शुभारंभ किया गया।[14] तथा बलवंत राय मेहता समिति की कमियों को दूर करने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा 1977 में अशोक मेहता समिति का गठन किया गया, समिति ने अपनी रिपोर्ट 1978 में प्रस्तुत की। रिपोर्ट में पंचायती राज संस्थाओं की कमियों को दूर करने तथा उसे नया स्वरूप प्रदान करने के लिए 132 सिफारिशें की गई थीं। सन् 1985 में पी.के.राव समिति तथा 1986 में एल.एम. सिघंवी की अध्यक्षता में ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा समिति गठित की गई।[15] इसी प्रकार 1989 में पी.के. थुंगन समिति गठित की गई, जिसने अपनी रिपोर्ट में पंचायती राज व्यवस्था में सर्वप्रथम उन कारकों को चिन्हित किया, जिन्हें सुधारे बिना इस व्यवस्था पर पूर्णतया काबू पाना अंसभव था। इस तरह पंचायती राज व्यवस्था में सुधार हेतु गठित समितियों, सिफारिशों के आधार पर भारत में 24 अप्रेल, 1993 से नवीन पंचायती राज व्यवस्था को सवैंधानिक अधिकार प्रदान किया गया।

मध्यप्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था का आरम्भः- आजादी के बाद, 1 नवम्बर सन् 1956 को मध्यप्रदेश राज्य अस्तित्व में आया। वस्तुतः मध्यप्रदेश में प्रारंभिक पंचायतें उसी तरह से अस्थिर थीं, जैसे देश के अन्य भागों में थीं। पंचायतों का पारम्परिक प्रतिरूप जाति पंचायत और गाँव पंचायत के रूप में था। प्रदेश में जनजातियों की सशक्त पारम्परिक पंचायतें थी और ये संस्थाएँ उनके जीवन की पारम्परिक पंचायतों में गाँवो के समूह शामिल थे। सरकार ने जनजातियों के लिए इन पारम्परिक संस्थाओं की संख्या तथा महत्व को मान्यता प्रदान करने के लिए उन पर इसकी पंचायत प्रणाली अधिरोपित नही किया।[16] सर्वप्रथम 1962 में मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम लागू किया गया। इसके अंतर्गत 1965 में चुनाव भी सम्पन्न कराए गए लेकिन कई कारणवश जनपद एवं जिला पंचायतों के चुनाव सम्पन्न नही हो सके, यद्यपि वर्ष 1970 में ग्राम पंचायतों के सामान्य निर्वाचन सम्पन्न हुए तथा 1971 में विकासखण्ड स्तर पर जनपद पंचायतों का गठन कर निर्वाचन सम्पन्न कराया गया तथा 1981 में प्रदेश सरकार द्वारा मध्यप्रदेश पंचायती राज अधिनियम के रूप में स्वीकृत हुआ। इसके अन्तर्गत राज्य में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था जारी रखने की बात स्वीकार की गई। संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम के अनुसार पुनः 29 दिसम्बर, 1993 को राज्य विधान सभा में मध्यप्रदेश पंचायती राज विधेयक प्रस्तुत किया गया, जिसे विधान सभा द्वारा 30 दिसम्बर, 1993 को पारित कर दिया गया। तत्पश्चात् पंचायतों व नगरीय प्रशासन का चुनाव सम्पन्न कराने के लिए 19 जनवरी, 1994 को मध्यप्रदेश राज्य निर्वाचन आयोग का गठन किया गया और 15 अप्रैल, 1994 को पंचायतों के चुनाव संबंधी अधिसूचना जारी कर दी गई।[17] इस प्रकार मध्यप्रदेश ने, देश में नई सवैंधानिक व्यवस्था के आधार पर त्रिस्तरीय पंचायतों व नगर प्रशासनों के चुनाव कराने वाला देश में प्रथम राज्य होने का गौरव प्राप्त किया। इतना ही नही मध्यप्रदेश की त्रिस्तरीय प्रचायती राज संस्थाओं में न केवल 33 प्रतिशत बल्कि 50 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित हैं, जो महिला सशक्तीकरण की दिशा में एक कारगर पहल है।

महिला आरक्षण एवं पंचायती राज संस्थाएँ :- बदलते वैश्विक परिवेश में आधुनिक राष्ट्र राज्य के उदय व विकास के साथ-साथ भारतीय समाज में कट्टर पितृसत्तात्मक विचारों ने महिलाओं की स्थिति को प्रभावित किया है। ''आधुनिक राष्ट्र राज्य की विचारधारा उदारवाद तथा व्यक्तिवाद पर जोर देती है। इसमें व्यक्ति की स्वायतता को महत्वपूर्ण माना जाता है। इस स्वायतता को व्यक्ति के अधिकार, आर्थिक न्याय व समान अवसरों की उपलब्धता संरक्षित करती है।[18] लेकिन आज भी यह उदारवाद पुरूष व महिला में लिंग के आधार पर भेदभाव करता रहा है। सामाजिक समझौता सिद्धांत के प्रवर्तकों ने भी अपने उदारवादी सिद्धांतों से महिलाओं को परे ही रखा। इन्होंने नारी को पूर्ण नागरिक नही माना। हॉब्स और लॉक ने नारी को कुछ अधिकार तो दिये परन्तु उनको पुरूषों के अधीन रखा। रूसो का विश्वास था कि नारी में राजनीतिक क्षेत्र में नीति निर्धारण जैसे कार्यो की योग्यता नही होती है।[19] ऐसी नियोग्यताएँ महिलाओं पर थोप दी गई और समाज में महिलाओं के अधिकार शनै-शनै क्षीण होते गये, जिसकी भरपाई आज भी 21वीं सदी का भारत नही कर पाया है।

आजादी के बाद अपना देश, अपना शासन तथा अपना कानून की मतएकता की भावना से सराबोर होकर

भारतीयों ने एक सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और संघीय संविधान को अंगीकार, अधिनियमित और आत्मार्पित किया। भारतीय संविधान ने महिलाओं को पुरूषों के समान राजनीतिक अधिकार प्रदान किये और साथ ही जाति, धर्म, वर्ग, जन्मस्थान, शैक्षणिक या संपत्ति के आधार पर भेदभाव के बिना भारत के सभी नागरिकों को मताधिकार प्रदान किया।[20] इस प्रकार भारतीय संविधान में महिलाओं की स्वतंत्रता तथा सक्रिय और समान राजनीतिक हिस्सेदारी को स्वीकार किया गया और राष्ट्र निर्माण में महिलाओं की भूमिका के लिए उनके राजनीतिक सशक्तीकरण की जरूरत को रेखांकित किया। लोकतंत्र और विकास के क्षेत्र में सात दशकों की उल्लेखनीय उन्नति के बावजूद सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की हिस्सेदारी और भूमिका के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय प्रगति नही हुई है।

भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र है और लोकतंत्र की सफलता राष्ट्र के नागरिकों, एवं पुरूषों तथा महिलाओं के मध्य परस्पर समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय और सभी को समान अवसर पर निर्भर करता है। इसलिए आजादी के बाद स्थानीय स्वशासन के विकास हेतु गठित समितियों ने भी इन स्थानीय राजनीतिक निकायों में महिला आरक्षण की वकालत की और इन सिफारिशों को 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 1993 को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 243 घ(2) में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों की स्त्रियों के लिए एक-तिहाई स्थान तथा अनुच्छेद 243 घ खण्ड (4) में प्रत्येक स्तर पर पंचायतो में अध्यक्षों के पदों की कुल संख्या के कम से कम एक-तिहाई पद स्त्रियों के लिए आरक्षित होगें, उपबंधित है।[21] किन्तु आज मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान जैसे कई राज्यों ने त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को प्रदत्त 33 प्रतिशत आरक्षण की सीमा को लांघकर 50 प्रतिशत कर दिया है। जिसके परिणामस्वरूप आज महिलाएँ कई राज्यों में 50 फीसदी से भी ज्यादा स्थानों पर निर्वाचित हुई हैं जो महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक सकारात्मक परिणाम है।

संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन एवं समीक्षा[22]:-

R.D. Maurya के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 73वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 में प्रदत्त आरक्षण व्यवस्था से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से कमजोर वर्गो एवं महिलाओं की भागीदारी पंचायती राज संस्थाओं में सुनिश्चित हुई है। किन्तु आज इन वर्गो में दक्षता निर्माण एवं व्यवस्था के प्रति जागरूकता हेतु विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाने की आवश्यकता है। उन्हें त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली, उनके अधिकार, कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व के प्रति प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। तभी इन वर्गों में निर्णय-निर्माण एवं दक्षता का विकास हो सकता है।

K.Subha and B.S.Bhargava[23] : का अध्ययन पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी पर आधारित है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पंचायती राज संस्थाओं ने ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं वैधानिक उन्नति का एक सामान्य मंच प्रदान किया है। प्रदत्त आरक्षण व्यवस्था से बहुतायत संख्या में महिलाएँ राजनीतिक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा पायी हैं। महिला आरक्षण, महिला सशक्तिकरण एवं राजनीतिक सहभागिता की दिशा में एक कारगर प्रयास है। इस व्यवस्था से न केवल महिलाओं को समान रूप से सत्ता में भागीदारी मिली है, अपितु निर्णय-निर्माण एवं सामाजिक गतिविधियों में भी भाग ले रही हैं।

T.Yashoda[24] : का अध्ययन ग्राम पंचायत में महिला नेतृत्व पर आधारित है। अध्ययन में पंचायत में निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों के सम्मुख आने वाली समस्याओं का विश्लेषण किया गया है। जिसमें मुख्यतः निरक्षरता, पुरूषों पर आश्रित रहना, गृहकार्य में उलझ जाना, निर्णय-निर्माण क्षमता की कमी, ग्रामीणों द्वारा उन्हें सहयोग न किया जाना, राजनीतिक अनुभव की कमी, आर्थिक निर्भरता, कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के प्रति समझ शक्ति का अभाव आज भी महिला जनप्रतिनिधियों के सम्मुख विद्यमान है जिससे उनकी नेतृत्व क्षमता बाधित हो रही हैं।

K.K.Sinha[25] ने अपने अध्ययन में बताया कि पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को आरक्षण प्राप्त होने से वे ग्राम सभा की बैठकों में भाग ले रही हैं। ग्राम विकास समिति की सदस्य बन रही हैं। साथ ही वे गाँव के विकास के बारे में भी मार्गदर्शन दे रही हैं तथा उनमें पंचायती क्रियाकलापों, गतिविधियों एवं उत्तरदायित्वों के प्रति समझ शक्ति का विकास हुआ है। इस तरह महिलाएँ स्व-सहायता समूह, गैर सहकारी संगठनों का निर्माण कर ग्रामीण विकास में प्रभावलशाली भूमिका का निर्वहन कर रही हैं साथ ही उनमें राजनीतिक जागरूकता भी आयी है।

Ramesh[26]: का अध्ययन भारत में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण पर आधारित है। उन्होंने अपने अध्ययन में बताया कि 73वें संविधान संशोधन से महिलाएँ अवश्य ही स्थानीय राजनीति में सहभागी बनी हैं। किन्तु आज भी वह सामूहिक चर्चा एवं निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में प्रभावशाली भूमिका नही निभा पा रही हैं। क्योंकि वे आज भी घरेलू कार्य एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों से घिरी हुई हैं, जो उनके सशक्तीकरण में बाधक है।

Rajesh Kumar[27]: का अध्ययन कमजोर वर्गो के राजनीतिक सशक्तीकरण पर आधारित है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि नगरीय निकायों में कमजोर वर्गो एवं महिलाओं को आरक्षण प्राप्त होने से इन वर्गो में जागरूकता आयी है। महिलाओं का नेतृत्व विकास हुआ है, आरक्षण व्यवस्था से महिलाओं का राजनैतिक सशक्तीकरण भी हुआ है तथा सामाजिक दृष्टि से उन्हें समानता भी प्राप्त हो रही है। महिलाओं की राजनैतिक भूमिका से उनका समाज में मूल्य बढ़ा है और महिलाएँ निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में तीव्रगति से आगे बढ़ रही हैं।

K. Subha and B.S. Bhargava[28] : के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 1993 में प्रदत्त आरक्षण व्यवस्था से पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित हो पाई है तथा उसे बुनियादी स्तर पर राजनीतिक एवं प्रशासनिक शक्ति प्राप्त हुई है। यह व्यवस्था सामाजिक समानता की दिशा में एक क्रांतिकारी पहल है। आरक्षण व्यवस्था से महिलाओं का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तीकरण भी हो रहा है।

Sali Narayanappa[29]: का अध्ययन पंचायती राज व्यवस्था में महिला सशक्तीकरण पर आधारित है। अध्ययन से यह विदित होता है कि पंचायतो में महिलाओं को आरक्षण मिलने से उनमें राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के प्रति जागृति आई है। अब महिलाएँ पराश्रित होने के बजाएं आत्मनिर्भर होना ज्यादा पसंद करती हैं। इस तरह पंचायत में उनकी सहभागिता से परिवार एवं समाज का भी दृष्टिकोण उनके प्रति सकारात्मक हो रहा है।

Anupma, Kaushik and Gayatri Shaktawat[30]: का अध्ययन पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की स्थिति पर आधारित है। अध्ययन से यह विदित होता है कि निर्वाचित महिलाएँ ऐसे पुरूषों का सम्मान नही करती हैं जो उनके पंचायती काम-काज में हस्तक्षेप करते हैं। महिला जनप्रतिनिधि इस बात से एकमत हैं कि आरक्षण व्यवस्था के कारण ही उन्हें राजनीतिक संस्थाओं में नेतृत्व करने का अवसर प्राप्त हुआ है जिससे उनके राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में सकारात्मक परिवर्तन भी हुए हैं। वे और भी अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस करती हैं। वे यह भी मानती हैं कि पंचायती कार्यो के संचालन में पारिवारिक सदस्यों से भी सहयोग प्राप्त करती है।

D.H. Mahamood Khan and G.M. Dinesh[31] : ने अपने अध्ययन में बताया कि पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण व्यवस्था के परिणामस्वरूप महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित हुई है किन्तु अधिकांशतः निर्णय पुरूष सदस्यों के द्वारा ही लिये जाते हैं। महिला जनप्रतिनिधि निर्णय लेने एवं पंचायतों की बैठकों में कमतर ही भाग लेती हैं। मुख्यतः उनेक पति या पुत्र के द्वारा ही उनके कार्य का संपादन किया जाता है। पंचायत की शक्ति और सत्ता का प्रयोग परिवार के पुरूष सदस्यों के द्वारा किया जाता है। अधिकांश महिला जनप्रतिनिधि तो केवल नाममात्र की होती हैं।

P.C. Sikligar[32]: के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति वर्ग की महिला जनप्रतिनिधियों में शिक्षा, राजनीतिक प्रशिक्षण एवं पंचायती गतिविधियों में व्यवहारिक अनुभव के अभाव के कारण इस वर्ग की महिला जनप्रतिनिधियों के स्थान पर समाज के प्रभुत्वशाली जातियों व लोगों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से शासन किया जाता है।

G.Palanithurai[33]: के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्थानीय स्तर पर निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों में उनकी सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आया है। स्थानीय स्वशासन द्वारा संचालित प्रशिक्षण कार्यक्रम से उनमें नेतृत्व विकास एवं निर्णय-निर्माण की क्षमता का भी विकास हुआ है। इस तरह महिलाओं को आज अवसर प्राप्त होने से उन्होंने अपने संवाद कौशल व संगठनात्मक कौशल को भी मजबूत किया है।

अध्ययन के उधेश्य :-

पंचायती राज संस्थाओं में निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों की राजनीतिक सशक्तिकरण एवं उनके नेतृत्विक स्थिति का अध्ययन करना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध में अध्ययन क्षेत्र के रूप में मध्य प्रदेश के सागर जिले के रहली तहसील को चुना गया था। सागर जिले के रहली तहसील की ग्राम पंचायतो में निर्वाचित समस्त महिला जनप्रतिनिधियों को अध्ययन का समग्र माना गया। ग्राम पंचायत में निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों को अध्ययन की इकाई के रूप में निदिृष्ट किया गया। सागर जिले के रहली तहसील में कुल 91 ग्राम पंचायतें है। 91 ग्राम पंचायतों में से दैवनिदर्शन विधि से 10 ग्राम पंचायतों को चुना गया था तथा चयनित 10 ग्राम पंचायतो में से 60 महिला जनप्रतिनिधियों को अध्ययन हेतु चुना गया था।

समंको की सूची उपलब्ध होने के कारण अध्ययन में दैव निदर्शन विधि का प्रयोग किया गया। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकन एवं द्वितीयक तथ्यों के संकलन हेतु मुख्यतः रिसर्च जर्नलस्, संबंधित साहित्य, पत्र-पत्रिकाएँ, शासकीय अभिलेख, शोध प्रबंध तथा इंटरनेट का प्रयोग किया गया।

निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों की राजनीतिक सशक्तिकरण एवं नेतृात्विक स्थिति :- भारतीय समाज का स्वरूप पुरातन काल से ही पुरूषप्रधान रहा है। पुरूष प्रधान समाज होने के कारण महिलाओं को नीति निर्माण, नेतृत्व और निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया एवं गतिविधियों से वंचित रखा गया। परिणामस्वरूप महिलाएँ परम्परागत सामाजिक मान्यताओं एवं निर्णयहीनता के कारण सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं नेतृत्विक दृष्टि से पुरूषों की तुलना में अक्षम व पिछलग्गू हो गईं। कालान्तर में हमारे संविधान निर्माताओं, चिंतको ने महिलाओं को आगे बढ़ाने व समाज में उन्हें समान दर्जा दिलाने के लिए विशेष सवैंधानिक प्रावधान किये साथ ही अनेक नीतियों एवं कार्यक्रमों का भी संचालन किया और आज भी सरकारें महिलाओं की दशा सुधारने व उनके सशक्तीकरण हेतु वचनबद्ध एवं प्रयासरत् है, जिनकी वर्तमान एवं यर्थात् स्थिति को निम्नांकित तथ्यों द्वारा समझा व स्पष्ट किया जा सकता है-

तालिका नं. 01

महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षणिक स्थिति

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
अशिक्षित	20	33.33
प्राथमिक	18	30
माध्यमिक	12	20
हाईस्कूल	8	13.33
स्नातक	2	3.33
स्नातकोत्तर	-	-
योग	60	100

तालिका क्रमांक-01 से यह ज्ञात होता है कि 33.33 प्रतिशत जनप्रतिनिधि अशिक्षित, 30 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा प्राप्त, 20 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा प्राप्त, 13.33 प्रतिशत हाई स्कूल तथा स्नातक स्तर पर 3.33 प्रतिशत महिला जनप्रनिधि शिक्षित हैं। अतः यह स्पष्ट होता है कि आज भी सर्वाधिक 33.33 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधि अशिक्षित है तथा स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा प्राप्त महिला जनप्रतिनिधियों का अभाव हैं।

तालिका नं. 02

जनप्रतिनिधियों की पारिवारिक एवं व्यवसायिक स्थिति

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
कृषि	23	38.33
मजदूरी	35	58.33
नौकरी	-	-
व्यवसाय	02	03.33
अन्य कार्य	-	-
योग	60	100

तालिका क्रमांक-02 में महिला जनप्रतिनिधियों की पारिवारिक व्यवसायिक स्थिति का वर्णन किया गया है, जिसमें 38.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मुख्य व्यवसाय कृषि है। 58.33 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधि मजदूरी कार्य से जुड़े हुए हैं। तथा 3.33 प्रतिशत जनप्रतिनिधियों के पारिवारिक सदस्य व्यवसाय करते हैं। अतः स्पष्ट है कि अधिकांश महिला जनप्रतिनिधियों का मुख्य कार्य मजदूरी है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आज भी अधिकांश परिवार गरीबी एवं बेरोजगारी के शिकार हैं।

तालिका नं. 03
उत्तरदाताओं के निर्वाचित होने के अवसर

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
पहली बार	48	80
दुसरी बार	12	20
तीसरी बार	-	-
योग	60	100

तालिका क्रमांक-03 से यह स्पष्ट होता है कि 80 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधि ग्राम पंचायत में पहली बार चुनी गई हैं। 20 प्रतिशत उत्तरदाता दूसरी बार चुनी गई है। किन्तु 60 महिला उत्तरदाताओं में से, तीसरी बार किसी को भी जनता ने अवसर नही दिया है। अतः यह विदित होता है कि जनता नये-नये प्रतिनिधियों को ज्यादा मौका देती है, जिनका नेतृत्व या कार्य अच्छा होता है उन्हें जनता पुनः चुन लेती है। यह स्थिति जनता की राजनीतिक जागृति का प्रतीक है।

तालिका नं. 04
जनप्रतिनिधियों को पंचायत की बैठकों की सूचना

बैठकों की सूचना	आवृत्ति	प्रतिशत
दो दिन पूर्व सूचना दी जाती	40	66.66
एक सप्ताह पूर्व सूचना दी जाती	11	18.33
कभी-कभी सूचना दी जाती	07	11.66
सूचना नही दी जाती है	02	03.33
योग	60	100

तालिका क्रमांक-04 में महिला जनप्रतिनिधियों को पंचायत की बैठकों से संबंधित दी जाने वाली सूचना का विश्लेषण किया गया है। पंचायत की बैठकों की 66.66 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधियों को दो दिन पूर्व सूचना दी जाती है। 18.33 प्रतिशत को बैठक के एक सप्ताह पूर्व सूचना दे दी जाती है तथा 11.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि उन्हें बैठको की कभी-कभी ही सूचना दी जाती है। अतः निष्कर्षतः यह कह जा सकता है कि अधिकांश 66.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं को मिटिंग की सूचना दी जाती है तथा सबसे कम 3.33 प्रतिशत जनप्रतिनिधियों को बैठक के पूर्व सूचना नही दी जाती है। अतः यह स्थिति दर्शाती है कि जो जनप्रतिनिधि पंचायती गतिविधियों में लगातार भाग लेते हैं उन्हें यथासमय सूचना उपलब्ध करायी जाती है।

तालिका नं. 05
पंचायत चुनाव में भाग लेने की प्रेरणा

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
स्वयं की प्रेरणा से	10	16.66
पति या पारिवारिक सदस्यों द्वारा	16	26.66
ग्रामवासियों से	30	50
समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति से	04	6.66
योग	60	100

तालिका क्रमांक-05 से यह ज्ञात होता है कि 16.66 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने स्वप्रेरणा से ही पंचायत के चुनाव में भाग लिया है। 26.66 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जिन्हें चुनाव लड़ने के लिए पति व पारिवारिक सदस्यों से प्रेरणा मिली। 50 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि ग्रामवासियों ने उन्हें चुनाव लड़ने हेतु प्रोत्साहित किया है तथा 6.66 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधि ऐसे हैं जिन्हें चुनाव लड़ने हेतु समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा प्रेरणा मिली है। अतः यह स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 50 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधि ग्रामवासियों के आग्रह एवं प्रेरणा से चुनाव लड़ी हैं। वस्तुतः उक्त आँकड़ों से यह ज्ञात होता है कि ज्यादातर ग्रामवासी अपने पसंदीदा प्रत्याशी को चुनावी मैदान में उतारते हैं तथा उन्हें सहयोग भी करते हैं।

तालिका नं. 06
पंचायत चुनाव में भाग लेने के कारण

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
राजनीति में रूचि	08	13.33
समाज की सेवा करना	13	21.66
पद प्राप्ति की इच्छा	05	08.33
परिवार का दबाव	08	13.33
ग्रामवासियों के आग्रह के कारण	26	43.33
योग	60	100

तालिका क्रमांक-06 में उत्तरदाताओं के पंचायत चुनाव में भाग लेने के कारणों का वर्णन किया गया है जिसमें 13.33 प्रतिशत जनप्रतिनिधियों ने माना कि राजनीति में रूची होने के कारण वे पंचायत चुनाव में भाग लिये हैं। 21.66 प्रतिशत उत्तरदाता समाज की सेवा करने के उद्देश्य से, 08.33 प्रतिशत पद प्राप्ति की इच्छा मात्र से, 13.33 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि वे परिवार के दबाव स्वरूप चुनाव में भाग लिये हैं। इसी प्रकार 43.33 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि ग्रामवासियों के आग्रह

के कारण उन्हें पंचायत चुनाव में भाग लेना पड़ा है। उक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अधिकांशतः जनता स्वयं अपने उम्मीदवार से आग्रह कर चुनाव लड़ाती है क्योंकि ऐसे प्रतिनिधियों का सर्वाधिक 43.33 प्रतिशत मत है।

तालिका नं. 07
जनप्रतिनिधियों में निर्वाचित होने से राजनीतिक सशक्तीकरण

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
राजनीति व्यवस्था के प्रति समझ बढ़ी है	27	45
निर्णय लेने की क्षमता का विकास	15	25
राजनीति गतिविधियों में रूची बढ़ी है	08	13.33
कोई बदलाव नही आया है	10	16.66
योग	60	100

तालिका क्रमांक-07 से स्पष्ट होता है कि 45 प्रतिशत जनप्रतिनिधि यह मानते है कि निर्वाचित होने से उनमें राजनीतिक व्यवस्था के प्रति समझ बढ़ी है। 25 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि उनमें निर्णय लेने की क्षमता का विकास हुआ है। 13.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि उनमें राजनीतिक गतिविधियों के प्रति रूची बढ़ी है जबकि 16.66 प्रतिशत जनप्रतिनिधि ऐसे भी हैं जो ये मानते हैं कि पंचायती राज संस्थाओं में निर्वाचित होने से उनमें कोई बदलाव नही आया है। उक्त विश्लेषण से यह ज्ञात होता है लगभग 84 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधियों का निर्वाचित होने से किसी न किसी रूप में विकास जरूर हुआ है।

तालिका नं. 08
जनप्रतिनिधियों की उच्च स्तर पर चुनाव लड़ने की इच्छा

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
लोकसभा/विधानसभा	-	-
जिला पंचायत	02	3.33
जनपद पंचायत	04	6.66
केवल ग्राम पंचायत	54	90
योग	60	100

तालिका क्रमांक-08 से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 90 प्रतिशत महिला पंचायत जनप्रतिनिधि सिर्फ ग्राम पंचायत स्तर का ही चुनाव लड़ना पसंद करती हैं। 6.66 प्रतिशत उत्तरदाता जनपद पंचायत स्तर का चुनाव व 3.33 प्रतिशत उत्तरदाता ही जिला पंचायत का चुनाव लड़ना चहती हैं। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि एक भी महिला उत्तरदाताओं ने यह नही कहा कि उन्हें लोकसभा या विधानसभा का चुनाव भी लड़ना है। इसका प्रमुख कारण संभवतः धन तथा शिक्षा की कमी का होना है।

तालिका नं. 09
लोकसभा एवं विधानसभा में महिला आरक्षण की प्रासंगिकता

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
50 प्रतिशत आरक्षण मिलना चाहिए	52	86.66
33 प्रतिशत आरक्षण मिलना चाहिए	08	13.33
आरक्षण नही मिलना चाहिए	-	-
योग	60	100

तालिका क्रमांक-09 से यह ज्ञात होता है कि 86.66 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधियों का मत है कि ग्राम पंचायत के भांति लोकसभा एवं विधानसभा में भी महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण मिलना चाहिए जबकि 13.33 प्रतिशत जनप्रतिनिधियों का मानना है कि महिलाओं को 33 प्रतिशत ही आरक्षण मिलना चाहिए। लेकिन सभी उत्तरदाताओं ने इस बात को अस्वीकार कर दिया कि महिलाओं को लोकसभा और विधान सभा में आरक्षण नही मिलना चाहिए। उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि आज महिलाएँ भी समान अधिकार व अपना वैधानिक हक चाहती हैं जो आज तक नही मिल पाया है।

तालिका नं. 10
पंचायत की बैठकों में अपनी बात रखना

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
निर्भयता पूर्वक बात रखते हैं	20	33.33
बात रखने में घबराहट होती है	27	45
चुपचाप बैठकर बातें सुनते हैं	05	8.33
बहुत जरूरी होने पर मांग व विरोध करते हैं	08	13.33
योग	60	100

तालिका क्रमांक-10 से यह स्पष्ट होता है कि 33.33 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधि ऐसा मानती हैं कि पंचायत की बैठकों में निर्भयतापूर्वक अपनी बात रखती हैं। 45 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि पंचायत की बैठकों में अपनी बात रखने में उन्हें घबराहट होती है, 8.33 प्रतिशत ने बताया कि वे चुप-चाप बैठकर बाते सुनती रहती हैं तथा 13.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है

कि वे बहुत जरूरी होने पर ही बैठकों में मांग व विरोध करती हैं। अतः उपरोक्त विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि आज भी सर्वाधिक महिला जनप्रतिनिधि अपनी बात रखने में घबराहट महसूस करती हैं, जो उनके सशक्तिकरण के मार्ग में बाधक है।

तालिका नं. 11

आरक्षण का उनके सशक्तिकरण पर प्रभाव

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
सामाजिक समानता मिली है	30	50
आगे आने का मौका मिला है	15	25
निर्णय-निर्माण में सहभागी बने है	10	16.66
कोई बदलाव नही आया है	05	8.33
योग	60	100

तालिका क्रमांक-11 से महिला आरक्षण का महिलाओं के सशक्तीकरण पर प्रभाव की स्थिति का विश्लेषण किया गया है जिससे स्पष्ट है कि 50 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधि यह मानती हैं कि आरक्षण व्यवस्था के कारण ही उन्हें निर्वाचित होने का मौका मिला और निर्वाचित होने से उन्हें समाज में समान दर्जा प्राप्त हुआ है। 25 प्रतिशत के अनुसार आरक्षण व्यवस्था से उन्हें आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है। 16.66 प्रतिशत का मानना है कि सिर्फ आरक्षण व्यवस्था के कारण ही उन्हें निर्णय-निर्माण में सहभागी बनने का मौका मिला है। किन्तु 8.33 प्रतिशत जनप्रतिनिधि यह भी मानती हैं कि आरक्षण व्यवस्था से भी उनके जीवन में कोई बदलाव नही आया है। अतः यह स्पष्ट है कि आरक्षण व्यवस्था से लगभग 92 प्रतिशत जनप्रतिनिधि किसी न किसी रूप में लाभान्वित हुई हैं और उनका सशक्तीकरण हुआ हैं।

तालिका नं. 12

आरक्षण से महिलाओं में नेतृत्व क्षमता का विकास

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
नेतृत्व क्षमता का विकास हुआ है	23	38.33
निर्भय होकर अपनी बात रखते है	15	25
यथा स्थिति बनी हुई है	12	20
योग	60	100

तालिका क्रमांक-12 में पंचायती राज संस्थाओं में प्रदत्त महिला आरक्षण से महिलाओं में नेतृत्विक क्षमता के विकास का विवरण प्रस्तुत किया गया है। तालिका से यह ज्ञात होता है कि 38.33 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधि यह मानते हैं कि जनप्रतिनिधि बनने से उनमें नेतृत्व क्षमता का विकास हुआ है। 25 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते है कि वे निर्भय होकर अपनी बात अब रखते हैं। 16.66 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि जनप्रतिनिधि होने के कारण महिलाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु 20 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधि यह मानते हैं कि जनप्रतिनिधि बनने के बाद भी उनकी स्थिति वैसी ही बनी हुई है जैसे की पहले थी। अतः स्पष्ट है कि अधिकांश जनप्रतिनिधियों का मानना है कि जनप्रतिनिधि बनने से उन मे नेतृत्विक क्षमता का विकास हुआ है, जो आरक्षण व्यवस्था का एक सकारात्मक परिणाम है।

निष्कर्ष :- पंचायती राज संस्थाओं में महिला जनप्रतिनिधियों के राजनीतिक सशक्तीकरण एवं नेतृत्विक स्थिति के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को प्रदत्त आरक्षण व्यवस्था से न केवल स्थानीय राजनीतिक संस्थाओं/निकायों में उनकी भागीदारी सुनिश्चित हुई है बल्कि उनमें निर्णय-निर्माण की क्षमता, जागरूकता, नेतृत्व विकास एवं उनका राजनीतिक व सामाजिक सशक्तीकरण भी हुआ है। किन्तु आज भी स्थानीय स्तर पर शिक्षा के अभाव के कारण महिला जनप्रतिनिधियों को पंचायती गतिविधियों के संचालन में समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अधिकांश महिला जनप्रतिनिधियों का परिवार जीविकोपार्जन हेतु मजदूरी पर आश्रित है, यदि वह लगातार पंचायतों की बैठको में भाग लेती हैं तो उन्हें उतना मानदेय नही मिल पाता है जितना की वे मजदूरी से अर्जित कर लेते हैं और अपना जीवनयापन करते हैं। वस्तुतः गरीबी, बेकारी एवं अशिक्षा जैसी समस्याएँ उनके सशक्तीकरण में बाधक हैं। अध्ययन में अधिकांश जनप्रतिनिधियों ने यह स्वीकार किया ग्रामवासियों एवं पुरूषों के बीच पंचायत की बैठकों में अपनी बात रखने में उन्हें घबराहट होती है, वे निःसंकोच व स्वतंत्रतापूर्वक अपनी बात नही रख पाती हैं। इसका मुख्य कारण परम्परागत समाज व्यवस्था की रूढ़िगत मान्यताएँ, महिलाओं को प्राचीनकाल से ही दोयमदर्जा दिया जाना, उन्हें शिक्षा और संपत्ति से वंचित रखना, पारिवारिक जिम्मेदारियां और गृह कार्य की बाध्यताएँ, पारिवारिक एवं सामाजिक गतिविधियों में पुरूषों को निर्णयाधिकार के कारण महिलाएँ पुरूषों की तुलना में सार्वजनिक जीवन यानी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक क्षेत्र में पिछड़ गईं, जो आज 21वीं सदी में किसी न किसी रूप में बरकरार है। महिलाओं पर थोपी गई ऐसी निर्योग्यताओं

को दूर करने हेतु अनेक सवैंधानिक प्रावधान किये गये, परिणामस्वरूप आज महिलाओं की स्थिति में थोड़ी अनुकूलता अवश्य आयी है और इसी तरह सकारात्मक प्रयास यदि किया जाता रहा तो, भविष्य में महिलाएँ पुरूषों से भी आगे निकल जायेगी, इस मान्यता में कोई संशय नही है।

सुझाव :- प्रस्तुत अध्ययन में पंचायतो में निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों की राजनीतिक स्थिति, सशक्तीकरण एवं उनके नेतृत्विक स्थिति का वास्तविक तथ्यों के प्रस्तुस्तीकरण के साथ-साथ उनके सशक्तीकरण के मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधाओं एवं समस्याओं के विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में उनकी समस्याओं के समाधान हेतु निम्नांकित सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैंः-

1. आज भी ग्रामीण महिलाएँ अशिक्षा एवं परम्परागत समाज व्यवस्था की रूढ़िगत, आडम्बरयुक्त मान्यताओं से घिरी हुई हैं जिन्हें दूर करने हेतु सरकार को वैज्ञानिकता पर आधारित शिक्षा प्रदान करना चाहिए तथा आडम्बर व पाखण्डरोधी जन अभियान चलाया जाना चाहिए जिससे कि वे सत्य और वास्तविकता से रूबरू हो सकें।
2. महिला जनप्रतिनिधियों को सरकार द्वारा उचित वेतन भी दिया जाना चाहिए जिससे कि वह अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर स्वच्छन्द रूप से राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेकर अपने अधिकारों, एवं उत्तरदायित्वों का उचित निवर्हन कर सकें।
3. आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़ी महिला जनप्रतिनिधियों के लिए विशेष व अतिरिक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाने चाहिए जिससे वह प्रशिक्षित होकर अपनी स्थिति में सुधार ला सकें।
4. ग्रामीण क्षेत्र में न केवल पंचायत जनप्रतिनिधि बल्कि ज्यादातर सुदूर ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले लोग गरीबी व बेकारी में जीवन यापन करते हैं। अतः उनके लिए विशेष आर्थिक कार्यक्रम एवं नीतियां बनाए जाने की आवश्यकता है तथा उन्हें न केवल शिक्षा बल्कि रोजगारउन्मुखी शिक्षा भी दिये जाने की आवश्यकता हैं।

सन्दर्भ

1. सिसोदिया, यतीन्द्र, *'मध्यप्रदेश की ग्राम पंचायतो में अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व',* पूर्व देवा सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका उज्जैन, अंक 33 एवं 34 संयुक्त, अप्रैल-सितम्बर, 2003 पृ. 201।
2. अली इस्लाम, *'गणतंत्रीय परम्पराएँ, अधिकार एवं कर्त्तव्य',* त्यागी, रूची (संपा.), *'भारतीय राजनीतिक चिंतन प्रमुख अवधारणाएँ वं चिंतक',* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2016, पृ. 77।
3. गाबा, ओम प्रकाश, *'विवेचनात्मक राजनीति विज्ञान कोष',* नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2000, पृ. 248-249।
4. Aslam. M., *'Panchayat Raj in India',* National Book Trust India, New Delhi, 2007, p. 1.
5. सिंह, रूपेश कुमार, *'महिला सशक्तिकरण एवं पंचायती राज',* पूर्वदेवा सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका उज्जैन, अंक 33 एवं 34 संयुक्त, 2003 अप्रैल-सितंबर, पृ. 40।
6. महिपाल, *'पंचायती राज चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ',* राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, नई दिल्ली, 2015, पृ.14-18।
7. काश्यप, सुभाष और गुप्त, विश्वप्रकाश, *'राजनीति कोश',* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2009, पृ. 259-206।
8. माहेश्वरी, एस.आर. एवं माहेश्वरी, *'भारत में स्थानीय शासन',* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1999, पृ.3-4।
9. Rao, V. Venkat, *'A Hundred Years of Localself Government in Assam',* Beni Prakash Mader, Culcutta, 1965, p. 01.
10. Gokhale, B.K., *'The constitution of India',* Seth & Com. Bombay, 1972, Pp.1307-1308.
11. यादव, सुषमा एवं गौतम, बलराम, *'लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार',* ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2015, पृ.446।
12. अवस्थी एवं अवस्थी, *'भारतीय प्रशासन',* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1999, पृ.464।
13. महीपाल, पूर्वोक्त, पृ. 14।
14. Aslam, M., op.cit. pp.20-21.
15. शर्मा, राकेश, *'पंचायती राज तब और अब',* जान्हवी प्रकाशन, दिल्ली, 2016, प. 84।
16. सक्सेना, आलोक, *'मध्यप्रदेश पंचायत एवं ग्राम स्वराज अधिनियम',* इण्डिया पब्लिशिंग कम्पनी, इन्दौर, 2015, पृ.22।
17. भदौरिया, जितेन्द्र सिंह एवं राकेश गौतम, *'मध्यप्रदेश एक परिचय',* एमसी ग्रिव हिल एजुकेशन प्राईवेट लिमिटेड, चेन्नई, 2019, पृ. 19-5।
18. जोशी, गोपा, *'भारत में स्त्री असमानता',* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2015, पृ.37।

19. मुखर्जी, सुब्रत एवं सुशीला रामास्वामी, *'पाश्चात्य राजनीतिक चिंतक'*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2015, पृ. 170-222।

20. एजाज, तनवीर, *'महिलाओं के लिए आरक्षण'*, आर्य, साधना, मेनन निवेदिता, लोकनीता, जिनी (सपा.), *'नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुधे'*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2016, पृ.342-441।

21. भारत का संविधान, 9 नवम्बर, 2015 को यथाविद्यमान, भारत सरकार विधि और न्याय मंत्रालय, राजभाषा खण्ड, नई दिल्ली, पृ.147-148।

२२. Maurya, R.D. , *'Training Needs Assessment of Elected Representatives in Scheduled Areas of Andhra Pradesh'*, Orissa, Gujrat and Madhya Pradesh, AJSDJ, Vo. XIV, BANISS, Mhow M.P., 2006, Pp. 131-139.

२३. Subha, K. and Bhargava, B.S., *'Women in Panchayati Raj Institutions Some Facts and Observation, Panchayati Raj and Empowering People'*, Kanishka Publishers, New Delhi, 2007.

२४. Yashoda, T., *'Women Leadership In Gram Panchayats, A Field Analysis from Hassan District'*, ISDA, Journal. Vol.17, Thiruvanthapuram, 2007.

२५. Sinha, K.K., *'The Role of Women Empowerment through Gram Panchayats, New Dimension's of Women Empowerment'*, Deep & Deep Publication, Pvt. Ltd. New Delhi, 2008.

२६. Ramesh, *'Political Empowerment of women In India : An Analysis'*, Indian Socio-legal Journal, Vol. XXXIV No. 1&2, Indian Institute of Comparative Law, Jaipur, 2008.

२७. Kumar, Rajesh, *'Political Empowerment of Weaker Section'*, The Indian Journal of Political Science, Vol. LXIX, No. 4, October-December 2008, C.C.S. University, Meerut, U.P., 2008.

२८. Shubha, K. and Bhargava, B.S., *'Empowering Women Some Aspects of the Karnataka Experience'*, Local Govt. Quarterly Journal, Bandra Mumbai, 2010.

२९. Narayanappa, Sali, *'Empowerment Women Through Decentralized Institution an Analysis'*, Local Govt. Quarterly, Vol.LXXX, No.2, April-June, AIILSG Bandra Mumbai, 2010, Pp. 22-27.

30. Kaushik, Anupma and Shaktawat, Gayatri, *'Women in Panchayati Raj Institution's in Chittorgarh Zila Paris had a case study'*, Local Government Quarterly, Vol. LXXX, No.2, April-June, AIILSG, Mumbai, 2010, Pp. 34-40.

31. Mahamood Khan, D.H. and G.M. Dinesh, *'Women in Panchayati Raj Institution'*, Southern Economist, Vol.48, No.20, 2010, Pp.5-8.

32. Sikligar, P.C., *'Empowerment of Weaker Sections through Panchayati Raj System'*, Ambedkar Journal of Social Development and Justice, Vol. XX, BANISS, M.P., 2012, Pp. 170-177.

33. Palanithurai,G., *'Role of Support Agency for Elected Women Representative, A. Narration of two Decades Experience in women Empowerment'*, The Indian Journal of public Administration, Vol. LX, No.3, July-September, New Delhi, 2014, Pp.489.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी-जून 2019
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

भारतीय राष्ट्रवाद के विमर्श का नया केन्द्र : सोशल मीडिया

❑ विशाल शर्मा

देश दुनिया में मीडिया का रुपांतरण मात्र सूचना जगत तक सीमित नहीं रह गया है। मीडिया के कायाकल्प ने संचार व्यवस्था से जुड़े उपक्रमों को तो बदला ही है साथ ही ज्ञान-विज्ञान की पारंपरिक पद्धति को भी नए कलेवर में प्रस्तुत करना शुरू कर दिया है। विशेष रूप से सोशल मीडिया के उद्भव व उसके बढ़ते प्रभाव ने समाज के हर क्षेत्र में अपना असर दिखाया है। सोशल मीडिया के इसी प्रभाव के चलते राष्ट्रवाद जैसे प्रभावशाली विषय को भी विमर्श के लिए नया केन्द्र मिल गया है। मीडिया के इस नवोदित मंच पर अनगिनत लोग राष्ट्रवाद की व्याख्या करने में लगे हैं। यही नहीं राजनीतिक पंडितों से इतर ज्ञान कौशल के इस नए मंच पर राष्ट्रवाद के मानक भी बदलते दिखाई पड़ते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में राष्ट्रवाद के विषय में सोशल मीडिया पर उसके उपयोगकर्ताओं के व्यवहार का अध्ययन किया गया है, जिसके अंतर्गत 'राष्ट्रवाद' नाम से संचालित फेसबुक पेज को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है। गुणात्मक अंतर्वस्तु विश्लेषण द्वारा किए गए इस शोध कार्य में फेसबुक पेज पर पोस्ट की सामग्री के माध्यम से राष्ट्रवाद के विषय में जो प्रस्तुति दी गई है वह निष्कर्ष रूप में सामने दिखाई पड़ी है। प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष के द्वारा यह प्रतीत हुआ है कि सोशल मीडिया पर राष्ट्रवाद के विमर्श के बिंदु क्या हैं तथा किस प्रकार के विषयों को राष्ट्रवाद के विषय में प्रस्तुत किया जा रहा है।

राष्ट्रवाद का अवतरण :- राष्ट्रवाद एक सशक्त विश्वव्यापक जटिल अवधारणा है जिसे किसी एक परिभाषा के माध्यम से सभी के लिए स्वीकार्य नहीं बताया जा सका है। राष्ट्रवाद को लेकर देश-दुनिया के अपने-अपने मत अपने-अपने दृष्टिकोणों के अनुसार देखे गए हैं। इसलिए विश्व भर में राष्ट्रवाद की एक सर्वमान्य अवधारणा सहजता से स्वीकार नहीं की गई है। पश्चिमों देशों से इतर एशियाई देशों पर भी दृष्टिपात करें तो भारत में राष्ट्रवाद को लेकर जो अवधारणा है वह चीन, पाकिस्तान, नेपाल या अफगानिस्तान में लागू नहीं हो सकती है। भारत में राष्ट्रवाद को अक्सर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से जोड़कर देखा जाता रहा है। हालांकि राष्ट्रवाद के इस मत में समय के साथ-साथ परिवर्तन भी देखने का मिलते है। राष्ट्र व नेशन शब्द के अर्थों को लेकर भी विविधता है। जहां तक भारतीय संदर्भ में राष्ट्र शब्द की बात करें तो यह माना जाता है कि सबसे पहले वैदिक साहित्य में इसका उल्लेख मिलता है। ऋगवेद के दसवें मंडल में राष्ट्र, राजा और प्रजा (समाज) को लेकर ऋचायें कही गयी हैं-

आ स्वाहार्षमन्तरेधि, ध्रुवस्तिष्ठा विचाचलिः,
दिशत्स्वा सर्वा वांछतु, मास्वद्राष्टमधि भ्रशत्।।[1]

अर्थात, हे राजन! हमारे राष्ट्र का तुम्हें स्वामी बनाया गया है। तुम हमारे राजा हो। तुम नित्य अचल और स्थिर होकर रहो। सारी प्रजा तुम्हें चाहे। तुमसे राष्ट्र नष्ट न होने पावे।

ऋगवेद में भी बताया गया है कि-
''ध्रुव ते राजा वरणो, ध्रुव देवो बृहस्पतिः, ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च, राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्।।[2]'' अर्थात, तुम ध्रुव बनकर इस राष्ट्र को धारण करो और राष्ट्र को तेजस्वी वरुण स्थिर करें, देव बृहस्पति, इन्द्र और अग्नि राष्ट्र को अचल बनावें। ऋगवेद में राष्ट्र शब्द की पुनरावृत्ति देखने को मिलती है। विष्णु पुराण में भारत वर्ष को रेखाऋकत करते हुए इसकी सीमाओं की ओर इंगित किया गया है-

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः।।[3]

वैदिक युग के बाद के भारत में राष्ट्र व राष्ट्रवाद की मान्यताओं को लेकर अलग-अलग मत बने हुए हैं। सत्ता-शासन के अनुसार इसे अलग-अलग प्रकार से परिभाषित भी किया जाता रहा है। अतः यह तो स्पष्ट है कि राष्ट्रवाद के अनेक प्रारूप हैं तथा अपने इन्हीं बहुधा प्रारूपों के कारण यह अकादमिक जगत में वैचारिक दृष्टिकोण के आधार पर प्रासांगिक बना हुआ है।

पश्चिम के परिदृश्य में, हैंस कोहन जिन्होने राष्ट्रवाद के अकादमिक अध्ययन का प्रारंभ किया उनका विचार था कि ''राष्ट्रवाद वह मनः स्थिति है जिसमें व्यक्ति की सर्वोच्च

❑ शोध अध्येता, पत्रकारिता एवं सृजनात्मक लेखन विभाग, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला (हि.प्र.)

निष्ठा राष्ट्र-राज्य के प्रति होती है" ।[4] जबकि राष्ट्रवाद के दूसरे प्रमुख विचारक एर्नेस्ट गेलनर ने इसे प्राथमिक तौर पर राजनीतिक सिद्धांत बताया है जिसमें राजनीतिक और राष्ट्रीय इकाई एक समान होनी चाहिए। उन्होने कहा कि राष्ट्रवाद एक भावना, या एक आंदोलन के तौर पर इन सिद्धांतों के उल्लंघन से पैदा होने वाले गुस्से का अहसास या फिर उसके पूरे होने पर मिलने वाली खुशी का अहसास है।[5] एंडरसन राष्ट्र को कल्पित समुदाय मानते है और राष्ट्रीय अस्मिता कल्पना में रहने वाली कोई चीज, हालांकि इसका मतलब वह इसे छद्म कल्पना भी नहीं स्वीकार करते हैं।[6] राष्ट्रवाद का वैश्विक दृष्टिकोण मनः स्थिति से लेकर आंदोलन के अहसास एवं कल्पित समुदाय की उत्पत्ति के रूप में देखते हुए इसे आधुनिक काल की उपज मानता है। वह भारतीय राष्ट्रवाद को भी इसी सन्दर्भ में जोड़कर रखता है तथा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को इसके मुख्य सूत्रधार के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश करता है।[7]

पश्चिम के इस दृष्टिकोण से भारतीय लेखकों का एक वर्ग भी सहमति जताता रहा है। वरिष्ठ पत्रकार कुलदीप कुमार ने आउटलुक पत्रिका के लिए लिखे "गांधी, टैगोर और राष्ट्रवाद" में यह बताने की कोशिश की है कि भारतीय राष्ट्रवाद ब्रिटिश शासन के विरोध में भारतीय जनमानस की आवाज के तौर पर देखा जाना चाहिए। उन्होने कहा है कि भारत में राष्ट्रवाद ब्रिटिश औपनिवेशक शासन के खिलाफ विकसित हुए राष्ट्रीय आंदोलन के गर्भ से निकला है।[8] वहीं इसके विपरीत भारतीय विचारकों का एक वर्ग यह मानता है कि भारतीय राष्ट्रवाद आधुनिक काल का नहीं अपितु पुरातन भारतीय संस्कृति से उपजा हुआ है। बलराज मधोक ने "इंडियन नैशनलिज़्म" नामक अपनी पुस्तक में वैदिक साहित्य के आधार पर भारतीय राष्ट्रवाद को पुरातन संस्कृति से जोड़ा है और पौराणिक ग्रंथों के आधार पर भारतीय राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद की व्याख्या की है।[9] टी.पी. वर्मा ने अपने शोध कार्य में वैदिक साहित्य के आधार पर यह कहा है कि भारत एक प्राचीन देश है जिसकी अपनी एक सनातन परंपरा है और राष्ट्रवाद की भावना भारत में पुरातन समय से रही है। शिवा आचार्य ने भी अपने शोध कार्य के आधार पर पश्चिम के दृष्टिकोण के विपरीत भारतीय सन्दर्भ में राष्ट्रवाद को एक सांस्कृतिक आधार दिया है तथा यह माना है कि भारत में वैदिक काल से लोगों में राष्ट्रवाद की भावना रही है।[10]

अतः शोधकर्ताओं के प्रयासों से यह तो स्पष्ट पता चलता है कि भारतीय राष्ट्रवाद को लेकर एक मत, एक विचार, एक परिभाषा सहजता से उपलब्ध नहीं है। यह शिक्षाशास्त्रियों, विचारकों, लेखकों एवं जनप्रतिनिधियों द्वारा अलग-अलग तरह से परिभाषित किया जाता रहा है।[11] राष्ट्रवाद को लेकर यह विविधता केवल यहीं तक सीमित नहीं है। पत्रकारिता भी इससे स्वयं को अलग नहीं रख पायी है। स्वतंत्रता संग्राम से पहले प्रेस ने भारतीय राष्ट्रवाद की वकालत स्वाधीनता पाने के लिए की है। स्वाधीनता के बाद संवैधानिक राष्ट्र के तौर पर भारत में प्रेस ने राष्ट्रवाद को अलग रूप में प्रस्तुत किया है। हर काल के नायक के साथ जनमानस में राष्ट्र को लेकर जो आकांक्षाए रहीं प्रेस ने उसे उसी तरह से प्रस्तुत किया। समाचार पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो, टेलीविजन में राष्ट्रवाद की बयार आसानी से देखी जा सकती थी। मीडिया के नित नए रूपांतरण और तकनीक के सफलतम प्रयोगों के चलते अब यह बयार सोशल मीडिया तक पहुंच गयी है, जो समकालीन सन्दर्भ में राष्ट्रवाद के विमर्श का प्रमुख मंच है। ऐसा मंच जहां इसके उपयोगकर्ता राष्ट्रवाद की नई परिभाषाएं गढ़ रहे हैं और राष्ट्रवाद को एक नए प्रारूप के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं। ऐसा प्रारूप जिसमें राष्ट्रवाद के नए प्रतीक खोजे जा रहे हैं। नए रंगों, भाषा, चेहरों व नारों को राष्ट्रवाद के नाम पर प्रसारित किया जा रहा है। सोशल मीडिया के आइने में यह बिल्कुल अलग तरह का राष्ट्रवाद है। जिसका वैदिक साहित्य, पश्चिमी दृष्टिकोण तथा संवैधानिक भारत की अवधारणाओं से मेल कहीं दूर तक नज़र नहीं आता है। बुद्धिजीवियों का एक वर्ग इसे राष्ट्रवाद के प्रस्तुतिकरण के रूप में सहजता से स्वीकार नहीं करता है। वह अभी भी पुरानी अवधारणाओं में इसे परिभाषित करते हैं। जबकि सोशल मीडिया के दबदबे ने उन सभी प्राचीन व अकादमिक अवधारणाओं के उलट राष्ट्रवाद का एक नया ही कलेवर प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में सोशल मीडिया के मंच से उठ रहे राष्ट्रवाद के इस नए प्रारूप को ही रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य में सोशल मीडिया व राष्ट्रवाद के अंतर्सम्बन्ध को प्रस्तुत करते हुए यह व्यक्त करने की कोशिश की गई है कि किस प्रकार सोशल मीडिया अपने उपयोगकर्ताओं के मध्य राष्ट्रवाद की भावना का निर्माण कर रहा है।

सोशल मीडिया एवं राष्ट्रवाद :- सोशल मीडिया

सूचना संप्रेषण का एक ऐसा माध्यम है जो इंटरनेट एवं तकनीक के सहारे एक आभासी दुनिया का निर्माण करता है तथा अपने उपयोगकर्ताओं को एक दूसरे से जोड़कर रखता है। इस आभासी दुनिया में लोग वास्तविकता के धरातल पर एक दूसरे से अनभिज्ञ होते हुए भी एक दूसरे से सम्पर्क बनाए रखते हैं। फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, माईस्पेस, व्हॉटसएप जैसे कई पटल इस आभासी दुनिया के प्रतिबिंब है जो इंटरनेट एवं तकनीक के समन्वय से कंप्यूटर से लेकर मोबाइल फोन के माध्यम से संचालित होते हैं।

प्रारंभिक अवस्था में सोशल मीडिया सीमित समूह के बीच सूचना संप्रेषण के लिए प्रयुक्त होता था, जिसमें इसके उपयोगकर्ता के बीच सामान्य दिनचर्या से जुड़े विषय प्रस्तुत किए जाते थे। लेकिन जिस प्रकार इसकी लोकप्रियता में बढ़ोत्तरी हुई उसी क्रम में प्रस्तुतिकरण के विषय बदलते चले गए। अब उपयोगकर्ताओं के मध्य महज सामान्य बातचीत ही नहीं अपितु वैचारिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण भी इन्हीं पटल से उपजने लगे। ट्यूनिशिया, मिस्त्र, यमन, बहरीन और लीबिया में सोशल मीडिया की भूमिका से सत्ता हस्तांतरण तक हो गई। मध्य पूर्व के देशों से हुए इस आगाज़ ने दुनिया भर में अपना प्रभाव दिखाया। भारत भी इसके प्रभाव से खुद को दूर नहीं रख पाया। अनेकों सांस्कृतिक विविधताओं के बावजूद लोग इस आभासी दुनिया में जुड़ते चले गए। 'इंडिया अंगेस्ट करप्शन' जैसे आंदोलन ने सोशल मीडिया की पहुंच से लोगों को इसकी ताकत का आभास भी करा दिया।

सोशल मीडिया अब महज सूचनाओं के आदान-प्रदान तक ही सीमित नहीं रह गया था बल्कि वह उपयोगकर्ताओं के बीच में धारणाओं का निर्माण भी करने लगा। उपयोगकर्ता ने विषय सामग्री के साथ लोगों को जोड़ना शुरू किया तथा तमाम ऑनलाइन पेज, समूहों का निर्माण होने लगा जहां लोग बेबाकी के साथ अपने विचार रखने लगे। विचारों की विविधता ने ऐसे प्रयोगों को और अधिक लोकप्रिय बनाया। इसी लोकप्रियता ने राजनीतिक पार्टियों में भी सोशल मीडिया के लिए आकर्षण पैदा कर दिया। पार्टी एवं वोटर के बीच संवाद का नया प्रारूप देखा जाने लगा। इसकी लोकप्रियता इस स्तर पर हुई कि परंपरागत मीडिया से लेकर अकादमिक जगत में साल 2014 का लोकसभा चुनाव सोशल मीडिया का चुनाव तक कहा जाने लगा। सिर्फ चुनाव ही नहीं अपितु भारतीय समाज व्यवस्था में जिन विषयों का सरोकार है उनकी बात सोशल मीडिया पर वृहद स्तर पर की जाने लगी। राष्ट्रवाद भी सोशल मीडिया पर प्रस्तुत ऐसा ही एक विषय बन गया है। जिस पर आम उपयोगकर्ता भी अपनी राय बेबाकी से प्रस्तुत कर रहा है। राष्ट्रवाद का यह एकदम नया प्रारूप है जो भारतीय एवं पश्चिम के विचारकों से कहीं अलग सोशल मीडिया के उपयोगकर्ताओं द्वारा परिभाषित होती है। इसलिए सोशल मीडिया भारत में राष्ट्रवाद की वकालत करने का एक नया माध्यम बनकर सामने आया है। तकनीक के दौर में इस मीडिया ने परंपरागत मीडिया के प्रारुप से इतर एक छवि बनाई है जो प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से कहीं अलग है। स्पष्ट है जब सोशल मीडिया की छवि बाकी सबसे अलग है तो उसके माध्यम से प्रसारित हो रही जानकारी में भी विभिन्नता होगी। परंपरागत मीडिया ने अपने कुछ मानदंड तय किए हुए थे जो उसे राष्ट्रवाद से जोड़े हुए थे। उन्हीं मानदंडों के अनुसार यह मीडिया सूचना को प्रचारित प्रसारित भी करता था। उसके इस प्रसारण के द्वारा ही सामाजिक स्तर पर एक राय बनती थी, जिसे बनाने में मीडिया का अहम रोल होता था। मगर जब बात सोशल मीडिया की आती है तो ऐसा देखा गया है कि वहां पर राष्ट्रवाद को लेकर एक अलग ही दृष्टिकोण है, जो परंपरागत मीडिया तक का विश्लेषण करता दिखाई पड़ता है। साथ ही इस मीडिया के लिए लोगों में एक अलग तरह का जुड़ाव है जो दूसरे माध्यमों के लिए नहीं दिखाई पड़ता है। हालांकि इसके पीछे एक कारण यह भी है कि नए जमाने के इस मीडिया में वे सारे अवयव हैं जो उसे बाकी माध्यमों की तुलना में कहीं श्रेष्ठ बनाते हैं।

ऑनलाइन मीडिया टैक्सट, इमेज, साउंड, ऑडियो-वीडियो एवं ग्राफिक्स से लेकर तकनीक के उन सभी हिस्सों को पूरा करता है जो आधुनिक समय में संचार व्यवस्था का हिस्सा है। इस नवीनता के साथ ही इस मीडिया ने एक नए तरह का राष्ट्रवाद परोसा है, जो इंटरनेट के माध्यम से बेहद तेज गति के साथ लोगों तक अपनी पैंठ बना रहा है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स, ई-पोर्टल, मोबाइल मीडिया, यू-ट्यूब, टिवटर जैसे मंच इस नए राष्ट्रवाद की उपलब्धता के प्लेटफॉर्म हैं जहां से इसे प्रसारित किया जा रहा है। सोशल मीडिया के आम यूजर के बीच इसका हस्तक्षेप इस स्तर का है कि हर नया यूजर इससे सहमत या असहमत तो हो सकता है मगर इसे अनदेखा नहीं कर सकता है।

मुख्य रुप से सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर हर दिन हजारों की संख्या में बनते नए यूजर सूचना के नाम पर जिस प्रकार की सूचना प्राप्त करते हैं वह उनकी राय बनाने में भी अहम योगदान दे सकता है।

भारत में लगभग पिछले एक दशक में सोशल मीडिया को लेकर तेजी आई है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स तथा वर्तमान समय में मोबाइल मीडिया ने इस दिशा में काफी जागरुकता पैदा की है। इन माध्यमों पर यूजर की बढ़ती संख्या ने बाजार से लेकर राजनीतिक पार्टियों और सामाजिक संगठनों को एक अवसर भी पैदा कराया है। जहां वह अपने हितों के अनुसार समाज के बीच अपनी बात कह लेते हैं। अनुमान लगाया जा सकता है कि राष्ट्रवाद भी इसी तरह सोशल मीडिया पर लॉन्च किया गया जिसक बाद इसे अलग-अलग तरह से बढ़ाया गया। इस लॉन्चिग को कब, किसने और क्यों किया यह शोध के दायरे में आता है, जिसे उपयोगकर्ता के जरिए जानने की कोशिश की जाएगी कि आखिर वह सोशल मीडिया पर दिखने वाले राष्ट्रवाद को किस प्रकार समझता है। उपयोगकर्ता की इस समझ के पीछे तमाम कारण होते हैं जो उसके पारिवारिक परिवेश, पालन-पोषण, शिक्षा का स्तर, सामाजिक स्तर, आर्थिक स्तर व अलग-अलग विषयों पर उसके दृष्टिकोण पर निर्भर होते हैं। यह दृष्टिकोण हर व्यक्ति विशेष का अलग-अलग हो सकता है एवं कुछ मुद्दों या विषयों पर यह एक समान भी हो सकता है।

साल 2018 में बीबीसी के शोध कार्य में यह पाया गया कि भारत में राष्ट्रवाद के नाम पर फेक न्यूज फैलाई जा रही है। फेक न्यूज के प्रचार-प्रसार के पीछे लोगों की राष्ट्र निर्माण भावना एक अहम कारण है। लोग बिना जांचे ऐसे संदेश फॉरवर्ड करते हैं जो उन्हे लगता है कि राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण हैं। ऐसे संदेशों को प्रसारित करना वह अपना फ़र्ज समझते हैं। फेसबुक, ट्विटर एवं व्हॉटसएप जैसे पटल से राष्ट्रवाद के नाम पर संदेशों को बेहद सुनियोजित तरीके से प्रसारित किया जाता है। वहीं भारत के अलावा कीनिया और नाइजीरिया में इस प्रकार के संदेशों को साझा करने में राष्ट्र निर्माण की भावना के स्थान पर ब्रेकिंग न्यूज की भावना होती है।[12]

शोध प्रविधि :- प्रस्तुत शोध अध्ययन एक गुणात्मक अनुसंधान है। इस शोध कार्य के लिए गुणात्मक अंतर्वस्तु विश्लेषण विधि के माध्यम से आवश्यक डेटा का संग्रहण किया गया है। शोध कार्य के लिए फेसबुक पर राष्ट्रवाद के नाम से संचालित पृष्ठ को अध्ययन के दायरे में रखा गया है। उद्देश्यात्मक निदर्शन के माध्यम से राष्ट्रवाद नाम के फेसबुक पेज का चुनाव किया गया। चयनित फेसबुक पृष्ठ पर 20 अप्रैल 2019 से 20 मई 2019 तक की समय अवधि में जो भी पोस्ट किए गए उन सभी का अंतर्वस्तु विश्लेषण किया गया है। विश्लेषण के दौरान सभी पोस्ट को कोड में विभाजित कर मुख्यः कोड बनाए गए तथा हर कोड के अनुसार संदेशों, पोस्ट व वीडियों को एक दूसरे से अलग किया गया। गुणात्मक रूप से किए गए अंतर्वस्तु विश्लेषण के पश्चात प्राप्त डेटा से उपयुक्त कोडिंग के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए।

विश्लेषण :- शोधार्थी द्वारा 'राष्ट्रवाद' के नाम से संचालित एक फेसबुक पृष्ठ को अध्ययन के दायरे में रखा गया । इस पृष्ठ के परीक्षण के निम्न आधार थे- मुख्यतः फेसबुक पेज के आंकड़ों को तीन हिस्सों में बांटा गया।

1- पेज डाटा

2- पोस्ट डाटा

3- वीडियो डाटा

पेज डाटा की समीक्षा के आधार पर शोधार्थी ने पाया कि चयनित फेसबुक पेज का डिजाइन बहुत साधारण है। इस पेज पर 3500 फॉलोअर्स हैं। ये सभी फॉलोअर्स देश के अलग-अलग हिस्सों से हैं जिनमें से ज्यादातर की संख्या हिंदी भाषी राज्यों से है। 'राष्ट्रवाद' के नाम से संचालित हो रहे इस फेसबुक पेज पर हर दिन लगभग 25-30 पोस्ट इस पेज की वॉल पर फॉलोअर्स द्वारा पोस्ट की जाती हैं। पोस्ट डेटा की समीक्षा के आधार शोधार्थी ने पाया कि चयनित फेसबुक वॉल पर हर दिन औसतन 30 पोस्ट होती हैं। जिनमें से 20 प्रतिशत वीडियो, 10 प्रतिशत फोटो, 60 प्रतिशत संदेश के साथ फोटो तथा 10 प्रतिशत सिर्फ संदेश होते हैं। वॉल पर दिखाई देने वाली सभी फेसबुक पोस्ट में औसतन 30 प्रतिशत पोस्ट किसी और की फेसबुक वॉल से शेयर की गई हैं तथा 70 प्रतिशत पोस्ट ग्रुप एडमिन तथा सदस्यों द्वारा खुद लिखी गई हैं। शोधार्थी ने यह भी देखा कि इस पेज की वॉल पर जो भी पोस्ट किया गया उन सभी संदेशों में से 95 प्रतिशत संदेश हिंदी भाषा के थे। 5 प्रतिशत संदेश अंग्रेजी भाषा के थे जो किसी तस्वीर के साथ या अन्य किसी की फेसबुक वॉल से पोस्ट किए गए थे। शोधार्थी ने इस पेज पर 20 अप्रैल से 20 मई तक पोस्ट किए गए संदेशों का अवलोकन के आधार पर परीक्षण किया। जिसके तहत शोधार्थी ने सभी

पोस्ट के संदेशों की प्रकृति को जानने के लिए कुछ कोड बनाए जो इस प्रकार हैं- देश भक्ति, सांप्रदायिक, राजनीतिक, धार्मिक, समाचार, सामाजिक। इन कोड के आधार पर सभी संदेशों को बांटा गया तथा हर कोड के अनुसार संदेशों का संकलन किया।

देशभक्ति में उन पोस्ट को रखा गया जो कि राष्ट्रचिंतन की बात करती हैं, जैसे बालाकोट एयर स्ट्राइक से भारत की बदलती स्थिति, पड़ोसी देशों के हालात, जनता से अपील मजबूत सरकार चुनें, वोट जरूर डालें, अफवाओं से बचें, देश सेवा के लिए आगे बढ़ें, सेना का प्रोत्साहन, मान-सम्मान, खेल की दुनिया में भारत की उपलब्धि, वैश्विक मंच पर भारतीयता का मान आदि।

सांप्रदायिक पोस्ट से तात्पर्य किसी सम्प्रदाय विशेष की आलोचना या सराहना से है। किसी सम्प्रदाय के पक्ष में लिखी गई पोस्ट के साथ-साथ सम्प्रदाय की आलोचना करती हों।

राजनीतिक पोस्ट के रूप में उन पोस्ट को अध्ययन के लिए शामिल किया गया है जो किसी राजनीतिक पार्टी या उसके प्रतिनिधियों पर बात करती हैं।

धार्मिक पोस्ट में विभिन्न धर्मों के धार्मिक आयोजनों और भक्ति की बात होती है। विभिन्न मीडिया समूहों द्वारा प्रसारित समाचारों के वीडियो या संदेश यदि चयनित फेसबुक पेज की वॉल पर हैं तो उन्हें समाचार कोड के अंतर्गत रखा गया है।

सामाजिक पोस्ट से तात्पर्य उन पोस्ट से है जो समाज में हो रही घटनाओं पर आधारित हैं तथा अन्य निर्धारित कोड से भिन्न हैं, जैसे सामाजिक मूल्यों पर आधारित पोस्ट, रेप की घटनाएं, माता- पिता की सेवा व अन्य सामाजिक मुद्दों तथा विषयों पर आधारित।

पहला कोडः देशभक्ति

चयनित फेसबुक पेज पर देशभक्ति से सम्बन्धित 45 प्रतिशत पोस्ट देखने को मिली हैं। सभी विडियो किसी और की वॉल से शेयर किए गए थे। कुछ फोटोग्राफ भी शेयर किए गए थे लेकिन इस पेज पर दिए गए लिखित संदेश पोस्ट करने वाले व्यक्ति के मौलिक संदेश थे। जिसमें कई समसायिक विषयों पर चिंतन के साथ- साथ राष्ट्र के चिंतन की बात थी। जो देश सुधार और देश को सामर्थ्यवान बनाने के लिए युवाओं का आह्वान करते हैं। कई पोस्ट नागरिकों के दायित्वों की याद दिलाती हैं। पुरानी ऐतिहासिक तस्वीरों को संदेश के साथ शेयर किया गया है जिनसे भारत के स्वर्णिम इतिहास को याद रखने की बात कही गई है।

दूसरा कोडः साम्प्रदायिक

चयनित फेसबुक पेज पर साम्प्रदायिक विषय से सम्बन्धित 3 प्रतिशत पोस्ट दिखायी पड़ती हैं। ये सभी पोस्ट किसी दूसरे व्यक्ति की फेसबुक वॉल से शेयर की गई हैं। कई पोस्ट चयनित फेसबुक पेज के एडमिन द्वारा छिपाई (Hide) गई हैं।

तीसरा कोडः राजनीतिक

चयनित फेसबुक पेज पर राजनीतिक संदेशों से सम्बन्धित 30 प्रतिशत पोस्ट हैं जो कि किसी राजनीति पार्टी एवं व्यक्ति के पक्ष अथवा विपक्ष में अपना मत रखती हैं। साथ ही समसामयिक राजनीतिक घटनाओं पर भी कटाक्ष करती हैं। इन पोस्ट में तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं की आलोचना तथा समालोचना दोनों स्पष्ट नज़र आते हैं। वीडियों, फोटोग्राफ के साथ मीम भी पोस्ट किए गए। पोस्ट किए गए ज्यादातर मीम अन्य फेसबुक पेज से शेयर किए दिखाई पड़ते हैं।

चौथा कोडः धार्मिक

चयनित फेसबुक पेज पर धार्मिक संदेशों से सम्बन्धित 5 प्रतिशत पोस्ट हैं जो किसी धार्मिक आयोजन या अवसर से सम्बन्धित हैं। यह पोस्ट किसी धर्म की आलोचना या समालोचना नहीं करती बल्कि आध्यात्मिक दिशा की पहल करने के लिए प्रेरित करती हुई दिखाई पड़ती हैं। नदी, पर्वतमाला, वृक्षों की तस्वीर भी दिखाई पड़ती हैं।

पांचवा कोड- समाचार

अध्ययन के लिए जिस फेसबुक पेज को चयनित किया गया है उस पर समाचार से सम्बन्धित 10 प्रतिशत पोस्ट प्राप्त हुई हैं। ये वे पोस्ट हैं जो किसी अखबार या विशेषकर टीवी चैनलों की ख़बरें हैं जिन्हें किसी ग्रुप के सदस्यों द्वारा ग्रुप पर पोस्ट किया गया है। ख़बरों से सम्बन्धित कुछ वीडियो भी किसी दूसरे यूजर की वॉल से शेयर किए गए हैं। साथ ही वेब पोर्टल की ख़बरों को भी शेयर किया गया है। इनमें से ज्यादातर ख़बरों के लिंक के साथ तस्वीरें भी सम्मिलित हैं। समाचार सम्बन्धित पोस्ट मुख्यतः समसामयिक राजनीतिक मुद्दों सरकारी कार्यप्रणाली को लेकर हैं।

छठा कोड- सामाजिक

चयनित फेसबुक पेज पर 7 प्रतिशत पोस्ट सामाजिक विषयों पर आधारित थीं। इस प्रकार की पोस्ट सामाजिक

मुद्दों में महिलाओं की समाज में स्थिति, बलात्कार की घटनाओं की निंदा, बुजुर्गों की सामाजिक स्थिति, जातीय भेदभाव की आलोचना, बच्चों की स्कूली शिक्षा, गरीबों को भोजन की उपलब्धता जैसे विषयों पर आधारित हैं।

निष्कर्ष :- वर्तमान दौर में न्यू मीडिया के प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि हर प्रसिद्ध व्यक्ति, संगठन तथा विचारधारा आपको न्यू मीडिया के प्लेटफॉर्म पर दिखाई देती है। प्रस्तुत शोध भी इसी दिशा में किया गया एक महत्वपूर्ण कार्य है। प्रस्तुत शोध में चयनित फेसबुक पेज के परीक्षण के बाद शोधार्थी इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि न्यू मीडिया ने समाज में अपनी जगह बना ली है। न्यू मीडिया इतना प्रभावशाली है कि किसी विषय या विचारधारा को समाज तक पहुंचाकर उसे प्रभावित कर सकता है। यहां प्रभावित से तात्पर्य फेसबुक समूह के सदस्यों की मानसिकता या व्यवहार का पूर्णतया बदल जाना नहीं है । अपितु प्रभावित से तात्पर्य किसी विषय को लेकर लोगों का ध्यान आकर्षित करना तथा उस विषय पर चर्चा करना है।

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने पाया कि चयनित फेसबुक समूह में राष्ट्रवाद के चिंतन को केन्द्र में रखकर सभी चर्चाएं की गई हैं। शोधार्थी ने पेज वीडियो तथा पोस्ट किए गए डेटा पर काम किया । साथ ही जो भी संदेश चयनित फेसबुक पेज के माध्यम से संप्रेषित किए गए उन सभी संदेशों की मुख्य आधार पर कोडिंग की गई। 1- देशभक्ति 2- साम्प्रदायिक 3- राजनीतिक 4- धार्मिक 5- समाचार 6- सामाजिक ।

जैसा कि विश्लेषण में स्पष्ट किया गया है कि इन मुख्य 6 कोड के आधार पर की गयी कोडिंग के अन्तर्गत आने वाले संदेशों की प्रदृति क्या है। शोधार्थी ने अवलोकन पद्धति के आधार पर यह पाया है कि चयनित फेसबुक समूह पर पोस्ट किए गए संदेश तथा वीडियो का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र चिंतन है। देश भक्ति से सम्बन्धित सभी फेसबुक पोस्ट तथा वीडियो यह संदेश देने का प्रयास करती हैं हर भारतीय को राष्ट्र हित में चिंतन करना चाहिए तथा राष्ट्र हित के लिए कार्य करना चाहिए। सांप्रदायिक पोस्ट तथा वीडियो बहुत कम शेयर किए गए हैं किंतु हर पोस्ट तथा वीडियो पर शेयर करने वाले व्यक्ति ने साम्प्रदायिक उन्माद की आलोचना करते हुए राष्ट्र हित में काम करने का संदेश दिया है। राजनीतिक पोस्ट तथा वीडियो में भी राष्ट्र चिंतन दिखाई देता है। शेयर करने वाले व्यक्ति ने पोस्ट तथा वीडियो से पहले भारत की वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर अपने विचार रखे हैं। साथ ही बेहतर राजनीतिक स्थिति किस प्रकार देश को आगे ले जाएगी इस पर भी अपना चिंतन किया है। धार्मिक पोस्ट तथा वीडियो किसी एक धर्म के खिलाफ नहीं दिखाई देते जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि चयनित फेसबुक पेज धार्मिक सौहार्द की बात करता है। शोधार्थी ने यह भी पाया है कि धार्मिक उन्माद फैलाने वाली पोस्ट या वीडियो चयनित फेसबुक समूह में शेयर नहीं किए गए हैं और यदि फेसबुक समूह के किसी सदस्य ने ऐसी कोई पोस्ट शेयर की भी है तो समूह के संचालक (ग्रुप एडमिन) ने ऐसी पोस्ट को Hide किया है। समाचार सम्बन्धी वही पोस्ट या वीडियो चयनित फेसबुक पेज पर दिखाई देती है जिनमें देश के भविष्य का चिंतन है। अध्ययन के लिए चयनित फेसबुक पेज पर 20 अप्रैल 2019 से 20 मई 2019 तक हुई पोस्ट की समीक्षा की गयी है। लोकसभा चुनाव के दौरान की समयाविधि होने के कारण यह महत्वपूर्ण समय है। अतः ऐसे समाचार या समाचार के वीडियो शेयर किए गए जो चुनाव के दौरान किसी एक पार्टी या व्यक्ति का साथ न देते हों, वे वीडियो और पोस्ट जो देश की चुनावी प्रकिया में सामाजिक विषमताओं को आधार बनाने की प्रकिया की आलोचना करते हों, जैसे धर्म, जाति, क्षेत्रवाद आदि। सामाजिक विषय सम्बन्धी पोस्ट तथा वीडियो में भी राष्ट्र चिन्तन दिखायी देता है। जैसे बुजुर्गों के प्रति अनदेखी, रिश्तों में मतभेद, महिलाओं के साथ पक्षपात, बलात्कार की घटनाएं, चोरी, दुर्घटना आदि पर जो चिंतन दिखता है उसका भी आधार देशहित ही है। कई पोस्ट तथा वीडियो पर शेयर करने वालों ने देश की बदलती सामाजिक स्थिति पर अपने विचार रखते हुए इस बात पर चिंता व्यक्त की है कि देश की सामाजिक दशा किस दिशा में जा रही है और आने वाले समय में देश पर इसका क्या प्रभाव दिखायी देगा।

प्रस्तुत शोध के माध्यम से शोधार्थी इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि न्यू मीडिया के माध्यम से राष्ट्रवाद के साथ-साथ कई ऐसे अहम मुद्दे हैं जिन पर लोगों का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। समूह के सदस्यों के बीच आपसी संवाद से कई मुद्दे अतिशय महत्वपूर्ण हो जाते हैं। राष्टहित या राष्ट्रवाद के विषय में चयनित फेसबुक समूह के सदस्यों के मध्य संवाद ने दूसरे समूह के सदस्यों का भी ध्यान आकर्षित किया है। ऐसे सदस्यों ने पोस्ट पर

कमेंट कर के भी चयनित समूह से जुड़ने में सहमति जताई है। शोधार्थी ने पाया कि चयनित फेसबुक पेज के माध्यम से ग्रुप एडमिन, ग्रुप से जुड़े सदस्य तथा ग्रुप पर सम्प्रेषित पोस्ट, फोटो या वीडियो को पंसद (लाइक) अथवा टिप्पणी (कमेंट) करने वाले लोगों ने अपने-अपने तरीके से राष्ट्रहित के चिंतन की बात रखी है। चयनित फेसबुक पेज की सभी पोस्ट या वीडियो की समीक्षा करना शोधार्थी के लिए संभव नहीं था और ना ही सभी 3500 सदस्यों से संवाद स्थापित किया जा सकता था। अतः अवलोकन के आधार पर 20 अप्रैल से 20 मई तक की सभी पोस्ट, फोटो, वीडियो की समीक्षा की गई है। शोध के दौरान यह भी देखने में आया है कि वे पोस्ट या वीडियो ज्यादा लाइक अथवा शेयर किए गए हैं जिनमें राष्ट्र संरक्षण या राष्ट्र हित अथवा राष्ट्रवाद की बात की गयी है। इन पोस्ट पर ऐसे कमेंट भी देखे गए जो नये राष्ट्र निर्माण की संकल्पना की बात करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रवाद की अवधारणा पर चर्चा करने वाले फेसबुक पेज या न्यू मीडिया के अन्य माध्यम भले ही राष्ट्रवाद की नयी अवधारणाओं को एक निश्चित रूप न दे पाए हों किंतु ये इस विषय पर चर्चा का नया माहौल बनाने में सफल हुए हैं। फेसबुक समूह के माध्यम से बनाया गया यह एक नए राष्ट्रवाद का द्योतक है।

सन्दर्भ

1. https://www.jansamachar.com/article
2. वही
3. शर्मा शिवदत्त, *'हिंदी काव्य में राष्ट्रीयता की भावना'*, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, 2015, पृ. 47-48
4. Kohn, H. *'Nationalism Its Meaning and History'*, New Jersey : D. Van Nostrand Company, INC, 1955, pp.-9-10
5. Misra, S. (2018). *'Egyankosh'*, Retrieved from http:// www.egyankosh.ac.in: http://egyankosh.ac.in// handle/123456789/44297
6. वही
7. पाठक सुनील कुमार, *'छवि और छाप'*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 8
8. कुमार कुलदीप, *'गांधी, टैगोर और राष्ट्रवाद'*, आउटलुक, 11 मार्च 2019 Retribed from https/ www.outlookhindi.com/story/1931
9. मधोक बलराज, *'इंडियन नेशनलिज्म'*, भारतीय साहित्य सदन, नई दिल्ली, 1969, पृ. 15-25
10. Acharya, D. S. *'Nation, Nationalism and Social Structure'*, D. K. Print World Ltd, New Delhi, 2005, pp. 10-30
11. हरिहर नाथ त्रिपाठी, *'भारतीय राष्ट्र की पृष्ठभूमि सत्य और तथ्य'*, दिल्ली, 1997
12. BBC, T. (2018, November 12). BBC News. Retrieved from www.bbc.com: https://www.bbc.com/hindi/ indiam`46170333

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी–जून 2019
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

झारखण्ड की भूमि व्यवस्था : छोटानागपुर के विशेष संदर्भ में

❑ योगेश कुमार

झारखण्ड क्षेत्र में कोलारियन आदिवासियों के आगमन के बाद कालक्रम में उनकी सभ्यता संस्कृति का विकास हुआ। इसके संचालन के लिए पराम्परागत नियम बने ताकि एक समतामूलक तथा सौहार्दपूर्ण जीवन शैली की रचना हो सके। जल, जंगल और जमीन पर आदिवासियों का अधिकार रहा है। भूमि व्यवस्था में अंग्रेजी शासन काल में परिवर्तन करने का प्रयास किया गया परन्तु उन्हें विद्रोह का सामना करना पड़ा। आदिवासी समुदाय की भूमि की रक्षा हो सके इसलिए छोटा नागपुर में 'छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम' बनाया गया। विलकिन्सन रूल को कोल्हान क्षेत्र में लागू किया गया, अलग–अलग प्रावधान किया गया ताकि आदिवासी भूमि की रक्षा की जा सके। विकास के केन्द्र में हमेशा आदिवासी आ जाते हैं और उन्हें विकास की कीमत चुकानी पड़ती है। जंगल और जमीन से बेदखल होना पड़ता है। आज आदिवासी अस्मिता पर प्रश्नचिन्ह है। आज भी आदिवासी क्षेत्र संघर्ष एवं द्वंद से उद्देलित हैं जैसा कि यह ब्रिटिश काल में था। आज का आदिवासी समाज अपने भविष्य और अस्तिमता को लेकर चिंतित है। प्रस्तुत लेख इसी स्थिति को उजागर करने का एक प्रयास है।

जंगल की जमीन पर आदिवासियों के अधिकार का मामला बहुत अधिक विवादित रहा है। जंगल संसाधनों से भरे हैं। इसलिए विकास के नाम पर होने वाली हर गतिविधि के केन्द्र में आदिवासी समुदाय आ जाता है। विशेष रूप से उत्तर उदारीकरण के दौर में आदिवासियों की जमीन पर अधिकार एक प्रमुख विद्रोह का कारण बन कर उभर आया है। जल, जंगल, जमीन की रक्षा के लिए आदिवासियों ने विद्रोह किया। जमीन पर दखलअंदाजी उन्हें कभी भी रास नहीं आयी। औपविनेशिक शासन से पहले शासक जंगलों में रहने वाले या उस पर निर्भर रहने वाले लोगों के जीवन में बहुत ज्यादा दखल नहीं देते थे। अंग्रेजों के आने के बाद इस स्थिति में बदलाव आया। उन्होनें अपने साम्राज्यवादी हितों को पूरा करने के लिए जंगलों का दोहन शुरू कर दिया।[1]

विगत कुछ दशकों से आदिवासी अस्मिता के प्रश्न भारत एवं विश्व के गवेषकों के विमर्श के केन्द्र में है। इस सक्रियता के कारक के रूप में सभी लोगों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। दुनिया भर के आदिवासी बुद्धिजीवी निरंतर यह आवाज उठा रहे हैं कि उनकी नैतिक एवं भौतिक विशिष्टता को न केवल पहचान मिले बल्कि उनकी सकारात्मक भूमिका को इतिहास में उचित स्थान दिया जाए।[2]

भारत में कुल 541 अनुसूचित जनजातियाँ निवास करती हैं जो जनसंख्या के अनुसार 8 प्रतिशत हैं। झारखण्ड में निवास करने वाली 32 जनजातियाँ झारखण्ड की धरोहर हैं। आदिवासी समुदाय अलग–अलग रीति रिवाजों के साथ अपनी ऐतिहासिक धरोहरों को समेटे हुए हैं। भौगोलिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से झारखण्ड एक अलग क्षेत्र रहा है। एस.सी.राय के अनुसार अपने प्राकृतिक स्वरूप में अपने भू–वैज्ञानिक बनावट और शैल समूह में अपनी वनस्पति और उनकी खनिज सम्पदा में, अपनी नृजातीय विशेषताओं में, अपने सामाजिक और राजनीतिक इतिहास में (बिहार और उड़ीसा) प्रांत के शेष हिस्से से झारखण्ड बिल्कुल अलग है।[3]

झारखण्ड के ऐतिहासिक स्त्रोतों को देखें तो हमें ज्ञात होता है कि झारखण्ड का इतिहास से संबंधित ग्रंथों का अभाव रहा है, परन्तु इस क्षेत्र की महत्ता हर काल में बनी रही। इतिहासकारों ने इसे अलग–अलग रूप में इस क्षेत्र के नाम को व्यक्त किया। झारखण्ड क्षेत्र के लिए अर्द्धसभ्य, जंगली, पौंड्रिक, मुंडेय, शबर, कोल–किरात प्रदेश के रूप में इसकी व्याख्या की गयी है। ऋग्वेद में इसे 'अनासः शिश्नदेवः असुरः प्रदेश' नामों का उल्लेख देखने को मिलता है।[4]

झारखण्ड की अधिकांश जनसंख्या प्रारंभ से ही स्थायी रही है। यहाँ के मुण्डा भाषी लोगों एवं अन्य जनजातियों में बहुत समानता देखने को मिलती है। यहाँ की जनजातियाँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों से स्थानांतरित होते रहे और झारखण्ड में स्थायी रूप से बस गए। मुंडाओ ने जंगलों

❑ राँची (झारखण्ड)

को साफ कर गाँव को विकसित किया। मुण्डाओं का पलायन रोहतासगढ़ से छोटानागपुर के क्षेत्र में हुआ और फिर ये इस क्षेत्र के स्थायी निवासी बन गये।

एस.सी. राय के अनुसार ये भारत के प्राचीनतम निवासी माने गये हैं। इनके अनुसार मुण्डाओं का मूल स्थान अरावली पहाड़ियों का क्षेत्र, बाद में ये विंध्य एवं कैमूर की पहाड़ियों तक फैले और सरगुजा, वहां से छोटानागपुर के क्षेत्र में फैले, इस प्रकार का उल्लेख उन्होंने किया।[6]

मुंडाओं ने अपने गाँवों को विकसित किया, जंगलों को काटकर इन्होंने हातू का निर्माण किया। मुंडाओं के परिवार द्वारा तैयार क्षेत्र, मुंडा समुदाय द्वारा साफ किये गये जंगल को खूँट भी कहा जाता है।[7] प्रत्येक परिवार जो अपने ज्येष्ठतम सदस्य के आदेश के अनुसार कार्य करता, खूँट कहलाता था तथा उस परिवार के मुखिया सहित परिवार के सभी पुरूष सदस्य 'खूँटकीदार' कहलाते थे तथा वे गाँव की सभी चल-अचल सम्पत्ति के प्राकृतिक स्वामी थे।

एस.सी. रॉय के अनुसार, मुंडाओं की संरचना अलग-अलग रही है।

क. खूंट कट्टीदार या हातू - होरोको

ख. ऐता - हातुरेको

ग. प्रजा होरोको

को उन्होंने उल्लेखित किया है। एस.सी. राय के अनुसार जिन लोगों की खूंटकट्टीदारी नहीं थे वे लोग भी गांव में बसाये जाने लगे। बाहर से बुलाकर गांव में बसाये जाने वाले आपसी रिश्तेदार होते थे तथा ऐसे मुण्डा जो निःसंतान होते थे अपनी सेवा देने के लिए गाँवों में बसाये जाते थे। गाँव में बसाने वाले ऐसा मुण्ड ऐता-हातुरे को अर्थात्, 'दूसरे गांव का वासी' कहा जाता था मुण्डाओं के गांव जिस प्रकार विकसित होते गये आर्थिक क्रियाकलापों के लिए कुछ लोगों की आवश्यकता हुई इस कारण उन्होंने अलग-अलग लोगों को बसाया।

एस.सी. राय के अनुसार लोहार, ग्वाला, कपड़ा बुनने वाले ताती, यद्यपि मुण्डा ही होते थे किन्तु उन्हें समाज में निचला स्थान प्राप्त था। इन्हें आजीविका हेतु गांव की जमीन दी जाती थी किन्तु यह जमीन मात्र सेवाओं के बदले में आजीविका हेतु दी जाती थी। इस जमीन को यह धारक न ही बेच सकता था और न ही किसी अन्य को हस्तान्तरित कर सकता था। कालान्तर में ये 'प्रजा होरोको' कहलाए।

इस प्रकार एस.सी. राय के अनुसार मुंडा गांव की जनसंख्या की संरचना में

क. खूंटकट्टीदार - हातु-होरोके

ख. ऐता - आतुरेंको (रिश्तेदार आदि)

ग. प्रजा होरोको (लोहार, ग्वाला, तोती आदि) होते थे।[8]

मुंडाओ की खूंटकट्टी व्यवस्था की तरह ही, उराँव की भी भूमि व्यवस्था है जिसे मुईहरी व्यवस्था कहते हैं।

भुईहर शब्द हिन्दी 'कुल' गोत्र शब्द का तद्भव शब्द है। जिसे उराँवों ने बिहार में प्रवेश करते समय जंगलों को साफ कर गाँवों का निर्माण किया था, मुंडाओं ने अपने को खूंटकट्टीदार कहलाना पसंद किया वहीं उराँवो ने खूंटकट्टीदार की तरह 'भुईहर' शब्द को अधिग्रत किया। उराँव समाज में भुईहरों का विशेष स्थान और सम्मान होता है, भुईहर उस वंश को कहा जाता है जिसने मूल रूप से जंगलों को काटकर रहने एवं कृषि योग्य भूमि बनाई थी।[9]

मुंडाओं की एक मजबूत सामुदायिक संरचना है और उनकी भी अपनी परम्परागत व्यवस्था है, जिसके अंतर्गत वह अपने समुदाय को अनुशासित करते हैं। मुण्डाओं के लिए उनके हातु और कीली पंचायतें बहुत ही पवित्र संस्था थी। मुण्डाओं में यह प्रसिद्ध है ''नीचे पंचायत और ऊपर सिंगबोंग'' सिंगबोंग मुण्डाओं का सर्वोच्च देवता है।[10] मुण्डा समाज में सम्पत्ति विभाजन के संदर्भ में कुछ उल्लेखनीय तथ्य थे :- मुंडा परिवार में महिलाओं को संपत्ति विभाजन विशेषकर भूमि पर कोई अधिकार नहीं दिया जाता है। पिता अपनी पुत्री को अपने जीवनकाल में कुछ चल संपत्ति या धन उपहार के रूप में दे सकता है लेकिन भूमि नहीं दे सकता है। पिता अपनी संपत्ति का विभाजन करता है तो अविवाहित लड़कियों के लिए कुछ भूमि को निर्धारित कर देता है, जो उनके भरण पोषण के लिए आवश्यक हैं परन्तु विवाह के बाद वह सम्पत्ति उसकी नहीं होती है। मुंडा परिवार की अविवाहित लड़कियाँ विभाजन के बाद भी अपने पिता के संरक्षण में रहती हैं।

भरण पोषण के लिए उन्हें जो भूमि दी जाती है वह विवाहकाल तक उनकी कही जाती है। उस पर खेती जो उसका अभिभावक होता है, करता है, वधू को जो मूल्य प्राप्त होता है वह अभिभावक को प्राप्त हो जाती है, जो उसके विवाह में खर्च की जाती है। विवाह के बाद बहन को दी गई भूमि जो 'खोरपोस' भूमि कहलाती हैं वह भाईयों के बीच पुनः विभाजित कर दी जाती है। एक मुण्डा

परिवार का पिता जब अन्य किसी दूसरी महिला से विवाह करता था, तब वह अपनी पैतृक सम्पत्ति जो उसने अपने पहले पत्नी के पुत्रों एवं पुत्रियों में विभाजित कर दिया था, वह अब दूसरी पत्नी से उत्पन्न बच्चों में पुनः विभाजित नहीं कर सकता था। पिता के हिस्से में जो जमीन भरण-पोषण के लिए थी, वहीं जमीन को वह अपने दूसरी पत्नी के बच्चों में बांट सकता था। उसे अतिरिक्त जमीन को बांटने का हक नहीं या जो वह पहले बाँट चुका था।[11]

उरांव समाज की प्रारंभिक विकास की अवस्था में गाँव के सारे दायित्वों को पाहन उठाता था। वह धर्म के साथ-साथ न्याय व्यवस्था का भी प्रधान होता था। उरांव समाज में ''भुईहर'' का विशेष स्थान और सम्मान होता है, क्योंकि यह उनकी प्राचीन पराम्परागत व्यवस्था से जुड़ा होता है। भुईहर उस वंश से संबंध रखता है जिसने उरांवों को आगमन के बाद मूल जंगलों को काटकर निवास स्थल का निर्माण किया और कृषि के लिए भूमि बनाई ताकि कृषि कार्य किया जा सके। इस प्रकार वह सारी भूमि जिसे किसी परिवार या खूंट के लोगों ने साफ किया था। 'भुईहरी भूमि' कहलाती है। उरांव में यह मान्यता है कि जंगल को उन्होंने साफ किया, उसके अन्दर रहने वाले नादा जंगल के काटे जाने पर क्रोधित होते हैं। अतः उन्हें प्रसन्न करना आवश्यक हो जाता है। इसे क्षेत्रीय नाद कहते हैं। यह नाद उस समूह के लोगों का खूंट नाद कहलाता है।

खूंट नाद उरांव के लिए बहुत पवित्र होता है, क्योंकि यह उनके पूर्वजों की श्रेणी में आता है। मुंडा परिवार में भी सम्पत्ति का विभाजन होता था। थोड़ा अंतर यह है कि मृतक उरांव के पुत्रों के बीच कुछ को संपत्ति अधिक दी जाती है और कुछ को कम, इसका आधार यह है कि उरांव जब कई स्त्रियों को पत्नी के रूप में रखता था, तो प्रथम पत्नी के पुत्र जो कई गांव में निवास करते थे उनको दूसरी पत्नी के पुत्रों से ज्यादा हिस्सा दिया जाता था। उरांव परिवार में यह व्यवस्था थी कि पिता की मृत्यु तक पुत्र विभाजन के बारे में मांग नहीं करता था लेकिन यह पिता पर निर्भर करता था कि वह अपने जीवन काल में अपनी इच्छा से सम्पत्ति का विभाजन कर सकता था।[12]

एन. कुमार ने रांची गजेटियर में उल्लेख किया है कि मुंडा अथवा उरांव जाति में युद्ध होने का कोई पारम्परिक प्रमाण नहीं मिलता है, लेकिन मुंडाओं ने उरांव को कृषि हेतु अपनी खूंट कही जमीन दी तथा उन्हें अपने बीच रहने के लिए स्थान दिया था।[13]

छोटानागपुर का क्षेत्र जनजातियों का एक समृद्ध क्षेत्र रहा हैं। छोटानागपुर के क्षेत्र में नये लोगों का आगमन पहले से ही जारी था। आंद्रे विन्क और सी.ए. बेली जैसे इतिहासकारों का मानना है कि मुगल शासन के शासकों ने उस व्यवस्था को मजबूत किया। मुजफ्फर आलम की पुस्तक 'दि क्राइसिस ऑफ एम्पायर इन मुगल नार्थ इण्डिया : अवध एण्ड दि पंजाब' (1707-1748) में भी उन्होंने उन ताकतों का वर्णन किया है जिसके अंतर्गत प्रशासनिक व्यवस्था ने नये रोष को जन्म दिया और बाद में विद्रोह हुए।[14]

1761 तक मुगल साम्राज्य नाममात्र के लिए साम्राज्य रह गया था। उसके कमजोर होने के फल स्वरूप स्थानीय राजाओं ने स्वाधीनता के ढांचे को प्रस्तुत किया। मुगल शासक शाहआलम से 1765 ई. में दीवानी के हस्तांतरण स्थायी बन्दोबस्ती 1793 ई. तक के समय में कंपनी की व्यवसायिक वृद्धि का पता चलता है। कम्पनी को तीन प्रांत बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी के बदले में बादशाह शाह आलम को 26 लाख रूपये प्रतिवर्ष देने थे।[15]

1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिलने के बाद अधिक से अधिक मालगुजारी वसूल करना भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रशासन की प्रमुख चिंता रही थी। खेती अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार थी। वह आय का प्रमुख स्त्रोत थी और इस कारण वसूली बढ़ाने के लिए मालगुजारी में नये-नये ढंग से प्रयोग किये गये।[16] 1765 में कंपनी ने दीवानी अधिकार अपने हाथों में लिया तब से वह राजस्व व्यवस्था को बढ़ाना चाहती थी। कंपनी इस मामले में लगातार प्रयास कर रही। इसमें सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन वार्षिक नीलामी के आधार पर बंदोबस्ती की गयी, जिसके अंतर्गत राजस्व की वसूली अधिक हो। 1765-66 और 1768-69 के बीच भू राजस्व की वसूली में 53.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई।[17]

अफ्रीका के एक भिन्न औपनिवेशिक संदर्भ में इसी तरह के साम्राज्य पर विचार करते हुए फॉरेन फील्ड्स सस्ते में सत्ता की जरूरत के रूप में इसकी व्याख्या करते हैं। इसका सर्वाधिक प्रत्यक्ष महत्वपूर्ण लाभ यह हुआ कि स्थानीय धर्मतंत्र के सहयोजन के द्वारा और बिना किन्हीं अनुवर्ती कठिनाईयों अथवा प्रशासनिक खर्च के एक विशाल क्षेत्र का राजनीतिक संगठन हो गया। अतः ब्रिटिश औपनिवेशिकों का विस्तार एक लाभप्रद सौदे के रूप में

सामने आया।[18]

बंगाल के नवनियुक्त गवर्नर वॉरेन हेस्टिंग्ज की इच्छा थी कि मालगुजारी प्रशासन को भारतीयों से एकदम मुक्त कराकर अंग्रेजों को प्रांत के संसाधनों का एकमात्र नियंत्रक बना दिया जाए। अंग्रेजी प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत कंपनी चाहती थी कि सारे अधिकार उनके अधिकार क्षेत्र में हों, इस कारण 1769-70 के बंगाल के अकाल के बाद एक नयी व्यवस्था का प्रारंभ हुआ। 1772 ई. में 'फार्मिंग' के नाम पर एक नयी व्यवस्था को लागू किया गया। जिलों के यूरोपीय क्लेक्टरों को अब मालगुजारी की वसूली का कार्यभार दे दिया गया। प्रशासन ने यह बड़ी ही चालाकी से वसूली का अधिकार सबसे बड़ी बोली लगाने वालों को दिया जाने लगा। बंदोवस्तों में राजस्व के अधिक प्रयोगों ने अंग्रेजी व्यवस्था की मुश्किलों को बढ़ाया। बंदोबस्ती व्यवस्था ने किसानों को तोड़कर रख दिया। उत्पादन की चिंता के बिना अधिक वसूली की कोशिश होती थी।[19]

लॉर्ड-कार्नवालिस जिसने 1786 ई. में कम्पनी में अपना योगदान दिया। वह दीवानी क्षेत्रों से अधिक लगान वसूल करने के लिए सर्तक था। पर्याप्त जाँच पड़ताल के बाद डिसेनियल -'सेंटलमेंट एवं परमानेंन्ट सेटलमेंट' तैयार हुआ तथा कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने इसे स्वीकृति प्रदान की। परिणामस्वरूप 1793 ई. में लार्ड कार्नवालिस ने इस सेटलमेंट को स्थायी घोषित कर दिया और इस प्रकार 1793 ई. के अधिनियम के अनुसार स्थायी बन्दोबस्ती अधिनियम पारित एवं प्रभावी हुआ। 18 सितम्बर 1789 ई. को कम्पनी सरकार ने डिसेनियल सेटलमेंट को बिहार प्रांत के लिए घोषित किया और यह भी कहा गया कि यह अधिनियम छोटानागपुर में प्रभावी नहीं होगा लेकिन स्थायी बन्दोवस्ती को दस वर्षों तक यहाँ प्रभावी होने की बात भी कही गई वस्तुतः कम्पनी अधिकारी भ्रम की स्थिति में थे। यह पूछे जाने पर कि स्थायी बन्दोबस्ती एवं डिसेनियल सेंटलमेंट इस क्षेत्र में लागू हो गया है तो उत्तर होता था बाद में इसे लागू मान लिया जाना चाहिए। वस्तुतः छोटानागपुर की भूमि व्यवस्था शेष बंगाल से पूरी तरह अलग रही थी।

अतः कम्पनी अधिकारियों में पहले संशय की स्थिति बनी हुई थी कि स्थायी बन्दोबस्ती के अंतर्गत छोटानागपुर का राज्य आता है अथवा नहीं। 1799 ई. तक यह स्पष्ट हो गया था कि स्थायी बन्दोवस्ती छोटानागपुर क्षेत्र में प्रभावी है।[20] ईस्ट इण्डिया कंपनी का प्रवेश उड़ीसा के क्षेत्र से हुआ था। परन्तु कंपनी ने पूरे छोटा नागपुर क्षेत्र पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रखा था। वह सारे क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहती थी। छोटानागपुर क्षेत्र के आस-पास के सीमावर्ती क्षेत्रों पर भी कंपनी अपना पूर्ण एकाधिकार चाहती थी। छोटानागपुर क्षेत्र में कंपनी एक ठोस प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत कार्य कर रही थी। वह धीरे-धीरे सभी क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमाती जा रही थी। कंपनी के प्रवेश के समय झरिया, कतरास, रघुनाथपुर, झालदा, इंचागढ़, बलरामपुर, हेसला, बालमुंडी, पंचेत, सुपुर, चतरा तथा बड़ाभूम का क्षेत्र प्रमुख जमीदारियों का क्षेत्र था।

फरर्गुसन ने 1767 में जब सिंहभूम में प्रवेश किय था उस समय मानभूम, बड़ाभम, सुपुर, चतरा, अभियनगर के जमींदार शक्तिशाली थे। कतरस, ईंचागढ़ तथा पंचेत के जमींदारों को राजा कहा जाता था।[21] ईस्ट इण्डिया कंपनी ने सिंहभूम के अधिकांश क्षेत्रों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया, लेकिन सराय केला और खरसाँवा पर उनका सीधा आधिपत्य स्थापित नहीं हो सका। ब्रिटिश भारत की 560 से अधिक देशी रियासतों में बिहार में केवल यहीं दो रियासतें थीं जिनपर अंग्रेजों का सीधा अधिकार संभव नहीं हो सका।[22]

छोटानागपुर क्षेत्र में ईस्ट इण्डिया कंपनी को पदस्थापित होने में सात दशक का लम्बा समय लग गया। छोटानागपुर खास में कंपनी का अधिकार जल्दी हो गया परंतु 45 वर्षों का अधिक समय लगा। कंपनी का 1765-1820 ई. तक संपूर्ण छोटानागपुर पर अधिकार हो गया। ईस्ट इण्डिया कंपनी एक सोची समझी रणनीति के तहत छोटानागपुर क्षेत्र में अपना आधिपत्य जमाने में सफल हुई।[23] छोटानागपुर में ईस्ट इण्डिया कंपनी के आगमन से यहां एक टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई। इस क्षेत्र में असंतोष की व्यवस्था उत्पन्न हो गयी थी। छोटानागपुर का क्षेत्र प्राचीनकाल से ही जनजातियों का क्षेत्र रहा था।

छोटानागपुर प्रदेश में रहने वाली जनजातियों का विकास अलग-अलग चरण में रहा होगा। विकास के साथ-साथ इन्होंने कृषि योग्य भूमि को भी साफ किया और अपना निवास स्थान बनाया। जनजातियों को विश्वास था कि जिन्होंने सबसे पहले जंगलों को काटकर साफ किया वैसी भूमि पर खेती करने और स्वामित्व का अधिकार उन्हीं के वंशजों का था। मूलरूप से भूमि को आबाद करने वाले भुईहर या खूंटकट्टीदार कहे जाते थे। सामंती व्यवस्था की

उत्पत्ति के साथ ही जनजातियों की भू-व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने लगी।[24]

कंपनी के सामने बड़ी समस्या राजस्व की वसूली थी, छोटानागपुर क्षेत्र में जनजातियों की भूमि के जोत अलग-अलग थे, जिससे किसान और कंपनी के अधिकारियों को इसके राजस्व निर्धारण में समस्या आती थी। छोटानागपुरके अलग-अलग क्षेत्रों में जोत के नाम भी अलग-अलग होते थे। पलामू में मुख्यतः जागीर और ईजरा (नीलामी) थी। रांची खास के क्षेत्र में खूंटकट्टी, भुईहरी, पनहई और मांझा जोत के नाम थे जिसके अंतर्गत खूंटकट्टी और भुईहरी का प्रचलन अधिक था पलामू, सिंहभूम और हजारीबाग में जोत या तो जागीर या जागीरकाजी या जागीर इनामी थे। कुछ जागीरदारों को सरकार की सहायता करने के कारण जागीर प्राप्त हुई थी।[25]

जनजातियों में असंतोष के व्यापक कारण थे। प्रशासनिक तौर पर व्यवस्था में परिवर्तन लाया जा रहा था। दीवानी और फौजदारी कानूनों को अत्यधिक कठोर बनाया जा रहा था। अंग्रेजों के आने पर उनका संपर्क एक आक्रामक संस्कृति से हुआ जिन्होंने उनके अधिकार क्षेत्रों में धीरे-धीरे घुसना शुरू किया और उनकी सांस्कृतिक व्यवस्था को नष्ट किया औपनिवेशिक व्यवस्था जनजातियों के लिए एक नई त्रासदी बन कर आयी।[26]

अंग्रेजी शासन व्यवस्था का प्रभाव जनजातियों की सामाजिक व्यवस्था पर पड़ना शुरू हो गया। कंपनी के शासनकाल में आदिवासियों की प्रशासनिक व्यवस्था को नष्ट करने की कोशिश की गयी, जिसके कारण जगह-जगह असंतोष की भावना व्याप्त थी और वह बाद के वर्षों में निकल कर सामने आयी। काल विद्रोह 1832-33 और संताल परगना का संताल विद्रोह कंपनी काल के उत्पीड़न का उदाहरण है जिसके अंतर्गत राजस्व की वसूली जनजाति समुदाय के शोषण का कारण बनी और उसके प्रतिकार स्वरूप विद्रोह के रूप में सामने आया। अंग्रेजी कानून व्यवस्था दमन की नीति पर आधारित थी।[27]

अंग्रेजों ने जनजातियों को संघर्ष के लिए मजबूर कर दिया। सरकार नये-नये एक्ट के माध्यम से जनजातियों पर अपनी पकड़ मजबूत करना चाहती थी। 1857 के बाद के काल को छोटानागपुर के इतिहास का विद्रोह का संक्रमण काल कहा जा सकता है क्योंकि कोल और संचाल विद्रोह ने यहां के इतिहास का एक नया अध्याय प्रारंभ किया।[28]

भूमि व्यवस्था के बिखराव और संस्कृति परिवर्तन की दोहरी चुनौतियों की प्रक्रिया के फलस्वरूप 1775 से 1831-32 तक जनजातियों के संघर्ष की गाथा अतुलनीय रही आदिवासियों की जमीन छीनी जाती रही। 1850 के बाद छोटानागपुर में ईसाई मिशनरियों का प्रभाव बढ़ने लगा था। इस छोटानागपुर क्षेत्र में आदिवासियों द्वारा ईसाई धर्म अपना लेने के कारण भूमि समस्याएं जटिल होती गयीं। कुछ लोगों ने धार्मिक उद्देश्य से ईसाई धर्म को अपनाया था। परन्तु अधिकांश ईसाई धर्म की छत्र-छाया में इस आशा से आये थे कि ईसाई हो जाने के बाद उन्हें उनकी जमीन और अन्य अधिकारों से वंचित नहीं किया जायेगा।[29]

सरदारी लड़ाई भी भूमि के लिए लड़ी गयी जिसे 'मुल्की' लड़ाई भी कहा गया। सरदारी लड़ाई 1859 के लगभग शुरू हुई और 40 वर्ष तक चली। बाद में 'बिरसा आन्दोलन' का यही आधार बना। 1869 में भुंईहरी सेटलमेंट लोगों के असंतोष को दूर नहीं कर सका। साथ ही जमींदारों और रैयतों के बीच आपसी विरोध बढ़ता जा रहा था। कोल विद्रोह के नेताओं की तरह सरदारी आंदोलन के नेताओं ने भी दावा किया कि वे वास्तव में उन लोगों के वंशज थे जिनके साथ सबसे शुरू में भूमि बंदोबस्त की गयी थी। उनका उद्देश्य जमींदारों को निकाल बाहर करना था। बैस बेगारी (जबरन मजदूरी) की प्रथा, रूकमत (विभिन्न प्रकार के बकायों का भुगतान) की वसूली राजस भूमि- राजा की नियत लगान वाली बंदोबस्ती के लिए उपलब्ध भूमि पर कर की गैर कानूनी बढ़ोत्तरी, खूंटकट्टी गांवों में मुंडा भू मालिकों को पद संबंधित कारणों को लेकर सरदारी लड़ाई शुरू की गयी थी।[30]

1890 के बाद सरदारी आन्दोलन का स्वरूप राजनैतिक हो गया, 1890 ई. तक मुंडा मानकियों ने समझ लिया कि मिशन उनकी समस्या का समाधान नहीं कर सकता। अतः उनके बीच मिशन का आकर्षण घट गया। इन आन्दोलनकारी मुंडा मानकियों ने अपने को सरदार के नेता की संज्ञा दी, जंगल और जमीन की लड़ाई ही विद्रोह का करण बनी।[31] 1865 ई. में सरकार ने पहली बार वन कानून बनाया। इससे जनजातियों को जंगल के अधिकार से वंचित होना पड़ा। 1878 के भारतीय वन अधिनियम ने इसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाया और संसाधनों के पारंपरिक व्यवहार में बुनियादी बदलाव लाया। अब लकड़ी एक बेचने व खरीदने वाली वस्तु हो गयी जिसने वन

परिस्थितिकी में परिवर्तन लाया।[32]

भारतीय वन अधिनियम 1865 के अंतर्गत सामुदायिक वन प्रबंधन के स्थान पर राज्य प्रबंध की पहल की बात की, तो राज्य द्वारा वन अधिग्रहण की प्रक्रिया भारतीय वन अधिनियम 1878 के अंतर्गत ठोस रूप में ले सकी।[33] 1857 के बाद भू राजस्व के क्षेत्र में प्रशासन को तत्काल सुधार करना पड़ा। 1876 में छोटानागपुर टेनेसी एक्ट पास किया गया। इस एक्ट के अनुसार रैयती जमीन सहित सभी प्रकार के जोतों का खाता खोलने का निर्णय लिया गया। 1881 में मोनटेग चेम्सफोर्ड कमीशन बनाया गया जिसके अंतर्गत कमीशन में प्रतिवेदन दिया जिसके अंतर्गत देश में स्थित आदिवासी क्षेत्रों के बारे में चर्चा की गयी। 1899 में भारत सरकार अधिनियम बनाया गया और आदिवासी क्षेत्रों को दो भागों में विभाजित किया गया। पिछड़ा और अत्यंत पिछड़ा क्षेत्र।[34]

विरसा आन्दोलन के भूमि संबंधी एवं धार्मिक प्रश्न एक दूसरे के साथ संश्लिष्ट थे। परन्तु उसके साथ ही विदेशी राज को समाप्त करने की आकांक्षा भी थी। उसके समर्थक जमींदारों से मुक्ति पाने की कामना भी उसमें जुड़ी थी। मुंडाओं की संस्थाओं पहड़ा और पंचायत को नष्ट किया जा रहा था जिसके कारण आदिवासियों में असंतोष था इसी विरोध के कारण आदिवासी क्षेत्रों को दो भागो में विभाजित कर दिया गया था।

1901 में निश्चित किया गया कि भूमि सर्वेक्षण तथा भू-बंदी का काम शीघ्रता से पूरा किया जाये जिसे पूरा कर नये प्रावधान में बदल दिया गया। बिरसा आन्दोलन के तुरंत बाद अंग्रेजों के अधिकारियों को यह महसूस हुआ कि असंतुष्ट मुंडाओं के जमीन संबंधी रिकार्डस ऑफ राइट्स शीघ्र तैयार करवाएं जाएं।[35]

1897 में प्रारंभ किया गया सेटलमेंट का कार्य मुंडा क्षेत्र तथा तमाड़, बुंडू, सोनहातू आदि स्थानों में नहीं हो पाया था। बिरसा हुल का प्रभास भी इन्हीं क्षेत्रों में ज्यादा था। अतः नया सर्वे सेटलमेंट इसी क्षेत्र में प्रारंभ किया। भूमि संबंधी सेवाओं और शर्तों को पूरे जिले में लागू कर दिया गया। सर्वे सेटिलमेंट के द्वारा उनके समाधान की दिशा में प्रयास किये गये। सर्वेक्षण का कार्य पूरा होने के बाद 1857 का छोटानागपुर टेंनेट प्रोसीड्योर एक्ट तथा 1897 का कम्यूटेशन एक्ट में सुधार वर्तमान आवश्यकता के अनुसार बंगाल अधिनियम 5 1903 में नये प्रावधान किये गये थे। धारा 3, धारा 41 एवं धारा 10, 12, 13, धारा 27 एवं 28 में अलग-अलग भूमि के अधिकार को उल्लिखित किया गया। बाद में बंगाल अधिनियम को छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम में समाहित कर दिया गया और एक नया अधिनियम प्रभाव में आया, जो 21 दिसम्बर 1908 को गवर्नर जनरल के हस्ताक्षर के उपरांत प्रभावी हुआ।[36]

छोटानागपुर रैयती एक्ट के पारित होने से एक सदी से चला आ रही भूमि विवाद का समापन हो गया। यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। 1908 में दिसम्बर में अधिनियम पूरी तरह से लागू कर दिया गया। इस अधिनियम के द्वारा खूंटकट्टीदार एवं मुंडारी खूंटकट्टीदार दखलदारी को कानूनी मान्यता दी गयी। इस अधिनियम द्वारा ऐसी सारी प्रथाओं को मान्यता दे दी गयी जिनके बारे में आदिवासियों का दावा था कि ये हमारे सामाजिक व्यवस्था की मूल चीजें हैं। आदिवासियों की भूमि सामान्य परिस्थितियों में अहस्तांतरणीय बना दी गयी। उपायुक्त अब आदिवासी भूमि का कानूनी संरक्षक था। विशेष परिस्थितियों में ही वह आदिवासी भूमि के हस्तांतरण का लिखित अनुमति दे सकता था। 1908 में टेनेसी एक्ट में स्थायी रैयतों की परिभाषा शामिल हो गयी और अनेक रैयतों को स्थायी मिल्कियत हासिल हुई।[37]

1908 के अधिनियम में अलग-अलग प्रावधान किये गये। 1908 के उपरांत 1913 में छोटानागपुर लैंड लॉर्ड एण्ड टीनेन्ट प्रोसीड्योर एक्ट पारित किया गया। इस अधिनियम में विशेषकर मुंडाओं को खूंटकट्टीदार भूमि के अधिकार को सुरक्षा हेतु इसका प्रावधान किया गया। 1912 में बंगाल से बिहार अलग हो गया। झारखण्ड के कुछ आदिवासी क्षेत्र (पुरूलिया, मिदिनापुर, बांकुड़ा) बंगाल के क्षेत्र में चले गये।[38]

निष्कर्ष :- छोटानागपुर की भूमि व्यवस्था में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि यहां कि खूंटकट्टीदार और भुईहरी जमीन व्यवस्था, आदिवासियों की परम्परागत व्यवस्था थी। इस व्यवस्था को बाद में परिवर्तित करने का प्रयास किया गया। छोटानागपुर में ईस्ट इण्डिया कंपनी के आगमन के बाद भू-राजस्व व्यवस्था में बदलाव किये गये जिससे कि आदिवासी क्षेत्रों में विद्रोह हुआ पर बाद में आदिवासियों की परम्परागत व्यवस्था को कानूनी मान्यता मिली जिससे कि भूमि संबंधी कानूनों के अंतर्गत उनकी भूमि को संरक्षण प्राप्त हुआ आधिकारिक तौर पर और आदिवासियों की जीत हुई।

सन्दर्भ

1. सेन अशोक कुमार, *'विस्तृत आदिवासी इतिहास की खोज'*, जनमाध्यम, रांची, 2009, पृ. 3-4
2. सुंदर नंदनी, *'मुंडाधुर की तलाश में'*, पैगविन इण्डिया, 2009, पृ. 11-13
3. राय एस.सी., *'मुंडा एण्ड देयर कंट्री'*, कैथोलिक प्रेस रांची, 1995, पृ. 26-28
4. बनर्जी मान गोविंद, *'छोटानागपुर, झारखण्ड की ऐतिहासिक रूप रेखा, आदिकाल की ऐतिहासिक रूपरेखा, ब्रिटिश काल तक'*, एजुकेशन प्रेस रांची, 2005, पृ. 10-11
5. राय एस.सी., पूर्वोक्त, पृ. 30-31
6. वही, पृ. 30-31
7. तलवार भारत वीर, *'झारखण्ड के आदिवासियों के बीच'*, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2008, पृ. 60-61
8. राय एस.सी., पूर्वोक्त, पृ. 71-72
9. वही, प. 71-72
10. तलवार भारत वीर, पूर्वोक्त, पृ. 60-61
11. सहाय राज, *'आदिम मुंडा और उनका प्रदेश'*, आदिवासी वेलफेयर सोसाइटी घोड़वांधा, जमशेदपुर, पृ. 88-99
12. कुमार योगेश, *'आदिवासियों की परम्रागत न्याय व्यवस्था'*, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 92-94
13. कुमार एन, *'बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर'*, रांची, गर्वेमेन्ट ऑफ बिहार, पटना, 1970, पृ. 137-138
14. सुब्रमण्यम लक्ष्मी, *'भारत का इतिहास (1707 से 1857 तक)'*, ओरियंटल ब्लैक स्वॉन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 5-7
15. पावेल बी.एच., *'लैंड सिस्टम ऑफ ब्रिटिश इण्डिया भाग-1'*, क्लैरेडन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1951, पृ. 102-103
16. मार्शल पीटर, 'अर्ली ब्रिटिश इम्पीरियलिज्म इन इण्डिया पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट', 1905, पृ. 20-21
17. सुब्रमण्यम लक्ष्मी, पूर्वोक्त, पृ. 100-101
18. मिल्ड केरेन, *'रेवाईवल एंड रिबेलियन इन कोलोनीयल सेंट्रल अफ्रीका'*, प्रिंसेंटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985, पृ. 20-21
19. मार्शल पी.सी., *'ईस्ट इण्डिया फॉर्चुन, दि ब्रिटिश इन बंगाल इन दि 18 सेंचुरी'*, ऑक्सफोर्ड सेलेरेंडोन प्रेस, लंदन, 1976, पृ. 24-25
20. झा जे.सी., *'दि ट्राइबल रिवोल्ट ऑफ छोटानागपुर (1831-1832)'*, के.पी. जायसवाल रिसर्च इन्सटीट्यूट, पटना, 1978. पृ. 46-47
21. चौधरी शशि भूषण, *'सिविल डिस्ट्रीब्यूशन ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल इन इण्डिया (1765-1867)'*, पृ. 65-69
22. औमली एल.एल. एस, *'बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर'*, सिंहभूम सरायकलां एण्ड खरसांवा, लोगोस प्रेस, नई दिल्ली, 2011, पृ. 26-27
23. जर्नादन कुमार, *'कंपनी इण्डिया कम्प्रीरिहेनसिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया 1757-1856'*, जानकी प्रकाशन, पटना, 1950, पृ. 5-7
24. डॉगल जॉन मैक, *'लैंड और रिलिजन दि सरकार एण्ड खरवार मोमेंटस इन बिहार 1858-95'*, मनोहर पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1985, पृ. 4-5
25. बंगाल जूडिसियल स्क्रीनिंग अनुच्छेद 10, दिनांक 16 अक्टूबर 1795, पृ. 14-16
26. ओमैली एल.एल.एस., पूर्वोक्त, पृ. 35-36
27. चौधरी पी.सी. राय, *'बिहार में 1857 राजस्व विभाग'*, पटना, 1949, पृ. 10-11
28. दत्ता, के.के., *'संचाल हुल'*, एकता प्रकाशन, 1991, पृ. 1-3
29. सहाय, के.एन., *'अंडर द शैडो ऑफ दि क्रॉस'*, कलकत्ता, 1976, पृ. 66-68
30. मैकडागग्ल्स, जॉन, पूर्वोक्त, पृ. 46-47
31. वही, पृ. 49-51
32. गाडगिल और गुहा, *'दिस फियुसरेड लैण्ड'*, ऑक्सफोर्ड पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1988, पृ. 17-19
33. वही, पृ. 17-19
34. कात्यान रश्मि, *'झारखण्ड पंचायत राज अधिनियम 2001'*, क्राउन पब्लिशिंग, रांची, 2012, पृ. 230-231
35. रीड जे., *'रिपोर्ट ऑफ दि सर्वे एण्ड सेटलमेंट ऑपरेशंस इन दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ रांची, 1902-1910'*, कलकत्ता, 1910, पृ. 25-26
36. वही, पृ. 27-29
37. राय एस.सी., *'दि एडमिनिस्ट्रेशन हिस्ट्री एण्ड लैंड टेयर ऑफ रांची'*, डिस्ट्रिक्ट अण्डर ब्रिटिश रूल मैन इन इंडिया, 1975, पृ. 62-67
38. वही, पृ. 62-67

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी-जून 2019

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

प्राचीन भारत में वर्णाश्रम एवं पितृसत्ता : एक ऐतिहासिक अध्ययन

❑ अभिनव अर्चना

पितृसत्ता का उद्भव एवं विकास अचानक नहीं हुआ, बल्कि यह मातृसत्ता के क्रमशः कमजोर होने की आवृत्ति का परिणाम है। राज्य, विवाह एवं वर्णाश्रम के अस्तित्व में आने के साथ ही मातृसत्ता कमजोर होती चली गयी। विवाह एवं वर्णाश्रम अवस्था से पूर्व मातृसत्ता का बोलबाला था। विवाह प्रथा से पहले स्वच्छंद मैथुन की प्रथा प्रचलित थी। वैदिक साहित्य में स्त्री-पुरुष के स्वच्छंद मैथुन का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है, परन्तु अप्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। विवाह प्रथा कायम होने के बाद भी स्वच्छंद मैथुन की पुरानी प्रथा को याद दिलाने वाले कुछ रिवाज स्मृतिकाल तक चलते रहे जिसके फलस्वरूप स्मृतिकारों को स्वीकृत वैवाहिक संबंधों के बाहर मैथुन से उत्पन्न पुत्रों के लिए प्रावधान करना पड़ा। वर्णाश्रम व्यवस्था में स्त्री की स्थिति की पड़ताल के लिए समाज में प्रचलित स्त्री के विवाह से सम्बन्धित तीन प्रथाओं- बहुपति प्रथा, पुनर्विवाह और सती को आधार बनाया गया है। इन तीनों का विश्लेषण करके यह जानने का प्रयास किया गया है कि पितृसत्ता और वर्णाश्रम व्यवस्था तथा स्त्री की सामाजिक स्थिति का आपस में क्या सहसम्बन्ध था? चुनी गयी तीनों प्रथाएँ ऐतिहासिक विकास के तीन भिन्न कालों से जुड़ी हैं। ये समाज में स्त्री के प्रति अपनाये गये नजरिये में आने वाले बदलाव और उसके कारणों को समझने में हमारी मदद करती है। इन विश्लेषणों को तीन चरणों में प्रस्तुत किया गया है। दूसरे शब्दों में यह चरण मातृसत्ता से पितृसत्ता के तरफ बढ़ते क्रम को दिखलाते हैं।

आज के स्त्री-विमर्श के दौर में जब स्त्री की स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता से समेकित करके देखा जा रहा है या उसे नारीवाद की जद में परिभाषित करने का प्रयास जारी, एक अहम सवाल सहज ही उठ खड़ा होता है कि जिस प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का निरंतर महिमामण्डन किया जाता है उस संस्कृति में नारी का दर्जा क्या था? प्राचीन भारतीय इतिहास में स्त्री की सामाजिक स्थिति में आने वाले उतार-चढ़ाव के उल्लेख साहित्य में मिलते हैं। ये उल्लेख सामाजिक-आर्थिक संदर्भों में हैं। इन्हीं के आधार पर स्त्री की स्थिति को विश्लेषित किया गया है। ऐसे शोध कम ही हैं जिनमें साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक, अध्ययन के दोनों स्रोतों को आधार बनाकर स्त्रियों की सामाजिक- आर्थिक- सांस्कृतिक स्थिति का मूल्यांकन किया गया हो। समग्र विश्लेषण के लिये ऐसे प्रयास जरूरी हैं, अन्यथा हमारी जानकारी एकपक्षीय रह जाती है। समस्या तब आती है जब एक स्रोत से मिलने वाली जानकारी या सूचनाएँ दूसरे स्रोत द्वारा समर्थन न प्राप्त करके उसके विरोध में खड़ी दिखती हैं। ऐसी स्थिति में किये गये शोध का पुनर्मूल्यांकन और विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। प्राचीन भारत में स्त्री के महिमामण्डन अथवा उसकी अवमानना से ज्यादा जरूरी है कि स्त्री की स्थिति का तटस्थ मूल्यांकन हो और इतिहास का निष्पक्ष उद्घाटन और पुनर्मूल्यांकन।

साहित्यिक स्रोतों का विश्लेषण करते समय हमें इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि स्त्री के प्रति अपनाया गया दृष्टिकोण क्या है? सत्कार का या तिरस्कार का। देखा यह गया है कि प्राचीन साहित्य से इस सम्बन्ध में विरोधी विचार मिलते हैं, जिन्हें आधार बनाकर हम स्त्री की सामाजिक स्थिति को उच्च या निम्न दोनों रूपों में आसानी से विश्लेषित कर सकते हैं।[1] ऑपनिवेशिक काल से आज तक प्राचीन साहित्य के इस तरह के तमाम उद्धरणों का इस्तेमाल किया जाता रहा है। जरूरत है इन संदर्भों और उद्धरणों के तुलनात्मक अध्ययन की जिससे समाज में स्त्री की वास्तविक स्थिति तय की जा सके।

तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से उजागर होता है कि प्राचीन भारतीय समाज स्त्री को दोयम दर्जे का नागरिक मानता था। 'गृह लक्ष्मी' की उपमा, ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'' जैसे उद्धरणों से सिर्फ भ्रम की स्थिति पैदा होती है जो वास्तविकता से भटकाव पैदा करती है। उदाहरण के लिये यदि ऋग्वैदिक काल में स्त्री के सुशिक्षित होने की बात की जाये तो दो चार स्त्रियों के शिक्षित होने, उनके द्वारा शास्त्रार्थ और दार्शनिक विमर्श में भागीदारी को पूरे समाज की स्त्रियों का प्रतिबिम्बन मान लेना उचित

❑ शोध अध्येत्री, इतिहास विभाग, तिलका माझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

नहीं है। विश्लेषणों को पूरी स्त्री जनसंख्या के आधार पर करना होगा। जानना ये है कि समाज की स्त्री जनसंख्या का कितना प्रतिशत इस तरह के शास्त्रार्थों में रुचि लेता था अथवा शिक्षित था। तभी स्त्री और पुरुष की पारस्परिक सामाजिक स्थिति की बेहतरी या बद्तरी को जाना जा सकता है।[2]

यद्यपि कतिपय इतिहासकारों ने विवाह एवं वर्णाश्रम अवस्था से पूर्व स्त्रियों की स्वच्छंदता पर प्रकाश डाला है। इस सन्दर्भ में जर्मन विद्वान बेकोफेन ने 1861 में मुट्टेरेक्ट नामक कालजयी कृति की रचना की। उन्होंने पहले-पहल यह कहा कि विवाह-प्रथा के प्रारंभ के पहले स्त्री-पुरुष के स्वच्छंद मैथुन की प्रथा प्रचलित थी।[3] इस विचार को मक्लेनन, मॉर्गन, लुब्बॅक, वस्टिअन, स्पेन्सर और कुछ अन्य विद्वानों के शोध कार्यों से बल मिला। लेकिन डार्विन और वेस्टरमार्क ने इसका विरोध किया। उन्होंने बतलाया कि विवाह-प्रथा मानव जाति की शुरुआत से ही चल पड़ी।

मॉर्गन ने यह दलील दी है कि वंशवृद्धि के लिए लोग अपने गोत्र के बाहर विवाह करते हैं। उनकी इस दलील पर हाल ही में प्रश्नचिहन लगाया गया है। उन्होंने जैविक परिस्थिति को इसका स्वाभाविक कारण बतलाया है। इसका तात्पर्य यह है कि अपने वंश और परिवार में विवाह करने से शारीरिक खराबियाँ हो सकती हैं और इस प्रकार वंशवृद्धि की संभावना घटती है। परंतु नए नृविज्ञानी दलील देते हैं कि माताओं, बहनों और पुत्रियों पर से अधिकार छोड़कर एक वंश अथवा जनजातीय समुदाय के पुरुष इन स्त्रियों को दूसरे वंशों और समुदायों के लिए उपलब्ध कराते हैं और बदले में दूसरे समुदायों की स्त्रियों पर अधिकार प्राप्त करते हैं।[4] कौटुंबिक मैथुन निषेध केवल निषेध मात्र ही नहीं है बल्कि कानून भी है[5], यह उस मत के अनुरूप है कि विवाह में स्त्रियों की अदला-बदली होती है तथा नातेदारी का संबंध दो समुदायों के बीच का संबंध है, न कि दो व्यक्तियों के बीच का।[6] फिर भी यह सुविदित है कि कुछ आदिम समाजों और अनगिनत ग्रामीण समुदायों में बहुत दिनों तक निकट संबंधियों में वैवाहिक संबंध प्रचलित रहा।[7]

बेकोफेन ने विभिन्न देशों के प्राचीन साहित्य से अनेक लेखांश खोज निकाले जिनमें स्त्री-पुरुष के स्वच्छंद मैथुन के साक्ष्य मिलते हैं। यहाँ दिखलाया जा रहा है कि ऐसे अनेक लेखांश प्राचीन भारतीय साहित्य में भी पाए जाते हैं। मेयर के मतानुसार वैदिक साहित्य में स्त्री-पुरुष के स्वच्छंद मैथुन का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है।[8] परंतु इसमें संदेह नहीं कि इस सामाजिक तथ्य के प्रचलन का अप्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

इसकी संपुष्टि महाकाव्यों और पुराणों में मिलने वाली कुछ परंपराओं से होती है। वहाँ पिता द्वारा पुत्री के साथ संभोग के प्रचलन का प्रसंग है। हम मानव जाति के जनक मनु का प्रसिद्ध उदाहरण उद्धृत् कर सकते हैं। उनका जन्म ब्रह्मा और उनकी पुत्री शतरूपा[9] के संयोग से हुआ था। ऐसे दृष्टांत प्रारंभिक समाज के उस चरण का स्पष्ट संकेत करते हैं जिसमें विवाह-प्रथा कायम नहीं हो पाई थी तथा पिता-पुत्री एवं भाई और बहन के बीच मैथुन-निषेध की रीति नहीं चल पायी थी। आगे हम बतलाएँगे कि श्वेतकेतु किस प्रकार उस युग की चर्चा करता है जिस समय विवाह प्रथा नहीं थी। लेकिन यह कहना निराधार होगा कि श्वेतकेतु के आख्यान से जिस सामाजिक अवस्था का प्रचलन आर्यों में होता है उसका वेदों में धुँधला संकेत भी नहीं मिलता है।[10] सुझाव दिया गया है कि देशांतरण के क्रम में पुत्र-प्राप्ति के लिए आदिम पितृसत्तात्मक समुदायों में पिता के पुत्री के साथ मैथुन का प्रचलन शुरू हुआ। लेकिन अनेक आदिम संप्रदाय सामान्यतः मातृसत्तात्मक अथवा कम से कम मातृवंशात्मक होते थे और ऐसे लक्षण ज्ञात ऐतिहासिक युगों के पितृसत्तात्मक समाज में शायद ही पाए जाते हैं। जो भी हो, महाभारत के अनेक परिच्छेदों से स्पष्ट संकेत मिलता है कि पूर्व काल में एक ऐसा चरण था जिसमें स्त्री-पुरुष के बीच स्वच्छंद मैथुन प्रचलित था। कर्ण पर्व में मद्र देश के लोगों के विषय में ऐसी अनेक परंपराओं का उल्लेख है। मद्र में बाहिलक की स्त्रियों को मानव समाज का कलंक बतलाया गया है।[11] उनके बीच निश्चित रूप से पुत्र के जन्मकार का पता करना संभव नहीं था, इसलिए पुत्री न कि पुत्र, वारिस होती थी। इस स्रोत में यह भी कहा गया है कि मद्र देश में शाकल की बाहिलक स्त्रियाँ नंगी नाचती और हँसती हैं। वे लंपट और हठधर्मी होती हैं और खुले मैदान में मैथुन का आनंद लेती हैं।[12] उत्तर-पश्चिमी भारत में ऐसी परंपरा की प्रतिध्वनि राजतरंगिणी के समय तक कायम रही। राजतरंगिणी में उल्लिखित है कि गांधार के ब्राह्मणों में कौटुंबिक मैथुन प्रचलित था।[13] मद्र के प्रसंगों से संकेत मिलता है कि उस क्षेत्र में मैथुन पर नियंत्रण का अभाव था। मद्र और बाहिलक से संबंधित ऐसी परंपराओं की संपुष्टि उत्तर-पश्चिमी

भारत के स्त्रीराज्य, स्त्रीबाह्य अथवा नारीविषय के अस्तित्व के अन्य प्रसंगों से हो जाती है।[14]

स्त्री-पुरुष के स्वच्छंद मैथुन के मामले में महाभारत में दो उक्तियाँ निर्णयात्मक हैं। पाण्डु उस युग की चर्चा करता है जिसमें स्त्रियाँ अनियंत्रित, लंपट, हठधर्मी और स्वतंत्र होती थीं। वे विवाह के पहले भी पुरुषों की ओर आकृष्ट होती थीं, लेकिन यह उनके लिए पाप नहीं माना जाता था।[15] पाण्डु बतलाता है कि ऐसी प्रथा उसके समय में भी उत्तरकुरु में प्रचलित थी। बौद्ध साहित्य में भी कहा गया है कि उत्तरकुरु में स्त्रियाँ चल-संपत्ति नहीं मानी जातीं और न वहाँ कोई व्यक्तिगत संपत्ति होती है।[16] लेकिन स्वच्छंद यौन-संबंध का सबसे महत्त्वपूर्ण संकेत उद्दालक और उनके पुत्र श्वेतकेतु की कथा में मिलता है। श्वेतकेतु ने अपने सामने देखा कि एक ब्राह्मण ने उनकी माता को हाथ पकड़ कर खींच लिया है। इससे वह अत्यन्त क्रोधित हुआ। इस पर उसके पिता उद्दालक ने श्वेतकेतु से कहा कि इसमें क्रोधित होने की कोई बात नहीं है क्योंकि संसार की सभी स्त्रियाँ स्वच्छंद विचरण करती हैं और यह प्रथा अति आाचीन काल से सनातन धर्म के रूप में चली आ रही है।[17] लेकिन पुत्र ने ऐसे आचरण के लिए यह स्पष्टीकरण स्वीकार नहीं किया। उसने नियम बनाया कि जो स्त्री अपने पति की उपेक्षा करती है और जो पुरुष कुमारी कन्या को दूषित करता है वे भ्रूण-हत्या के दोषी होंगे। श्वेतकेतु के आख्यान से मिलती-जुलती बहुसंख्यक अन्य परंपराएँ हैं इसलिए कल्पित कथा कहकर इस आख्यान का तिरस्कार नहीं किया जा सकता है।[18] इस प्रसंग में पौराणिक उक्ति है कि कृत युग में संतानोत्पत्ति की इच्छा होने ही से संतानोत्पत्ति की जा सकती थी।[19] शायद इस मिथक से संकेत मिलता है कि प्राचीनतम काल में विवाह प्रथा नहीं रहने के कारण स्त्री-पुरुष स्वतंत्रतापूर्वक सहगामी बनते थे।

प्राचीनतर धर्मसूत्रों में एक पुरानी गाथा का उद्धरण है। इस उद्धरण में एक ऐसे काल का धुँधला संकेत मिलता है जब स्त्री की दांपत्तिक निष्ठा को कम महत्त्व दिया जाता था।[20] बृहस्पति स्मृति के अनुसार पूरब की स्त्रियाँ व्यभिचारी होती हैं।[21] जॉली का विचार है कि पूर्वी देशों की स्त्रियों की निष्ठा पर यह लाँछन तिब्बती और दूरस्थ भारतीय जनजातियों के विवरणों के कारण हैं।[22] इन जातियों में अभी भी वैवाहिक जीवन ढीला है।

विवाह प्रथा कायम होने के बाद भी स्वच्छंद मैथुन की पुरानी प्रथा को याद दिलानेवाले कुछ रिवाज स्मृति काल तक चलते रहे जिसके फलस्वरूप स्मृतिकारों को स्वीकृत वैवाहिक संबंधों के बाहर मैथुन से उत्पन्न पुत्रों के लिए प्रावधान करना पड़ा। मनु का वचन है कि पति के अतिरिक्त दूसरे पुरुष के साथ मैथुन के फलस्वरूप यदि किन्हीं स्त्रियों के बच्चे उत्पन्न होते हैं और उनके पिता की पहचान नहीं हो सकती है तो उन्हें गूढ़ोत्पन्न कहा जाता है।[23] स्मृतिकार अविवाहित और विधवा स्त्रियों के बच्चों के लिए भी प्रावधान करते हैं। विधि ग्रंथों (स्मृतियों) में ऐसे बच्चों के चार प्रकार बतलाए गए हैं। पुराने समय के ऐसे रिवाजों से स्वच्छंद मैथुनिक संबंधों की याद आती है जिनमें स्त्री-पुरुष के मैथुन पर कोई पाबंदी नहीं थी। इस पाबंदी का विकास पितृसत्तात्मक समाज में एकविवाही पारिवारिक प्रणाली के फलस्वरूप हुआ।

इन प्रसंगों के आधार पर स्वच्छंद मैथुनिक संबंधों के प्रचलन के काल और विस्तार के बारे में निष्चित निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है। हम स्पष्टतः निर्धारित नहीं कर सकते कि यह प्रथा आर्यों अथवा अनायों अथवा दोनों में पाई जाती थी।[24] लेकिन इसके लिए मात्र मद्र की ही निंदा की गई है; अतः अनुमान है कि मध्य पंजाब के लोग इस प्रथा को बहुत दिनों तक छोड़ नहीं सके। जो भी हो, साहित्यिक प्रसंगों के आधार पर कहा जा सकता है कि स्त्री-पुरुष के स्वच्छंद मैथुन के अवशेष प्राचीन भारतीय समाज में पाए जाते थे।[25]

वर्णाश्रम व्यवस्था में स्त्री की स्थिति की पड़ताल के लिये समाज में प्रचलित स्त्री के विवाह से सम्बन्धित तीन प्रथाओं- बहुपति प्रथा, पुनर्विवाह और सती- को आधार बनाया गया है। इन तीनों का विश्लेषण करके यह जानने का प्रयास किया गया है कि पितृसत्ता और वर्णाश्रम व्यवस्था तथा स्त्री की सामाजिक स्थिति का आपस में क्या सहसम्बन्ध था?[26] प्राचीन भारतीय इतिहास की समय सीमा काफी लम्बी है। चुनी गयी ये तीनों प्रथायें ऐतिहासिक विकास के तीन भिन्न कालों से जुड़ी हैं। ये समाज में स्त्री के प्रति अपनाये गये नजरिये में आने वाले बदलाव और उसके कारणों को समझने में हमारी मदद करती हैं। इस विश्लेषण को तीन चरणों में प्रस्तुत किया गया है।

उत्तरी कश्मीर में लद्दाख से एक हिन्दू आर्य जनजाति की सूचना मिलती है जो 1870 ई. में लद्दाख घाटी में बसी हुई थी। इस जनजाति के सदस्यों की संख्या 2500 आँकी गयी है जो तीन गाँवों में बँटे हुए थे। उन्हें दरद (Darad)

या ब्रोगपॉस (Brogpas) के नाम से जाना जाता था। दरद का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। इनके बीच विवाह पूर्व एवं विवाहेतर सम्बन्ध आम थे तथा विवाह प्रथा के रूप में बहुपति एवं बहुपत्नी विवाह का प्रचलन था। मुख्यधारा समाज की प्रतिक्रिया, प्रभाव और दबाव में इनके बीच बहुपति प्रथा धीरे-धीरे समाप्त हो गयी किन्तु बहुपत्नी प्रथा बनी रही।

इस हिन्द-आर्य जनजाति की सूचना के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक विकास के शुरुआती काल में आर्यों के बीच बहुपति और बहुपत्नी प्रथा प्रचलित रही होगी। ऋग्वेद और अथर्ववेद में तमाम ऐसे संदर्भ मौजूद हैं जिनसे इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद और आवेस्ता दो ऐसे आरम्भिक और प्रामाणिक स्रोत हैं जिनसे आरम्भिक आर्यों के समाज, रीति-रिवाज और प्रथाओं को समझा जा सकता है। ऋग्वेद में आर्यों का उल्लेख एक ऐसी प्रजाति के रूप में मिलता है जो जीवन्तता, उल्लास, आशावादिता और साहस से लबरेज है। इसी तरह की झलक आवेस्ता से भी मिलती है जो ईरानी आर्यों का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। ऋग्वेद और आवेस्ता दोनों विवाह का उल्लेख करते हैं। ऋग्वेद में पत्नी को गृह के समान बताया गया है[27], सन्तानोत्पत्ति को एक पवित्र कार्य जो दैव और पृथ्वी अर्थात् स्वर्ग और पृथ्वी के मिलन का प्रतीक है[28], जिन्हें आदि पूर्वज कहा गया है। आवेस्ता भी विवाह के महत्त्व को दर्शाते हुए कहता है कि अविवाहित स्त्री या पुरुष के द्वारा दी गयी आहुतियाँ[29] देवता और पूर्वज समान रूप से अस्वीकार कर देते हैं। ये दोनों संदर्भ हिन्द-आर्य और ईरानी-आर्य समाज का विवाह से परिचय और विवाह का सामाजिक कर्मकाण्डीय महत्त्व दर्शाते हैं।

इसी संदर्भ में विवाह प्रथा से सम्बन्धित अन्य विचारों, मान्यताओं और अवधारणाओं का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि आरम्भिक आर्य समाज में स्त्री की यौनिकता को लेकर कठोर प्रतिबन्ध नहीं थे। स्त्री-पुरुष सम्बंधों में एक तरह का खुलापन और स्वतंत्रता थी। ऋग्वेद के पहले और दसवें मण्डल में ऐसे अनेक संदर्भ हैं जो इस तथ्य का समर्थन करते हैं। ऐसे ही कुछ संदर्भों के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि ऋग्वैदिक समाज में बहुपति प्रथा का प्रचलन था। इस प्रथा को लेकर समाज में सहजता थी, किसी किस्म का तनाव या विरोध नहीं। अधिकांशतः ये संदर्भ देवी-देवताओं के हैं जिनमें यम-यमी, प्रजापति, सूर्या-अश्विन कुमार, मरुत-रोदसी प्रमुख हैं। इनके अलावा कुछ संदर्भ ऋषि परिवारों के भी हैं।[30] बहुपति प्रथा के दृष्टिकोण से अश्विन कुमारों और सवितृ की पुत्री सूर्या के संदर्भ, मरुत-रोदसी संदर्भ उल्लेखनीय हैं।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल[31] में वर्णन मिलता है कि कैसे अश्विन कुमारों ने सवितृ की पुत्री सूर्या को जीत लिया। उन्हें बार-बार सूर्या को प्रणय निवेदन करते वर्णित किया गया है या फिर सूर्या को जीतने के लिये रथों की दौड़ में हिस्सा लेते दिखाया गया है।[32] ऋग्वेद के पहले मण्डल में[33] सूर्या को अश्विन-कुमारों की पत्नी कहा गया है। इसी तरह ऋग्वेद का पाँचवाँ मण्डल[34] मरुतों के बीच एक पत्नी का उल्लेख करता है। छठे मण्डल[35] में रोदसी का उल्लेख उनकी सामूहिक पत्नी के रूप में एक से अधिक बार किया गया है। वह उनकी प्रिया है[36] और युवा खूबसूरत पत्नी भी।[37] मरुतों की संख्या देवताओं में सबसे अधिक बतायी जाती है। इसीलिये अनेकों बार उन्हें पृथ्वीवासियों के साथ समेकित किया जाता है।[38]

तैत्तरीय संहिता[39] उनको आम जन के रूप में परिभाषित करती है। सम्भवतः संख्या में अधिक होने की वजह से उनका साम्य आम जन/पृथ्वीवासियों के रूपक के लिये किया गया है।[40] इस रूप का बार-बार इस्तेमाल इस बात का संकेत करता है कि मरुतों या पृथ्वीवासियों में भी सामूहिक पत्नी (बहुपति प्रथा) की परम्परा रही होगी।

अश्विनकुमारों, मरुतों के अलावा विश्वदेवा[41] का सम्बन्ध भी बहुपति प्रथा से जोड़ा गया है। इसी तरह के अनेकों मिथकीय संदर्भ ऋग्वेद में बिखरे पड़े हैं।[42] ये प्रारम्भिक आर्य समाज में बहुपतिप्रथा के प्रचलन का भान कराते हैं।

मिथकीय संदर्भों के अलावा आम जन से जुड़े हुए कुछ संदर्भ भी उद्धृत् करने योग्य हैं। ऋग्वेद के दसवें मण्डल[43] में एक ब्राह्मण पत्नी का उल्लेख है जिसे क्षत्रिय के घर ले जाया जाता है और बाद में वापस लौटा दिया जाता है। इसी तरह का एक अन्य संदर्भ[44] सोम, गंधर्व और अग्नि से जुड़ा है जिसमें उन्हें क्रमशः एक स्त्री के पति के रूप में उल्लिखित किया गया है। तीन मिथकीय (दैव) पतियों के पश्चात् स्त्री का चौथा पति मनुष्य योनि का बताया गया है। सोम, गंधर्व और अग्नि का पति के रूप में उल्लेख बहुपति प्रथा के प्रचलन का परोक्ष संकेत है।

ऋग्वेद के श्लोक संख्या X-18-845 में एक विधवा स्त्री का वरण उसके देवर के द्वारा पति की चिता के पास दिखाया गया है। देवर के द्वारा किये गये संवाद की सहजता और संवाद के लिये चुने गये परिवेश से समाज

में इस तरह की प्रथा के प्रचलन का संकेत मिलता है। इस वरण में औपचारिक विवाह संस्कार, जिसका प्रायः महिमामण्डन किया गया है, की कोई आवश्यकता नहीं दर्शायी गयी है। ना ही मृत पति के दाह संस्कार/मृतक संस्कार की कोई प्रतीक्षा दिखती है। कुछ ऐसी भी ऋचाएँ हैं जिनमें वधू को देवर की अभिलाषा रखते, प्रेम करते अभिव्यक्त किया गया है।[46]

देवर का विधवा-वरण, वधू की देवर-अभिलाषा के संदर्भ-विवाह की प्रचलित प्रथाओं पर प्रकाश डालते हैं। यास्क के निरुक्त[47] में देवर शब्द की व्युत्पत्ति ही दूसरे पति के रूप में की गयी है।

ऋचा संख्या- ऋग्वेद (X-95-12) में श्वसुर शब्द का बहुवचन में प्रयोग (श्वशुरेषु)[48] पति के माता-पिता के बीच बहुपति प्रथा के प्रचलन के साथ ही उसके परम्परागत होने का साक्ष्य भी प्रस्तुत करता है। जहाँ एक तरफ यम-यमी का संदर्भ, प्रजापति की अपनी पुत्री के साथ प्रेम की कामना, पूषन का अपनी माँ पर मोहित हो जाना समाज में उन्मुक्त यौन सम्बन्धों का संकेत है वहीं बहुपति प्रथा के संदर्भ, नियोग (देवर के साथ सम्बन्ध) के संदर्भ स्पष्ट करते हैं कि प्रारम्भिक आर्य समाज ने स्त्री की यौनिकता पर कठोर प्रतिबन्ध नहीं लगाये थे। बहुपति प्रथा (Polyandry) के अलावा ऋग्वेद से हमें बहुपत्नी प्रथा (Polygamy) और एक-पत्नी (Monogamy) प्रथा के संदर्भ भी मिलते हैं।[49] वैवाहिक सम्बन्धों के स्वरूप में विविधता दर्शाती है कि ऋग्वैदिक समाज अपनी स्त्रियों के प्रति तुलनात्मक रूप से सदाशयता की भावना रखता था। पितृसत्ता पर आधारित वर्णाश्रम व्यवस्था, जो स्त्री पर मालिकाना हक मानती है, इस समाज में रूढ़ नहीं हुई थी। रामायण में भी इस प्रथा का संकेत प्राप्त होता है। पृथ्वी को पार्वती ने अनेकों पति धारण करने का श्राप दिया था। महाभारत में द्रौपदी के विवाह की कथा इसका सर्वोत्कृष्ट ज्वलन्त उदाहरण है। युधिष्ठिर ने इसके समर्थन में जरिला और गौतमी का उदाहरण दिया है जिन्होंने सात ऋषियों से विवाह किया था। उन्होंने नेवर्सी नामक कन्या से प्रचेता के दस भाईयों के विवाह का उल्लेख किया है।

यद्यपि सदाशयता का भाव अधिक समय तक नहीं रहा। उत्तर वैदिक साहित्य[50] (1000 ई.पू.-600 ई.पू.) से हमें ऐसे संदर्भ मिलने लगते हैं जो बहुपति प्रथा के विरोध में दिखते हैं। यह अपनी जड़ों को मजबूत करती पितृसत्तात्मक वर्णाश्रम व्यवस्था का स्त्री की यौनिकता को नियंत्रित करने का पहला कदम था। ऐतरेय ब्राह्मण[51] में हम इस विरोध को और मुखर रूप में पाते हैं जहाँ कहा गया है कि पति अनेक पत्नियाँ रख सकता है पर पत्नी को यह अधिकार नहीं है। विरोध के संदर्भ समाज में बढ़ती हुई जड़ता के साथ-साथ ये भी स्पष्ट करते हैं कि पूर्वकालिक समाज बहुपति प्रथा के साथ सहज था।

धर्मशास्त्रों और उन पर की गयी टीकाओं से समाज द्वारा स्त्री के पुनर्विवाह के प्रति अपनाये गये दृष्टिकोण का पता चलता है।[52] साथ ही ये भी स्पष्ट होता है कि एक समय बहुपति विवाह प्रथा के प्रति सहज समाज क्रमशः कितना रूढ़िवादी होता गया।

ऋग्वेद में एक स्थल पर स्त्री को, जो अपने पति के शव के साथ चिता पर सती होने के लिए लेटी है, सम्बोधित कर कहा गया है कि 'तुम उठकर इस जीवित संसार में आओ क्योंकि तुम अब एक मृतक व्यक्ति के समीप सोई हो। जहाँ तक तुम्हारे पति के पत्नीत्व की बात है जिसने विवाह में तुम्हारा पाणिग्रहण किया था तुमने उसका निर्वाह यथेष्ट रीति से किया है[53], पर सायण तथा दूसरे व्याख्याकार इस ऋचा की अन्तिम पंक्ति का अर्थ लगाते हैं कि 'तुम्हारा पत्नीत्व मेरे प्रति जिसने अब तुम्हारा हाथ पकड़ा है तथा तुम्हारा प्रेमी हूँ प्रारंभ हो गया है',[54] अल्तेकर के अनुसार सायण वाला अर्थ गलत है।[55] इस बात की पुष्टि आश्वलायन गृह्यसूत्र से भी होती है कि उपर्युक्त ऋग्वैदिक श्लोक का पाठ चिता पर पति के समीप जलने के लिए सोई हुई स्त्री को उठाने के लिए देवर या अन्य कोई जो उसका प्रतिनिधि हो अथवा शिष्य या वृद्ध नौकर द्वारा किया जाता था।[56] यहाँ किसी भी आकार विधवा पुनर्विवाह या नियोग की गंध नहीं आती। पर ऋग्विधान के अनुसार उपर्युक्त वैदिक ऋचा का उच्चारण कर देवर को अपनी पुत्रविहीन विधवा भाभी को पुत्रोत्पत्ति के लिए भाई की चिता से उतारना चाहिए।[57] काणे के अनुसार इस प्रकार ऋग्वेद का उपर्युक्त श्लोक नियोग प्रथा का पोषण कहा जा सकता है।[58] यही विचार कृष्णनाथ चटर्जी का भी है।[59] पर यहाँ यह शंका उठती है कि आश्वलायन ने नौकर तथा शिष्य द्वारा उक्त ऋचा के उच्चारण का उल्लेख किया है जो नियोग के लिए पूर्णतया अनुपयुक्त है। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि इस ऋचा का उच्चारण एक पुरातन प्रवृत्ति का द्योतक है तथा आश्वलायन का कथन एक सुझाव मात्र है।[60] आगे

ऋग्वेद में एक स्थल पर यह भी कहा गया है कि 'हे अष्विन! यज्ञकर्त्ता तुमको अपने घर में उसी प्रकार बुलाते हैं जैसे एक प्रेमिका अपने प्रेमी को तथा विधवा अपने देवर को अपने बिस्तर पर बुलाती है।[61] 'देवर' शब्द का अर्थ है, दूसरा वर- द्वितीयो वरः'।[62] अतः ऋग्वैदिक काल में भी विधवा विवाह की प्रथा का चलन तो नहीं था पर इसका प्रासंगिक ज्ञान अवश्य मिलता है।

अथर्ववेद में पुनर्विवाह के अनेक प्रसंग मिलते हैं। एक ऋचा में तो नव पुनर्विवाहित युगल के स्वर्ग प्राप्ति के सम्बन्ध में उल्लेख है जो अपने पुनर्विवाहित पति के साथ पंचौदन अज- एक बकरा और पाँच चावल के ढेर- दान में देता है वे मृत्यु के बाद भी परस्पर संबंधित रहते हैं तथा एक ही लोक को प्राप्त करते हैं।[63] यहाँ एक पद्धति वर्णित है जिसके द्वारा नव दम्पति स्वर्ग में भी परस्पर सहयोग प्राप्त करते हैं।[64] एक स्थल से ज्ञात होता है कि यदि किसी स्त्री के दस पति भी हों और वे सभी अब्राह्मण हों और अन्तिम पति ब्राह्मण बने तो वही अकेला उसका पति बनता है।[65] इससे स्पष्ट है कि अन्य वर्णों की अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठता के कारण पति की वास्तविक कोटि में माना जा सकता है। कृष्णनाथ चटर्जी के अनुसार इस कथन से यह प्रतिध्वनित होता है कि पुनर्विवाह पद्धति का चलन था।[66] ये सम्पूर्ण तथ्य स्पष्ट करते हैं कि वैदिक काल में विधवा विवाह चलन में था।[67] अल्तेकर का विचार है कि इस समय के साहित्य में व्यवस्थित रूप से विधवा पुनर्विवाह के उदाहरण अत्यन्त अल्प हैं क्योंकि संभवतः नियोग प्रथा इस पद्धति की अपेक्षा अधिक चलन में थी।[68]

ऊपर हमने तलाक के संबंध में धर्मसूत्रों के कथन का अध्ययन किया है कि पति के विदेश से एक निश्चित समय तक न लौटने पर उसकी पत्नी यदि दूसरा विवाह करना चाहे तो कर सकती है।[69] इसके अतिरिक्त धर्मसूत्रों में ऐसा भी विधान है कि यदि पति बिना स्त्री प्रसंग किए ही मर जाय अथवा केवल वाग्दान के बाद ही उसकी मृत्यु हो जाय तो दूसरा विवाह किया जा सकता है।[70] लगता है कि धर्मसूत्रों के समय से विधवा विवाह ने एक व्यवस्थित रूप धारण कर लिया था। महाकाव्यों में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। रामायण में तारा का ज्वलंत उदाहरण है जो पति बालि के मरने पर सुग्रीव की पत्नी बनती है तथा उसका संबंध अपने पूर्व पति के राज्य तथा पुत्र से समाप्त हो जाता है।[71] राक्षस परिवार में भी इसका चलन विधवा सूर्पणखा का राम तथा लक्ष्मण से विवाह के प्रस्ताव से ज्ञात होता है। सीता ने भी पंचवटी में स्वर्णमृग के शिकार के लिए गये राम के बुलाने पर लक्ष्मण से कोसते हुए कहा कि- तुम भाई के मरने पर मुझे प्राप्त करना चाहते हो पर प्राप्त नहीं कर सकोगे। इससे लगता है कि रामायण के समय आर्य और अनार्य सभी परिवारों में यह प्रथा व्याप्त थी। महाभारत में अर्जुन का विवाह ऐरावत की विधि पुत्री उलूपी से होता है।[72] नल का दमयन्ती के साथ विवाह होने पर भी नल का बहुत दिनों तक पता न लगने पर दमयन्ती का पुनः विवाहार्थ स्वयंवर करना[73], सत्यवती का अपने पुत्रों के विवाह के लिए भीष्म से प्रार्थना करना कि विधवाओं से विवाह करें आदि विधवा पुनर्विवाह के द्योतक हैं। एक स्थल पर तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पति के अभाव में नारी देवर से विवाह कर सकती है।[74] बौद्ध ग्रंथ उच्छंग जातक में स्वजनों के बन्दी होने पर विलाप करती हुई स्त्री को जब पति, भाई आदि में से किसी एक को मुक्त कराने की स्वेच्छा मांगी गई तो उसने कहा कि पति तो दूसरा भी मिल सकता है पर भाई दूसरा नहीं मिल सकता। अतः उसे ही मुक्त किया जाय।[75] यह पुनर्विवाह का चलन सिद्ध करता है।

पर महाभारत के समय से ही पुनर्विवाह का चलन निन्दित समझा जाने लगा था। दुर्योधन ने युद्ध के अन्त में संधि के समय कहा कि इस क्षीणरत्ना तथा मारे गये क्षत्रियों वाली पृथ्वी के भोगने की इच्छा उसी प्रकार मुझमें नहीं है जिस प्रकार विधवा के भोगने का उत्साह नहीं होता।[76] इससे स्पष्ट है कि विधवा विवाह प्रचलित तो था पर इसे हेय दृष्टि से देखा जाता था। रामायण में भी इसकी ऐसी ही स्थिति रही होगी क्योंकि आर्य परिवार में इस आकार के चलन का कोई प्रत्यक्ष उदाहरण नहीं ज्ञात होता है। धर्मशास्त्रों की रचना के समय भी इसे हेय दृष्टि से देखा जाता था। विष्णु के अनुसार विधवा को पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। मनु ने तो एक पद आगे बढ़ कर कहा कि उसे दूसरे पुरुष का नाम तक नहीं लेना चाहिए।[77] किन्तु प्रचलित परम्परा के आमूल विरोध को स्पष्ट न व्यक्त करते हुए भी वह मानते हैं कि यह धर्म नहीं है। फिर भी नारद, पाराशर और मनु कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में इसकी छूट देते हैं जैसे नष्ट, मृतक, प्रब्रजित, नपुंसक, दूर यात्रा पर गये पति को छोड़कर दूसरा पति नारी कर सकती है।[78] इससे स्पष्ट है कि यहाँ परिस्थितिगत छूट मात्र प्रदान की गयी है। इसीलिए स्मृतियों की रचना के समय अनेक पुनर्विवाह के ऐतिहासिक

उदाहरण हमें मिलते हैं जैसे चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने भाई रामगुप्त की पत्नी ध्रुव देवी के साथ पुनर्विवाह किया था। साथ ही बाल-विधवाओं के साथ पुनर्विवाह की मनाही हमारे शास्त्रों में नहीं दी गई है[79] क्योंकि विवाह होने पर भी यदि पति समागम उस कन्या का न हुआ हो तो वह वैसी ही है जैसे क्वांरी कन्या। पुराणों के काल में अर्थात् 600 ई. से यह अत्यन्त निन्दित प्रथा के रूप में मानी जाती थी। इसे कलिवर्ज्य कहा गया है तथा इस प्रकार के सम्बन्ध से उत्पन्न पुत्र को श्राद्ध में बुलाने की निन्दा की गयी है (आदित्य पुराण) पाराशर पर टीका करते हुए माधव का भी यही विचार है कि पुराकाल की यह प्रचलित प्रथा कलिवर्ज्य है। यही विचार लघु आश्वलायन का भी है।[80]

पराशर स्मृति[81] में कहा गया है कि यदि किसी स्त्री का पति गायब हो जाता है, नपुंसक है, सन्यास ले लेता है या जाति बहिष्कृत हो जाता है अथवा मर जाता है तो ऐसी स्थिति में वह पुनर्विवाह कर सकती है।

वैदिक साहित्य का अध्ययन ये बताता है कि वैदिक समाज स्त्री के पुनर्विवाह से परिचित था। पुनर्भू शब्द पहली बार अथर्ववेद में आता है[82] जिसका अर्थ एक ऐसी स्त्री से है जिसने दुबारा विवाह किया हो। धर्मसूत्रों से भी पुनर्विवाह के लिये निर्धारित विशेष परिस्थितियों का पता चलता है। बौधायन[83] ने पति के नपुंसक, जाति बहिष्कृत और मृत होने पर स्त्री को पुनर्विवाह की अनुमति दी है। वशिष्ठ धर्मसूत्र[84] इसमें एक नयी परिस्थिति जोड़ता है, पति के मंदबुद्धि होने की। स्मृति ग्रंथों में मनुस्मृति[85], याज्ञवल्क्य स्मृति[86] और नारद स्मृति[87] पुनर्विवाह से उत्पन्न संतान को पुनर्भुवा कहती हैं।

ज्यादातर धर्मसूत्र और स्मृति ग्रंथों के उद्धरण कुछ खास परिस्थितियों में स्त्री पुनर्विवाह का अनुमोदन करते हैं। इस सम्बन्ध में इन धर्मसूत्रों और स्मृतियों के टीकाकारों का दृष्टिकोण उल्लेखनीय है। नारद स्मृति के टीकाकार असहाय (ई.सं. 700-750) ने टिप्पणी[88] की है कि यद्यपि पुनर्विवाह और नियोग का अनुमोदन धर्मशास्त्रों के द्वारा किया गया है, किन्तु व्यवहार में ये दोनों प्रथायें प्रतिबन्धित थीं। इसी तरह मेधातिथि (ई.सं. 825-900) जो मनुस्मृति के महत्त्वपूर्ण टीकाकार हैं 'नष्टे मृते...' पर टीका[89] करते हुए स्त्री के पुनर्विवाह को परपुरुषगमन (Adultary) के रूप में व्याख्यायित करते हैं। मस्कारी (ई.सं. 900-1100) ने गौतम धर्मसूत्र की टीका में 'नष्टे मृते...' की व्याख्या में कहा है कि ऐसी स्त्री संतानहीन है तो उसे नियोग से संतान प्राप्त कर लेनी चाहिये। नियोग के लिये देवर को उपयुक्त बताया गया है।[90] मध्वाचार्य ने (ई.सं. 1300-1386) पाराशर स्मृति की टीका में 'नष्टे मृते...' की अपनी व्याख्या में कहा है कि इस प्रकार के विवाह कलियुग के लिये उपयुक्त नहीं हैं।[91] इन टीकाकारों से बिल्कुल अलग विचार 18वीं शताब्दी के पाराशर स्मृति के टीकाकार कामेश्वर का है। उसने न केवल स्त्री-पुनर्विवाह का अनुमोदन किया है बल्कि मध्वाचार्य के कलियुग संबंधी तर्क की आलोचना भी की है।92पाराशर स्मृति के ही एक अन्य टीकाकार वैद्य गंगाधर (ई.सं. 1798-1885) ने 'नष्टे मृते...' की विवेचना नियोग के आधार पर की है।

कहा जा सकता है कि यद्यपि कुछ टीकाकारों ने, जिनमें असहाय, मध्वाचार्य, कामेश्वर आदि प्रमुख हैं, 'नष्टे मृते. ..' में पुनर्विवाह का अनुमोदन माना है किन्तु असहाय ने इसे व्यावहारिक प्रचलन न मानकर खारिज कर दिया। मध्वाचार्य ने इसे कलियुग के लिये प्रतिबन्धित माना। केवल कामेश्वर ने इसे समर्थन दिया और इसे समाज के हित में बताया। मस्कारी और वैद्य गंगाधर पुनर्विवाह का विरोध करते हुए नियोग से संतान उत्पन्न करने को अधिक उचित मानते हैं। उनका तर्क है कि 'नष्टे मृते...' पुनर्विवाह का नहीं नियोग का उल्लेख करता है। मेधातिथि सभी टीकाकारों में सर्वाधिक कट्टर रवैया रखते हैं और मानते हैं कि 'नष्टे मृते...' की विवेचना पुनर्विवाह के रूप में करने वाले परपुरुषगमन जैसी आवृत्ति को बढ़ावा दे रहे हैं।

विभिन्न धर्मसूत्रों, स्मृतियों और उन पर की गयी टीकाओं का यह संक्षिप्त उल्लेख यह स्पष्ट करता है कि विशिष्ट परिस्थितियों में भी स्त्री को पुनर्विवाह की अनुमति आसानी से नहीं मिलती थी। समाज स्त्री के पुनर्विवाह के प्रति सहज नहीं था। कालक्रम में बढ़ती हुई वैचारिक जड़ता ने स्त्री की स्वतंत्रता को प्रतिबन्धित किया है।

स्त्री पर लगाये गये प्रतिबन्धों का चरम सती प्रथा के रूप में सामने आता है। निःसंदेह सती प्रथा कठोर पितृसत्तात्मक समाज की उपज है। इसकी उपज के कारणों एवं तिथि को सुनिश्चित करना मुश्किल है। सती का प्रचलन यह जरूर बताता है कि समाज एक स्त्री को स्वतंत्र सामाजिक इकाई के रूप में न तो कोई महत्त्व देता था और न ही उसके प्रति सहानुभूति रखता था। यदि ऐसा होता तो उन्हें जिन्दा पति की चिता के साथ जला न दिया जाता। स्त्रियों के प्रति

समाज का प्रतिकूल रवैया धर्मशास्त्रीय प्रतिबन्धों में दिखता है जहाँ क्रमशः उन्हें चल सम्पत्ति में रूपान्तरित कर दिया गया है।

सती प्रथा के विभिन्न आयामों को समझने के लिये प्राचीन समाज में स्त्रियों से सम्बन्धित नियम, कानून, प्रथाओं और कर्मकाण्डों को विचार में रखना होगा। साथ ही उनकी सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति का भी विश्लेषण करना होगा।

ऋग्वेद और महाभारत से मिलने वाले मातृसत्ता और बहुपति प्रथा के संदर्भों से आभास मिलता है कि इस समय तक स्त्रियों को परतंत्र नहीं माना जाता था, जैसा कि धर्मशास्त्रों के समय माना जाने लगा। धर्मशास्त्रीय समाज का दृष्टिकोण विवाह के प्रचलित प्रकारों के अनुमोदन से स्पष्ट होता है। आठ आकार के विवाहों में प्रशस्त या अनुमान्य प्रकारों की विशेषता यह है कि उनके सम्पन्न होने के लिये पिता की सहमति आवश्यक है या कह सकते हैं ऐसे विवाह जिन्हें पिता की सहमति भी मान्य थे।[93] कन्या और/या उसकी माता की सहमति-असहमति पर कोई विचार नहीं किया गया। दूसरी तरफ अप्रशस्त प्रकारों, जिनमें से गंधर्व और राक्षस कन्या की सहमति प्राप्त थे, को समाज के उच्च वर्णों के लिये प्रतिबन्धित बनाया गया।[94] यह एक ऐसे समाज का प्रतिबिम्बन है जहाँ स्त्री का दर्जा दोयम है। आर. एस. शर्मा ने अप्रशस्त विवाहों के निचले वर्णों के साथ सम्बन्ध को उत्पादन प्रणाली से जोड़ कर विश्लेषित किया है।[95] अपने तर्क के समर्थन में वे बौधायन को उद्धृत् करते हैं।

धर्मशास्त्रों ने स्त्रियों से उनके विवाह संबंधी निर्णय को छीनने के अलावा उन्हें शूद्र और सम्पत्ति के साथ वर्गीकृत किया। आर्थिक संदर्भों में उन्हें पैतृक में उत्तराधिकार से वंचित किया गया। उन्हें सिर्फ स्त्रीधन पर अधिकार दिया गया। स्त्री की आर्थिक प्रस्थिति और पैतृक सम्पत्ति, चल-अचल सम्पत्ति में उसके उत्तराधिकार की लम्बी बहस है। इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि धर्मशास्त्रीय प्रबंध स्त्री को उसके शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक अधिकारों से वंचित करता है और उसे पुरुष के अधीन बनाता है। इस प्रवृत्ति में निरंतर बढ़ोतरी दिखती है जिसे गुप्त उत्तर गुप्त और आरम्भिक मध्य-युग के संदर्भ में महसूस किया जा सकता है। आरम्भिक मध्य काल तक स्त्री चल-सम्पत्ति (Chattel) में रूपान्तरित हो जाती है। **चल सम्पत्ति** की इस अवधारणा की पृष्ठभूमि पर सती का उद्भव माना जा सकता है। सती का पहला अभिलेखीय साक्ष्य उत्तर गुप्तकालीन है जो एरण (मध्य प्रदेश) से 510 ई. में जारी किये गये भानुगुप्त के अभिलेख से मिलता है। राजस्थान[96] और मध्य प्रदेश से सती स्तम्भ पाये गये हैं जो राजपूतों से सम्बन्धित हैं। बिहार से कुछ स्थान सती स्थल के रूप में पहचाने गये हैं।[97] इन पुरातात्त्विक संदर्भों के अलावा साहित्य में महाभारत[98], पुराण, हर्षचरित[99], और कादम्बरी[100] के संदर्भ दिये जा सकते हैं। ज्यादातर ये संदर्भ राजपूतों या क्षत्रियों से जुड़े हैं।

राजस्थान और मध्य प्रदेश के अलावा बंगाल वह तीसरा क्षेत्र है जहाँ से सती के प्रचलन के साक्ष्य ज्यादा मिले हैं। बंगाल में सती के प्रचलन को जीमूतवाहन के दायभाग के आलोक में विवेचित किया गया है।[101] ज्यादातर इतिहासकार ये मानते हैं कि उत्तराधिकार संबंधी नियम बंगाल में सती प्रथा का प्रमुख कारण बना और वहाँ की अधिसंख्य जनसंख्या ब्राह्मण होने की वजह से ब्राह्मण इससे प्रभावित हुए।

धर्मशास्त्रों का पूरा चरित्र स्त्रियों और उनके अधिकारों के प्रतिकूल होने के बावजूद प्रायः धर्मशास्त्रों से हमें सती का उल्लेख और अनुमोदन नहीं मिलता। मनुस्मृति जिसका पूरा ताना-बाना स्त्री को पुरुष के अधीन मानता है, से भी सती का उल्लेख और समर्थन नहीं मिलता है। दक्षिण भारत से हमें सती स्तम्भ, सती स्थल और अन्य साहित्यिक, अभिलेखीय, पुरातात्त्विक संदर्भ नहीं मिलते हैं। सती प्रथा उत्तर भारतीय समाज के एक खास वर्ग की विशिष्ट प्रथा के रूप में सामने आती है जिसका उल्लेख या समर्थन धर्मशास्त्रीय प्रबन्धों में नहीं है। इतिहासकार आर. एस. शर्मा उच्च वर्णों के बीच नियोग और पुनर्विवाह के प्रतिबन्ध को सती के उद्भव का एक महत्त्वपूर्ण कारक मानते हैं।[102] कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की कठोर अवधारणा, विधवा जीवन पर जबरन थोपा गया अध्यात्म और पवित्रता संबंधी कर्मकाण्ड, स्त्री से जुड़ी चरित्र की परिभाषा और एक निष्ठा की अव्यावहारिकता की हद तक अपेक्षा, यौन शुचिता का महिमामण्डन कुछ ऐसे मिले-जुले कारक थे जिन्होंने सती जैसी क्रूर और अमानवीय प्रथा के उद्भव के लिये पृष्ठभूमि तैयार की।

सन्दर्भ

1. इस सम्बन्ध में मनुस्मृति से उद्धरण दिये जा सकते हैं।

(क) स्वभाव एष नारीणां नरणामहिदूषणम्।
अतोऽथन्नि प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः।। मनुस्मृति-2/213.
अर्थात् स्त्रियाँ स्वभाव से ही पुरुषों को दूषित करने वाली होती हैं। यहाँ पूरी स्त्री जाति/समाज के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है।

(ख) यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रियाः। मनुस्मृति-3/56.
अर्थात् जिस कुल में स्त्रियाँ पूजित और सम्मानित होती हैं उस कुल से देवता प्रसन्न होते हैं। जहाँ स्त्रियों का अपमान होता है वहाँ यज्ञादि कर्म निष्फल होते हैं।

2. ऋग्वेद के कुल 1028 श्लोकों में 20 ऐसे हैं जिन्हें स्त्री ऋषियों या ब्रह्मवादिनियों के द्वारा रचित बताया है। क्या 1028 में से सिर्फ 20 श्लोकों का अनुपात वैदिक स्त्री के सुशिक्षित होने का प्रमाण माना जा सकता है?कुल बीस में से चौदह श्लोक दसवें मण्डल में हैं। शेष श्लोक पहले मण्डल (दो श्लोक), दूसरे मण्डल (एक श्लोक), पाँच मण्डल (एक श्लोक) और आठवें मण्डल (एक श्लोक) में हैं।
3. एन्जेल्स एफ., *'दि ऑरिजिन ऑफ दि फेमिली, प्राइवेट प्रोपर्टी ऐंड दि स्टेट'*, कलकत्ता, 1943, पृ. 4.
4. गॉडेलियर मौरिस, 'पर्सपेक्टिव्स इन मार्क्सिस्ट ऐंथ्रापॉलॉजी', कैम्ब्रिज, 1977, पृ. 104.
5. वही।
6. ये विचार लेवी स्ट्रॉस के हैं, वही, पृ. 48.
7. वही, पृ. 104.
8. जॉली जे., *'हिंदू लॉ ऐंड कस्टम'*, कलकत्ता, 1928, पृ. 106, पाद टिप्पणी, सर्वदमन सिंह के मतानुसार मातृनामों से, जिनमें ऋग्वेद के 'मामतेय' का उदाहरण भी है, बहुपतित्व, बहुपत्नीत्व अथवा स्वच्छंद संभोग के संकेत मिलते हैं, 'पॉलिएन्ड्री इन एन्शिएन्ट इंडिया', दिल्ली, 1978, पृ. 68.
9. उदाहरणार्थ देखें एस.सी. सरकार, सम आस्पेक्ट्स ऑफ दि अर्लिएस्ट सोशल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड, 1928.
10. डी.एन. मित्तर, पॉजिशन ऑफ वीमेन इन हिंदू लॉ, पृ. 200.
11. महाभारत कर्ण पर्व (कुम्बकोनम प्रकाशन), 37.23.
12. वही, 37, 22-23.
13. राजतरंगिणी, पृ., 308.
14. वात्स्यायन, कामसूत्र (निर्णयसागर), 301, आरवर्ती, 129; शान्ति पर्व, V, 7 बृहत्संहिता, XIX, 22, राजतरंगिणी, कलकत्ता, 1935, IV, 173-76, 670.
15. महाभारत आदि पर्व, 128, 4-5.
16. दीघ निकाय, (रीज डेविड्स अनुवाद), भाग III, पृ. 192.
17. महाभारत आदि पर्व (कुम्बकोनम प्रकाशन), 128, 9-15.
18. मित्तर डी. एन., पूर्वोक्त, पृ. 203.
19. वायु पुराण, VII. 57.
20. आपस्तम्ब, II, 13, 7; बौधायन, II- 34.
21. बृहस्पति स्मृति, II, 30.
22. जॉली, पूर्वोक्त, 107.
23. मनु, IX, 170-81.
24. सिंह एस. डी. ने अनार्य, आर्य, वैदिक और हिंद-यूरोपीय लोगों में भी बहुपतित्व का प्रचलन प्रमाणित करने के लिए प्राचीन ग्रंथों से पर्याप्त साक्ष्य का संग्रह किया है। *'पॉलिऐंड्री इन एन्शिएन्ट इंडिया'*, 1978, अध्याय, II, III, पृ. 166-76.
25. सिंह के अनुसार महाभारत में सभी वर्गों के पुरुषों में मैथुनिक अनियंत्रण के प्रसंग बारंबार मिलते हैं, वही, पृ. 76-82. टीकाकार नीलकण्ठ उत्सवसंकेत के गण को सात स्वच्छंद संभोगी कबीलों के गणतंत्र के रूप में वर्णन करते हैं जिनमें विवाह के लिए कोई निश्चित नियम नहीं था। इस गण को अर्जुन ने जीता था। (महाभारत, II, 24, 15). वही, पृ. 82 तथा उसी पृष्ठ पर पाद टिप्पणी।
26. रूपकुँवर का सती होना सती प्रथा के राजनीतिकरण का सबसे अच्छा उदाहरण है। 4 सितम्बर, 1987 में राजस्थान के एक छोटे से गाँव में 18 वर्षीय रूपकुँवर अपने 24 वर्षीय पति की चिता पर सती हो गयी थी।
27. ऋग्वेद, III-53-4-
28. ऋग्वेद, VII-53-2; X.65.8.
29. असि यष्ट, C, X.54.
30. ऋग्वेद, VII.33.
31. ऋग्वेद, X.39.11.
32. ऋग्वेद, I.116.17, 117.13, 118.5, 119.5.
33. ऋग्वेद, I.119.5.
34. ऋग्वेद, V.61.4.
35. ऋग्वेद, VI.50.5.
36. ऋग्वेद, I.64.9.
37. ऋग्वेद, I.101.7; V.61.4.
38. ऋग्वेद, VIII.96.8.
39. तैत्तरीय संहिता, V.4.7.
40. तैत्तरीय संहिता, V.4.7.7; शतपथ ब्राह्मण, II.5.2.27, 34, 36; IV.3.3.6.
41. ऋग्वेद, V.52.3, 6; VIII.29.4.
42. पृथ्वी को द्यौस की पत्नी कहा गया है (ऋ.वे., I.159.2; VII.53.2; X.65.8) किन्तु कभी-कभी।
43. ऋग्वेद, X.109.
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्मा निनाय।। (ऋ.वे., X.109.2)
44. ऋग्वेद, X.85.40; ऋ.वे., X.85.41.
45. ऋग्वेद, X.18.8.
46. ऋग्वेद, X.40.2.
47. यास्क निरुक्त, 3.15.
48. कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तय द्विजानन्।

को दम्पति समनसा वि योयादध यदग्निः श्शुरेषु दीदयत्।। (ऋग्वेद, X.95.12)।
49. (i) बहुपत्नी-ऋग्वेद, I.62.11; 71.1; 104.3; 105.8; 112.19; 186.7; VI.53.4; VII.18.2; 26.3; X.43.1, 101-11.
(II) एक पत्नी-ऋग्वेद, I.124.7; IV.3.2; X.71.4.
50. तैत्तरीय संहिता, VI-4.3; तैत्तरीय संहिता, VI-5.1.4; काणे, पी. वी.; हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, वाल्यूम II, पार्ट I, पृ. 550. 551.
51. ऐतरेय ब्राह्मण, XII.II-
52. इस खण्ड के संदर्भ *'फेसेज आफ द फैमिनीन'*, एडिटेड, मन्द्राक्रान्ता बोस, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000, पृ. 7-20 से लिये गये हैं।
53. ऋग्वेद 10/18/8.
54. अल्टेकर, *'पोजीशन ऑफ वुमैन इन हिन्दू सिविलीजेशन'*, बनारास, 1956
55. वही, पृ. 117
56. उत्तरतः पत्नीम्। धनष्च क्षत्रियाय। तामुत्यापयेद्देवर : प्रतिस्थानीयोःऽन्तेवासी जरद्दासो वोदीर्ष्व नार्यभिजीक्लोकमिति। आष्व. गृ.सू. 6/2/16-18.
57. मर्तकामामपुत्रस्य भार्या तत्र मृते पतौ। देवरोऽन्वारुरुक्षन्तीमुदीर्ष्वेति निवर्तयेत्।। 3/8/4 ऋग्विधान।
58. काणे पी.वी., *'धर्मशास्त्र का इतिहास'*, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, वाल्यूम 2 भाग 1, पृ. 69
59. चटर्जी के.एन., 'हिन्दू मैरिज पास्ट एण्ड प्रजेन्ट, पृ. 358
60. वही, पृ. 117.
61. को वा शयूत्र विधवेव देवरं भयं न योषा कृणुते सधस्त आ। ऋग्वेद, 10/40/2.
62. निरुक्त, यास्क, 4/15.
63. अथर्ववेद, 9/5/27.
64. वही, 9/5/27-28.
65. वही, 5/17/8.
66. चटर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 259
67. दास आर.एम., *'वुमैन इन मनु एण्ड हिज सेविन कमेन्टेटर्स'*, पृ. 223
68. अल्टेकर, पूर्वोक्त, पृ. 178
69. वशिष्ठ धर्मसूत्र, 17/75/80.
70. बौधायन धर्मसूत्र, 4/3/18.
71. वा.रा., 4/21/14.
72. महाभारत, भीष्म पर्व, 91/7-8.
73. महाभारत, 3/7.
74. नारी तु पत्यभावे वै देवरं कुरुते पतिम्। महा., अनु., 8/22.
75. उच्छंग जातक, सं. 67.
76. महाभारत, 9/31/45.
77. न तु नामापि ग्रहीयात्पत्यौ प्रेते परस्य वै। मनु., 5/157.
78. नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ। पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते।। पारा., 4/28.
79. उद्वाहिता च या कन्या न संप्राप्ता च मैथुनम्। भर्तारं पुनरण्येति यथा कन्या तथैव सा।। लघुशातातप, 5/44.
80. 'युगनंतरे स धर्मः स्यात् कलौ निन्ज' इति स्मृति। 121/14.
81. पाराशर स्मृति, IV.28 - नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ। पंचस्वायात्सु नारीणां पतिरन्यो विधि यते।।
82. अथर्ववेद, IX.5.27.28.
83. बौधायन धर्मसूत्र, IV.1.18.
84. वशिष्ठ धर्मसूत्र, IV.1.18.
85. मनुस्मृति, IX.175.
86. याज्ञवल्क्य स्मृति, I.67.
87. नारद स्मृति, XII.46.48.
88. नारद स्मृति पर असहाय की टीका, I.40.
89. मनुस्मृति पर मेधातिथि की टीका, IX.76, पृ. 263.
90. गौतम धर्मसूत्र, XVIII.4.
91. पाराशर स्मृति पर टीका, *'पराशर माध्वया'*, वाल्यूम 2, पृ. 44.
92. हितधर्म, पृ. 81.
93. अर्थशास्त्र, III.2.
94. अर्थशास्त्र, III.2.
95. शर्मा, आर. एस.; रिथिंकिंग इण्डियाज पास्ट, आक्सफोर्ड, 2009, पृ. 115.
96. राजस्थान से बीसवीं शताब्दी की तिथि वाले सती स्तम्भ मिले हैं।
97. शर्मा, आर. एस.; पूर्वोक्त, पृ. 118.
98. महाभारत, आदि पर्व 95.65, वसुदेव की पत्नियों के सती होने का उल्लेख।
99. हर्ष चरित, अध्याय 5.
100. कादम्बरी, पैरा 77, खण्ड-1 (काणे सम्पादित)।
101. बंगाल में सती प्रथा का विश्लेषण वहाँ के उत्तराधिकार के नियम के आधार पर किया गया है जो शेष उपमहाद्वीप से पूर्णतया भिन्न था। जीमूतवाहन का दाय भाग जो याज्ञवल्क्य स्मृति पर टीका है, विधवा स्त्री को पति की पैतृक सम्पत्ति में अधिकार देता है। इस अधिकार को कृषि पर आधारित पितृसत्तात्मक समाज ने एक चुनौती के रूप में लिया क्योंकि भू-सम्पत्ति का विभाजन सीधे उनकी अर्थव्यवस्था को आभावित करता था। बंगाल में दाय भाग कानून का प्रचलन सती के उद्भव का कारण बना।
102. शर्मा, आर. एस.; पूर्वोक्त, पृ. 120.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी-जून 2019

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

डूँगरपुर नगर का भूमि उपयोग प्रतिरूप : एक भौगोलिक अध्ययन

❑ डॉ. गोविन्द लाल सरगड़ा

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक नगर के भूमि उपयोग प्रतिरूप में बहुत अधिक परिवर्तन देखा जा सकता है। प्राचीन काल में डूँगरपुर नगर का विकास नहीं के बराबर था लेकिन जैसे हीं जिलें का मुख्य नगर बनने के बाद लगभग सभी सरकारी एवं अर्द्धसरकारी कार्यालय, यातायात मार्गो का विकास हुआ वैसे ही तेजी के साथ नगर के विकास में बढ़ोत्तरी होने लगी और कालान्तर में दूसरी सुविधाएँ भी स्थापित हो गयीं, जिसके फलस्वरूप जनसंख्या का दबाव बढ़ने के साथ अन्य इकाइयों के स्थापित होने से मास्टर प्लान की आवश्यकता पड़ी जिसमें आवासीय क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, चिकित्सा केन्द्र, व्यवसायिक केन्द्र, मनोरंजन केन्द्र, सरकारी भवन, परिवहन मार्ग इत्यादि को एक नियोजित रूप से स्थापित करने कि आवश्यकता है क्योंकि नियोजित क्षेत्र में स्थापित नहीं होने पर नगरीय समस्याएँ उभर कर सामने आती हैं तथा नगर में गन्दगी, भीड़-भाड़, कई प्रकार कि बीमारियाँ, दुर्घटनाएं इत्यादि समस्याएँ देखने के मिलती हैं। वर्तमान में नगर का विकास द्रुतगति से होने से सुविधाएँ होते हुए भी कमी महसूस हो रही है। अतः नगर का सुनियोजित विकास होना चाहिए।

वर्तमान युग में नगरों का विकास वृद्धि विस्तार विभिन्न गत्यात्मक शक्तियों पर आधारित है। इन पर नगर की संरचना में एक से अधिक कार्य विकसित होते हैं जो नगर की आर्थिक वृद्धि का निर्धारण करते हैं। एक तरफ नगर में रहनें वाली जनसंख्या के लिए आवासीय विस्तार वहीं दूसरी और विभिन्न सामाजिक सुविधाओं की उपलब्धता के लिए नगरीय स्थिति में सुनिश्चित वितरण प्रणाली के आधार पर विकास होता है। जिससे नगर के संतुलित विकास की अवस्था प्राप्त हो जाती है। वर्तमान में सबसे महत्त्वपूर्ण नगरीय कार्यो में औद्योगिक विकास सर्वाधिक रूप से प्रभावशाली कार्य माने गये है। अतः नगरीय नियोजनकर्ता के सामने नगर की विकास प्रणाली में इन सभी कार्यो को नियोजित प्रणाली पर विकसित करना आवश्यकता है, जिससे नगर की पारिस्थितिकी संतुलित तथा स्वरूप अक्षुण्ण रहे तथा भावी विकास की प्रणाली विकसित हो सकें। ऐसा प्रयास नियोजनकर्ता द्वारा किया जाता है।

प्रस्तुत शोधकार्य के अन्तर्गत नगरीय इकाई के भूमि उपयोग का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है तथा उन सभी कारकों का प्रयोग किया गया है जो भूमि उपयोग को प्रभावित करते है ऐसा माना जाता है कि अनियोजित प्रणाली में वहाँ की विभिन्न गतिविधियाँ एक दूसरे को प्रभावित करती हैं, जो निश्चित रूप से उपयोगी नहीं है एवं नगर को पर्यावरण प्रदुषण के प्रभाव से दूर रखने के लिए औद्योगिक ईकाइयों को नगर से दूर स्थापित करना चाहिए और आवासीय व्यवस्था को नियोजन के द्वारा सुनिश्चित करना चाहिए तथा शैक्षणिक, प्रशासनिक, खेल क्षेत्र, स्वास्थ्य केन्द्र आदि का स्थान भी सुनिश्चित करना होगा, तभी नगर का संतुलित विकास सम्भव है।

साहित्य समीक्षा :- नगरीय भूगोल का अध्ययन क्षेत्र वर्तमान में बहुत तीव्रगति से बढ़ रहा है तथा बढ़ते नगरीयकरण से प्रांसगिक बन गया है। समय-समय पर नगरीय भूगोलवेत्ताओं ने इसके विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है, जिसमें विशेष रूप से चिशोल्म[1], मुल्कें[2] ने नगरीय पर्यावरण संकल्पना पर विशेष प्रकाश डाला है। नगर की आधारभूत संरचना, नगरीय आकार आदि को आगे बढ़ाने का श्रेय हार्वे[3] को जाता है। परम्परागत विचार तथा मात्रात्मक क्रान्तियों के नवीन विचार प्रदान करने का श्रेय कोरले और हेगेट[4], हार्वे[5], बर्टन[6] और टेलर[7] को जाता है।

नगर नियोजन प्रक्रिया में मॉडल में क्रिस्ट्रालर[8] और लोश[9] ने ''केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त'' के आधार पर नगर का आकार वितरण कस्बे तथा बाजार अवस्थिति को बताया है। इन सभी अध्ययनों में वर्तमान समय के नगरीयकरण के प्रतिरूपों व उनसे उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

सी क्लार्क तथा ब्रसली[10] में क्रमशः नगरीय जनसंख्या घनत्व तथा जनसंख्या विश्लेषण की विधि पर जोर दिया। एडम्स[11] ने नगरीय समाज के उत्थान, नगरों की वृद्धि पर कार्य किया। एस. थोमसन[12] में जनसंख्या समस्याओं का,

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर भूगोल विभाग, सर्वोदय कॉलेज, नया पड़ारिया, कलिंजरा, बाँसवाड़ा (राजस्थान)

एफ. एस. सिद्दीकी[13] ने व्यवसायिक संरचना के प्रादेशिक विश्लेषण का विस्तृत अध्ययन किया है।

यादव सी. एस.[14] में बड़े नगरों में भूमि उपयोग का दिल्ली की भौगोलिक, सामाजिक, औद्योगिक क्षेत्र में कार्य किया। जेकसन, रिचर्ड एच.[15] ने अमेरिका में भूमि उपयोग भट्टाचार्य बी.[16] ने भारत का नगरीयकरण का ऐतिहासिक परिदृश्य और ग्रामीण तथा शहरी के बीच सम्बन्ध, नगर की उत्पति के बारे में अध्ययन प्रस्तुत किया है। डी. टी. हर्बट और आर. जे. जोनसन[17] ने क्षेत्र और पर्यावरण की बीच के सम्बन्ध का अध्ययन किया है तथा जनसंख्या के स्थानान्तरण का मात्रात्मक सांख्यिकी आँकड़ों का प्रयोग करते हुए अध्ययन किया है।

जनसंख्या वृद्धि के सिद्धान्त एवं मानचित्र कला का प्रयोग बंसल, सूरजदेव[18] तथा जनसंख्या अध्ययन व नगरीयकरण, कारण एवं प्रभाव को चान्दना आर. सी.[19] ने प्रस्तुत किया। आर्थिक विकास का पर्यावरण के साथ सम्बन्ध ओ.पी शर्मा[20] नगरीयकरण व्यवसायिक संरचना, साक्षरता समस्याएं एवं समाधान का अध्ययन प्रस्तुत किया तथा बलवीर सिंह नेगी[21] ने पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण का विवेचन किया है तथा नगरीयकरण के द्वारा होने वाले प्रदूषण एवं समस्याओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। विजय कुमार तिवारी और सी. एम. दुबे[22] विशेष रूप से राजस्थान में पर्यावरण समस्या एवं निवारण को ए.एन. माथुर एवं एम.एस. राठौड़, और वी. के. विजय[23] ने बताया है। लक्ष्मीनारायण वर्मा[24] ने अधिवासों की अवस्थिति, वितरण एवं भारतीय अधिवास के प्रतिरूप, प्रकार तथा विकास केन्द्र को विस्तार से समझाया है।

अध्ययन क्षेत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :- 'सुरम्य पहाड़ियों के नगर' डूँगरपुर नगर से इस जिलें का नाम डूँगरपुर है। डूँगरपुर नगर को ही भीलों की 'पाल' या डूंगरियां भील की ढ़ाणी कहा जाता था। डूंगरिया एक भील सरदार था, जिसका 14 वीं शताब्दी में रावल वीरसिंह देव द्वारा वध कर दिया गया था। इस नगर की बसावट के बारे में चाहे जो कुछ दन्त-कथाएं रहीं हों, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह वागड़ या वाग्वर नामक क्षेत्र का एक भाग था तथा वटपद्रक इस क्षेत्र की प्राचीन राजधानी थी, जिसे आजकल बड़ौदा (तहसील आसपुर का एक ग्राम) कहा जाता है।

मेवाड़ क्षेत्र में प्राप्त आहाड़ के अवशेष 4000 वर्ष पुरानी सभ्यता के द्योतक है। उपर्युक्त सदंर्भो के अनुसार बारहवीं शताब्दी में परमारों ने वागड़ पर शासन किया था। इसकी राजधानी बाँसवाड़ा जिलें में स्थित अर्थूणा नगर थी। अर्थूणा के निर्बल हो जाने पर वट पद्रक (इस समय डूँगरपुर जिलें की आसपुर तहसील का बड़ौदा गाँव) और गलियाकोट के परमार सामन्त स्वतन्त्र शासक बन गये।

ख्यात में उल्लेख मिलता है कि रावल वीरसिंह देव के समय में वर्तमान डूँगरपुर के आसपास के ग्रामीण क्षेत्र पर शक्तिशाली भील सरदार डूंगरिया का कब्जा था जो कि एक धनाढ्य महाजन सालाशाह की पुत्री से विवाह करना चाहता था। सालाशाह ने विवाह के लिए बहुत दिनों बाद एक तिथि तय की और इसी मध्य वीरसिंह से मिलकर यह षड़यंत्र रचा कि जब डुंगरिया भील सहित सभी बाराती नशे की अवस्था में हों, उन्हें मार दिया जाए। यह षड़यन्त्र सफल रहा। रावल वीरसिंह ने डूंगरिया के गाँव पर कब्जा कर लिया और 1358 ई. में डूँगरपुर नगर की स्थापना की। एक दन्त कथा के अनुसार वीरसिंह ने डूंगरिया भील की दोनों विधवाओं से यह वादा किया था कि वे डूंगरिया भील की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए एक स्मारक का निर्माण करवाएगें। कहा जाता है कि उसने इस बात पर भी सहमति दी थी कि नगर का नामकरण उनके दिवंगत पति के नाम पर ही किया जाएगा। उसने यह भी प्रतिज्ञा की, कि भविष्य में प्रत्येक नया राजा तभी सिंहासनारूढ़ होगा, जब डूंगरिया का अनुवंशी उस राजा के सर पर अपने हाथ की अंगुली के खून से तिलक करेगा। रावल वीरसिंह अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चितौड़ में की गई लूटपाट के दौरान मारा गया। इनके उत्तराधिकारी मचुंड़ी थे, जिन्होंने हनुमान पाल का निर्माण करवाया। मचुंड़ी के उत्तराधिकारी रावल गोपीनाथ थे, जो 1433 ई. में गुजरात के सुल्तान अहमदशाह पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रख्यात थे। उन्होनें डूँगरपुर नगर में गेपसागर झील का भी निर्माण करवाया था, जो आज भी नगर का एक सुन्दर स्थान है। महारावल उदयसिंह प्रथम भी अपनी बहादुरी के कारण विख्यात हुए। उन्होंने वागड़ को दो भागों में विभाजित किया। पश्चिमी भाग जिसके अन्तर्गत डूँगरपुर नगर सम्मिलित हैं को उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज को सौप दिया और पूर्वी भाग जिसे बाद में बाँसवाड़ा के नाम से जाना गया, को उन्होंने अपने छोटे बेटे जगमाल को दे दिया। 1529 ई. में राज्य अलग-अलग हो गए। महारावल पुन्नराज को मुगल सम्राट शाहजहां ने 'महिमातीव' की पदवी और 'डेढ़ हजारी मनसब' की जागीर देकर सम्मानित किया। महारावल जसवंतसिंह द्वितीय के समय 1918 ई. में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति निरन्तर मैत्री,

अच्छे सम्बन्ध और हितों की एकरूपता के लिए एक संधि पर हस्ताक्षर किए गए, जिसके अनुसार 17500 रूपयें की राशि प्रति वर्ष चौथ उपहार के रूप में ब्रिटिश सरकार कों दी जाती थी। महरावल श्री लक्ष्मणसिंह 5 नवम्बर 1918 ई. को गद्दी पर बैठे और 1948 ई. तक रहे।

1945 में डूँगरपुर राज्य प्रजामण्ड़ल की स्थापना हुई और एक वर्ष पश्चात 1946 में शासक के अधीन रहकर कार्य करने के लिए उत्तरदायी सरकार बनाने के लिए मांग की गई। मार्च 1948 में तत्कालीन शासक ने उत्तरदायी सरकार बनाने की घोषणा कर दी। संयुक्त राज्य राजस्थान के गठन पर स्थानीय सरकार समाप्त हो गई और राज्य का प्रशासन राज्यों के नवगठित संघ के राज प्रमुख को हस्तान्तरित कर दिया गया। संयुक्त राज्य सरकार में डूँगरपुर नगर को एक अलग जिले का मुख्यालय घोषित कर दिया गया।

अध्ययन क्षेत्र :- डूँगरपुर नगर अरावली पर्वतमालाओं के दक्षिणांचल में स्थित विस्तृत पहाड़ी भाग में बसा हुआ है। जिसकी सीमाएं उत्तर में उदयपुर जिले से, पूर्व में बाँसवाड़ा जिले से तथा दक्षिण पश्चिम में गुजरात राज्य से मिलती है। सोम नदी उदयपुर जिले के साथ एवं माही नदी बाँसवाड़ा जिले के साथ सीमाओं का निर्धारण करती है भौगोलिक विस्तार ज्यामितिय दृष्टिकोण से डूँगरपुर नगर $23^0$20' से $24^0$01' उत्तरी अक्षांश और $73^0$22' से $74^0$23' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। पहाड़ियों वाले इस नगर का सामान्य धरातल समुद्रतल से 320 मीटर ऊँचा है। जबकि पहाड़ियों की ऊँचाई 552 मीटर है।

डूँगरपुर नगर के उत्तर में डूँगरपुर पंचायत समिति का ददोड़िया गाँव दक्षिण में बिछिवाड़ा पंचायत समिति से लगा हुआ माण्डवा गाँव स्थित है। पूर्व में कुशलमगरी, वीरपुर, तीजवड़ गाँव एवं पश्चिम में बिछिवाड़ा पंचायत समिति का उदयपुरा गाँव स्थित है। डूँगरपुर नगर का कुल क्षेत्रफल 13. 42 वर्ग किलोमीटर है।

भू- वैज्ञानिक संरचना :- भू-वैज्ञानिक दृष्टि से यह क्षेत्र पूर्व केम्ब्रियन अरावली श्रृंखला का भाग है। डूँगरपुर नगर के दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र में क्वार्ट्ज की धारियों वाला स्लेट पत्थर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। स्लेट पत्थरों के मध्य में इधर-उधर कहीं-कहीं प्रेग्मेंटाइट भी छिपा मिलता है। यहां एसबेस्टोस, क्रोमाइट, मेग्मेटाइट और टेल्फ (स्टीटाइट्स) के महत्त्वपूर्ण संभाव्य स्त्रोत के रूप में अल्ट्राबेसिक में भी दिखाई पड़ती हैं खनिजों में सोप स्ओन, एसबेस्टोस, बेरिस और फ्लोराइट मुख्य है।

प्राचीन समय में यहां अभ्रक पाया जाता था, जिसकी चमक आज भी नगर के कुछ भागों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है जो प्रमाण देती है इसके यहां पाये जाने की। नगर के गेप सागर झील के पास स्थित श्री नाथजी के मन्दिर में राधाजी की मूर्ति यहां से उत्पन्न गुलाबी हल्के मार्बल से बनी है इस नगर में Translusut Stone, जिसे कच्चा हीरा भी कहा जाता था, बोड़ीगामा गाँव में पाया जाता था, जिसे राजदरबार द्वारा लगाई जाने वाली प्रदर्शनी में रखा जाता था। "बोड़ीगामा नो हीरों देखाए है तु तो" अर्थात् उस हीरे की सुन्दरता की तुलना की गई है।

जलवायु :- जलवायु एक महत्त्वपूर्ण कारक है। मानव के क्रिया कलाप किसी न किसी रूप में जलवायु पर निर्भर रहते हैं, अर्थात् जलवायु से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। अतः जलवायु का प्रभाव डूँगरपुर नगर के आर्थिक जीवन पर विविध प्रकार से पड़ा है।

किसी भी प्रदेश की जलवायु का अध्ययन एक विस्तृत एवं जटिल विषय है, फिर भी डूँगरपुर नगर के जलवायु से सम्बन्धित प्रमुख तत्त्व पर प्रकाश डालकर जलवायु का अध्ययन किया गया है जैसे- वर्षा, तापमान, आर्द्रता, वनस्पति आदि को सम्मिलित किया गया है। नगर की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारकों में अक्षांशीय स्थिति, उच्चावच, जल की सापेक्षित स्थिति आदि मुख्य है। डूँगरपुर नगर की जलवायु का अध्ययन निम्नलिखित पहलुओं को ध्यान में रख कर किया गया है।

1. इस नगर की जलवायु शुष्क है और यहां ग्रीष्म ऋतु में मौसम राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्र से अधिक गर्म रहता है।
2. ग्रीष्म ऋतु का प्रारम्भ मार्च के अन्त से होता है और मई तक, जो कि यहां का सबसे गर्म महीना होता है तापमान धीरे-धीरे बढ़ता रहता है। मई के महीनें मेंअधिकतम दैनिक मध्य तापमान करीब 45^0 से 48^0से.ग्रे. और न्युनतम 25^0 से 27^0 रहता है किन्हीं - किन्हीं दिनों का तापमान मई में और जून के प्रारम्भ में अर्थात् वर्षा ऋतु से पहले 50^0 से.ग्रे. तक पहुँच जाता है।
3. शीतकाल में अधिकतम दैनिक तापमान 25^0 से.ग्रे. तक नीचे उतर जाता है और न्यूनतम दैनिक तापमान करीब 4-5^0 से. ग्रे. रह जाता है। शीत लहर के दौरान कभी-कभी यह हिमांक बिन्दु तक पहुँच जाता है।

4. इस नगर की सामान्य वर्षा 728.9 मि. मी. है, किन्तु प्रत्येक वर्ष इसमें बहुत अधिक अन्तर होता है यहां एक वर्ष में औसमन वर्षा के 35 दिन होते है जुलाई एवं अगस्त माह में सर्वाधिक वर्षा होती है।

डूँगरपुर नगरः कुल वार्षिक वर्षा मि.मी. (वर्ष 1998-2007)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1998	1999	2000	2001	2002	2003	2004	2005	2006	2007
642.60	359.10	434.70	709.20	320.40	592.20	599.40	514.80	1440.00	382.50

1. नगरीयकरण के विभिन्न कारकों का विश्लेषण करना।
2. डूँगरपुर नगर की नगरीयकरण की संरचना की व्याख्या करना।

आँकड़ों का आधार :- प्रस्तुत शोधपत्र में अध्ययन के द्वितीयक आँकड़ों एवं सूचनाओं को आधार स्वरूप प्रयोग में लिया गया है, जिसमें मास्टर प्लान 1987-2011 से नगरीय भूमि उपयोग प्रतिरूप एवं विस्तार से सम्बन्धित आँकड़ों का प्रयोग किया गया है।

भूमि उपयोग प्रतिरूप :- ''किसी भी क्षेत्र का भूमि उपयोग वहाँ के ऐतिहासिक घटनाओं, प्राकृतिक वातावरण के साथ आर्थिक शक्तियों की अन्तर्क्रिया और समाज की मूल्य-मान्यताओं का सामुच्चयिक प्रतिफल होता है।''

प्राकृतिक संसाधनों में भूमि अति महत्वपूर्ण एवं प्राथमिक संसाधन है। मानव के प्रत्येक क्रिया- कलाप व उसकी मूलभूत एवं प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से भूमि संसाधन से होती है। मनुष्य की अन्य बहुत-सी आवश्यकताएं भी भूमि से ही पूरी होती हैं मानव प्राकृतिक एवं मानवीय परिवेश के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए भूमि संसाधन का अधिकाधिक उपयोग करने का प्रयास करता है। यही कारण है किसी स्थान विशेष के भूमि उपयोग की अवस्थाएं उस क्षेत्र विशेष की तात्कालिक सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था की द्योतक होती हैं। भूमि उपयोग एक गत्यात्मक तत्व है जो भौतिक दशाओं में परिवर्तन तथा मानव के सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के अनुरूप परिवर्तित, परिष्कृत एवं परिमार्जित होता रहता है।

भूमि उपयोग प्रतिरूप के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों द्वारा भूमि के उपयोग - दुरूपयोग का ज्ञान प्राप्त करना है। इसमें सदुपयोग में लाई गयी भूमि के अलावा दुरूपयोग का अनुत्पादक एवं बिना देख-रेख वाली भूमि में भी रूचि ली जाती है क्षेत्र के विकास की योजना बनाने से पूर्व क्षेत्र के वर्तमान भूमि उपयोग का विस्तृत निरीक्षण करके भूमि उपयोग के आधार पर वर्गीकरण आवश्यक है। भूमि उपयोग के वर्गीकरण द्वारा वर्तमान भूमि के उपयोग को समझा जा सकता है। वर्गीकरण से भूमि के वर्तमान उपयोग के विभिन्न वर्गो का विश्लेषण करके भविष्य के लिए अभीष्ट भूमि उपयोग की योजना का निर्माण किया जा सकता है।

डूँगरपुर नगर का भूमि उपयोग

भूमि उपयोग	क्षेत्रफल (एकड़ में)	नगरीय क्षेत्र का प्रतिशत
आवासीय	259	27.3
व्यवसायिक	44	4.7
औद्योगिक	66	7
सरकारी/अर्द्धसरकारी	26	2.7
सार्वजनिक/अर्द्धसार्वजनिक	120	12.7
मनोरंजन	8	0.8
प्रसार	245	25.9
जलाशय	20	2.1
सरकारी संरक्षित क्षेत्र	75	7.9
खाली एवं कृषि भूमि	84	8.9
नगरीयकृत क्षेत्रों का योंग	947	100

उर्पयुक्त सारणी से ज्ञात होता है कि अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक भूमि उपयोग का आवासीय के अनतर्गत 27.3 प्रतिशत हैं। अध्ययन क्षेत्र में मनोरंजन क्षेत्र के अन्तर्गत सबसे कम भूमि उपयोग में 0.8 प्रतिशत होता है।

आवासीय क्षेत्र :- आवासीय क्षेत्र नगर को आकार प्रदान करता है। आवासीय क्षेत्र का अवलोकन करने से नगर के ऐतिहासिक एवं विकास के बारे में जानकारी मिलती है। इसके अध्ययन से नगर की समृद्धि का पता लगाया जा सकता है।

डूँगरपुर नगर का आवासीय क्षेत्र कुल क्षेत्र का 259 एकड़ भूमि को घेरता है। जो कि कुल आवासीय भूमि का 27.3 प्रतिशत भाग कुल विकसित क्षेत्र का है नगर की

कुल जनसंख्या 43108 व्यक्ति है वहीं 60 प्रतिशत जनसंख्या पुराने नगर में आवासीत है डूँगरपुर नगर के आस-पास गोकुलपुरा,नवा डेरा, सुरपुर, राजपुर, बिलड़ी, शिवपुरा, फतेहपुरा बस्तियाँ है, जहाँ पर समतल भू-भागएवं अनुकूल सुविधाओं का विंस्तार वाले क्षेत्रों में आवासीय बस्तियाँ है तथा वहाँ पर धनी व्यक्तियों के निवास क्षेत्र बनते है और वहीं दुसरी तरफ सुविधाओं के अभाव एवं उबड़ खाबड़ वाले भू- भाग में निम्न वर्ग की बस्तियाँ देखी जाती है।

व्यापारिक क्षेत्र :- डूँगरपुर नगर के प्रमुख व्यापारिक क्षेत्र मुख्य सड़क उदयपुर, सागवाड़ा मार्ग की तरफ जाने वाले मार्ग पर व्यापारिक क्षेत्र विकसित है। डूँगरपुर के केन्द्र से चारों तरफ 3 किलोमीटर तक बाजार है। जहाँ रोड के सहारे कई छोटे व बडे प्रतिष्ठान है। मुख्य बाजार सराफा बाजार, भुमटी बाजार, मछली बाजार, फौज का वड़ला, साकनिया चौक बाजार, सागवाड़ा मार्ग पर गेप सागर नाले से केन्द्रीय बस स्टैण्ड तक, उदयपुर रोड़ पर आई. टी. आई. के पास अनाज मण्ड़ी, ऑटोमोबाईल, इलेक्ट्रोनिक, हार्डवेयर, गैराज, ऑटो पाट्स, रेस्टोरेंट, गेस्ट हाउस, होटल आदि पर्याप्त संख्या में है। नगर के पास ग्रामीण क्षेत्र जैसे- पादरा, सुराता, बोड़मली, माड़े की पाल, पिपलादा, पादेड़ी आदि खनन क्षेत्र है तथा कई प्रक्रम इकाईयाँ लगी हुई है।

सरकारी भवन :- डूँगरपुर नगर की भूमि सरकारी एवं अर्द्धसरकारी कार्यालयों के अन्तर्गत आती है जिसमें तहसील, कोर्ट, जिला प्रमुख कार्यालय, कलेक्ट्रेट, पुलिस लाईन, पुलिस स्टेशन, दूरभाष केन्द्र, पोस्ट ऑफिस, डाक बंगला, सिंचाई विभाग, कृषि विभाग, पंचायत समिति, नगरपालिका, पी-डब्ल्यु- डी, विद्युत विभाग, आदि प्रमुख है।

औद्योगिक क्षेत्र :- डूँगरपुर नगर में औद्योगिक विकास कुछ खास नहीं हुआ है फिर भी यहां पर एक वृहत औद्योगिक इकाई स्थित है वृहद स्तर पर स्थापित उद्योग में सिन्टेक्स कपड़ा व धागा मिल है इसके अलावा कुशाल मगरी, मार्बल, गैराज, ऑटो मोबाईल्स उद्योग आदि है। वहीं मध्यम स्तर की कई इकाईयां एवं अनेक छोटे-छोटे उद्योग हैं। नगर में औद्योगिक क्षेत्रों के विकास के लिए बैंक द्वारा ऋण उपलब्ध करवा कर किया गया है। यह क्षेत्र जलवायु की दृष्टि से नम होने के कारण सूती वस्त्र एवं धागा निर्माण के लिए उपयुक्त है। अतः भविष्य में भी विकास के अवसर बनते है।

मनोरंजन :- डूँगरपुर नगर में नगरपालिका द्वारा पार्क व खुली जगह पर नगर के नागरिकों के मनोरंजन हेतु स्थल निर्मित किये है मनोरंजन के लिए फतेहगढ़, गेप सागर झील, नाना भाई पार्क, सुभाष उद्यान, लक्ष्मण मैदान, धर्मात्मा मन्दिर आदि है। लक्ष्मण मैदान में खेल व अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा मेले आयोजित किये जाते हैं। नगर में दो सिनेमाघर भी है। जो नगर परिसर के अन्दर है जो उदसपुर रोड़ पर एवं एक पुराना नगर क्षेत्र में स्थित है नगर में एक दीनदयाल उपाध्याय सार्वजनिक पुस्तकालय है।

परिवहन मार्ग :- डूँगरपुर नगर नेशनल हाईवें 8 से 22 किलोमीटर की दूरी पर है सभी सड़क मार्ग नगर से होकर गुजरते है नगर के आन्तरिक भाग तक पहुँचने हेतु मार्ग उपलब्ध है जनसंख्या दबाव कम करने के लिए रेलवें लाईन है। ब्रॉड़ बैण्ड़ लाईन के द्वारा उदयपुर से अहमदाबाद को जोड़ा गया है जिसके बीच में डूँगरपुर रेलवें स्टेशन आता है नगर से 15 किलोमीटर दूरी पर हवाई पट्‌टी स्थित है। जो नगर से 15 किलोमीटर कि दूरी पर है।

शैक्षिक सुविधाएँ :- डूँगरपुर नगर में शिक्षा के लिए प्राथमिक विद्यालय से लेकर महाविद्यालय एवं प्रशिक्षण महाविद्यालय तक है। इसके अलावा मेडिकल प्रशिक्षण महाविद्यालय, तकनीकी शिक्षा, एवं रोजगार केन्द्र स्थापित होने से रोजगार के अवसर बढ़ रहे है। नगर में शिक्षा के लिए 3 उच्च माध्यमिक विद्यालय, 11 उच्च प्राथमिक विद्यालय तथा 17 निजी विद्यालय हैं। उच्च शिक्षा केलिए वर्तमान में दो राजकीय महाविद्यालय तथा 6 निजी महाविद्याालय, एक बालिका महाविद्यालय, 2 शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, एक महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय है।

चिकित्सा सुविधाएँ :- डूँगरपुर नगर में आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक, युनानी स्वास्थ्य केन्द्र, टी.बी. क्लीनिक आदि है। इसके साथ ही निजी क्लीनिक एवं चिकित्सालय हैं जो सभी चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराते हैं फिर भी जनसंख्या के अनुपात में एवं उच्च स्तरीय स्वास्थ्य सेवायें प्राप्त नहीं होने से मृत्यु दर अधिक है तथा जनसंख्या में जागरूकता में कमी की वजह से भी चिकित्सा को नहीं अपनाकर अन्धविश्वास में जादू-टोना में विश्वास करते है। जिस कारण बीमारी गम्भीर रूप धारण कर लेती है जिससे मृत्यु हो जाती है।

खनन क्षेत्र :- डूँगरपुर नगर के पास प्रमुख खनन क्षेत्र

बोड़मली व सुराता है यहां पर मार्बल निकलता है जो प्रमुख यातायात मार्ग के सहारे फैली हुई है। जो नगरीयकरण के विकास में योगदान प्रदान कर रहीं है। इसके अलावा माण्ड़ों की पाल में रॉक फास्फेट, एसबेस्टस्, थोरियम अयस्क मिलने से यहां पर भविष्य में अधिक विकास होने की सम्भावना बढ़ गयी है।

निष्कर्ष :- डूँगरपुर नगर के भूमि उपयोग प्रतिरूप का गहन अध्ययन करने के बाद सन् 2011 तक के भूमि उपयोग का विवेचन किया गया है जिसमें नगर में भूमि उपयोग की विसंगतियाँ देखने को मिलती है घनी बसी बस्तियों में गन्दगी ज्यादा देखने को मिलती है उन क्षेत्रों में पार्क, खुले मैदान, सुलभ शौचालय, सार्वजनिक वाचनालय, सामुदायिक केन्द्र, आदि के साथ औद्योगिक क्षेत्रों के लिए आवश्यक सुविधाओं का विकास होना चाहिए। जैसे - जल निकासी, अपशिष्ट पदार्थो का निस्तारण, यातायात साधनों व मार्गो का उचित प्रबन्धन होना चाहिए। डूँगरपुर नगर में भीड़भाड़ को कम करने के लिए मार्गो का चौड़ा बनाना होगा और नगर के कार्यात्मक क्षेत्र के लिए एक निश्चित भूमि का निर्धारण कर विकास करना चाहिए। पर्यावरण प्रदूषण होने के कारण औद्योगिक ईकाइयों को नगर से दूर स्थापित करना एवं आवासीय, शैक्षणिक, प्रशासनिक, खेल क्षेत्र, स्वास्थ्य केन्द्र आदि का भी स्थान सुनिश्चित करने पर ही नगर का उचित सन्तुलित विकास सम्भव है।

सन्दर्भ

1. Chisholm, M., *'Human Geography: Evolution or Revolition Penguin'*, Hammord sworth,1975.
2. Mulkay, M.S. *'Three Models of scientific Development Scociological Review'*, 23, 1975, 509-526.
3. Harvey, D., *'Social Justice and the City, Edward Arnold'*, London, 1973.
4. Chorley, R.J. and P. Hagget, *'Models in Geography'*, Methuen, London, 1967.
5. Harvey, D., Op. cit.
6. Burton, I., *'The Quantitative Revolution and Theoretical Geography'*, Canadian Geographer, 7, 1963, 151-162.
7. Taylor, P.J., *'An Interpretation if the Quantification debate in British Geography'*, Transctions Institute of British Geographers, NSI, 1976, 129-142.
8. Christraller, W., *'Central place in Southern Germany'*, Prentice- Hall, Englewood Cliffs, New Jersy, 1933; Translate 1966.
9. Loach, A., *'The Economics of Location'*, Yele University, Press New Haven, Connectieut, 1944; Translated 1954.
10. Clark, C., *'Urban Population Densities'*, B.I.I.S., 1958, pp. 60-68.
11. Adam, R.M., *'The Evolution of Urban Society'*, Aldine Publishing co., Aldine, 1966.
12. Thompson, W.S., *'Population Problems'*, Mc Graw Hill Chicago, 1953-1970.
13. Siddiqui F.A., *'Regional Analysis of Population Structure'*, New Delhi, 1984.
14. Yadav, C.S., *'Inter India'*, Anand Nagar, Delhi, 1978.
15. Jonshon, R.J., *'Urban Residential Pattern and City Society'*, 1971,1980.
16. Bhattacharya, B., *'Urban Development in India'*, Shree Publication House, New Delhi -5, 1979.
17. Herbart, D.T. and Jonshon, R. J. Published by john Wiley an Sins. New York, Brisbane, Torronto.
18. बंसल, सुरजदेव, *'जनसंख्या भूगोल'*, प्रकाशन अर्जुन पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, 2004.
19. चाँदना, आर. सी., *'जनसंख्या भूगोल'*
20. शर्मा ओ. पी., *'भारत में आर्थिक पर्यावरण'*, आर. वी. एस. ए. पब्लिकेशन, जयपुर, 2001.
21. नेगी, बलवीर सिंह, *'पारिथितिकी एवं पर्यावरण भूगोल'*, केदार नाथ रामनाथ, मेरठ, उत्तर प्रदेश.
22. तिवारी, विजय कुमार और दुबे, सी. एम., *'पर्यावरण प्रदूषण'*, प्रकाशन मुम्बई, दिल्ली, नागपुर और बैंगलौर.
23. माथुर ए. एन. और राठौड़ एम. एस., विजय वी. के., *'पर्यावरण शिक्षा'*, हिमान्शु पब्लिकेशन, दिल्ली, उदयपुर, 1993.
26. वर्मा, लक्ष्मीनारायण, *'अधिवास भूगोल'*, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, उदयपुर, 1983.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी-जून 2019
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

म.प्र. के मंदसौर जिले में माध्यमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन

❑ अनिल बाबू
❖ डॉ. अराधना सेठी

प्रस्तुत शोध में माध्यमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन किया गया है। अध्ययन म.प्र. राज्य के मंदसौर जिले के एम.पी.बोर्ड एवं सी.बी.एस.सी बोर्ड के माध्यमिक स्तर के शिक्षकों पर आधारित है। शिक्षण दक्षता मापन हेतु बी.के.पासी एवं एम.एस.ललिथा द्वारा निर्मित मानकीकृत मापनी 'जनरल टीचिंग कॉम्पीटेन्सी स्केल' का प्रयोग किया गया। शोधकर्ता द्वारा संकलित प्रदत्तों के विश्लेषण के सन्दर्भ में माध्य, मानक विचलन, तथा टी परीक्षण का प्रयोग किया गया। सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर .05 सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना की जाँच की गयी और प्रदत्तों के विश्लेषणोपरान्त यह पाया गया कि माध्यमिक स्तर पर लिंग के आधार पर (महिला एवं पुरूष) विद्यालयीन प्रकार (शासकीय एवं अशासकीय) एवं क्षेत्र (शहरी एवं ग्रामीण) के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

जीवन का सबसे महत्वपूर्ण उपहार है शिक्षा। शिक्षा की गुणवत्ता काफी हद तक शिक्षक के व्यवहार से प्रभावित होती है जिसे छात्र-शिक्षक परस्पर अन्तःक्रिया के अवलोकन से ज्ञात किया जा सकता है। प्राचीन काल से वर्तमान तक शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों की भूमिका अग्रणी रही है आज वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास होने के बावजूद शिक्षा प्रणाली में शिक्षक के स्थान एवं महत्व को कम नहीं समझा जा सकता है। किसी भी राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली में शिक्षक का स्थान सबसे महत्वपूर्ण होता है। शिक्षा प्रणाली में उन्नति एवं विकास के लिए उत्कृष्ट विद्यालय, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, उत्तम शिक्षा के संसाधन, श्रेष्ठ पुस्तकें तथा उचित पाठ्यक्रम की आवश्यकता तो है किन्तु उससे भी कहीं अधिक आवश्यक है योग्य एवं दक्ष शिक्षक।[1] क्योंकि अच्छे शिक्षकों के अभाव में किसी भी देश की शिक्षा पद्धति निर्जीव एवं निस्तेज हो जाती है। शिक्षा का केन्द्र जहाँ शिक्षक होता है वही शिक्षकों की गुणवत्ता प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिबिंबित होती है। जहाँ तक भवन, प्रयोगशाला, पुस्तकालय व अन्य आधारभूत सुविधाओं का प्रश्न है, वह अधिकांश संस्थाओं में लगभग एक जैसी रहती हैं, लेकिन कुछ संस्थाओं की प्रतिष्ठा अधिक होती है, जिससे आकृष्ट होकर छात्र वहाँ प्रवेश लेते है, यह अन्तर शिक्षक की गुणवत्ता व दक्षता के कारण होता है। यदि एक शिक्षक शिक्षण में कुशल (दक्ष) नहीं है तो वह शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकता है। कक्षा की विभिन्न परिस्थितियों में शिक्षक की सफलता या कार्य कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह कक्षा की परिस्थितियों के समाधान हेतु अपनी उपयुक्त योग्यता का प्रयोग किस प्रकार करता है।[2]

शिक्षण दक्षता से तात्पर्य शिक्षकों में सन्निहित शिक्षण करने की विशेष योग्यता एवं कुशलता से है। एक शिक्षक अपने शिक्षण कार्य में पूर्णतः दक्ष होना चाहिए, तभी वह बालक की समस्याओं का सही ढंग से निदान कर सकता है। दक्षता किसी व्यक्ति के कार्य के अनुरूप पर्याप्त व्यवसायिक कार्य कुशलता, ज्ञान, योग्यता या क्षमता को व्यक्त करती है। शिक्षण दक्षता एक प्रकार से शिक्षक का गुण है जो बुद्धि, ज्ञान, क्षमता तथा योग्यता से परस्पर सहसंबंधित होता है।[3]

शिक्षक दक्षता को विभिन्न शिक्षा विद्वानों ने परिभाषित किया है जो निम्नलिखित है-

बी.के.पासी एवं एम.एस. ललिता ने शिक्षण दक्षता को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ''शिक्षण दक्षता का तात्पर्य शिक्षक के सभी अवलोकन योग्य व्यवहार के प्रभावी प्रर्दशन से है जो विद्यार्थियों में वांछित परिणाम लाता है।''[4]

हेवकेव और विल्सन के अनुसार- ''शिक्षण दक्षता में ज्ञान, दृष्टिकोण, चतुराई और एवं शिक्षक के अन्य गुण शामिल हैं।''[5]

एस. वेंकटेस ने शिक्षण दक्षता को परिभाषित करते हुए

❑ शोध अध्येता, मंदसौर इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, मंदसौर वि.वि., मंदसौर, (म.प्र.)
❖ एसोशिएट प्रोफेसर, मंदसौर इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, मंदसौर वि.वि., मंदसौर, (म.प्र.)

लिखा है कि "शिक्षण दक्षता शिक्षक के ज्ञान, कौशल या व्यावसायिक विशेषज्ञता के रूप में है जो शिक्षण के सफल अभ्यास के लिए उपयोगी मानी जाती है।"[6]

गेज और ब्राउन ने दक्षता को परिभाषित करते हुए कहा है कि "यदि शिक्षण को व्यवसाय माने तो दक्षता शिक्षक के प्रभावी सम्प्रेषण को कहते हैं।"[7]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कह सकते है कि शिक्षण दक्षता एक प्रकार से शिक्षकों के अन्दर वह गुण है जो शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को उत्तम बनाने का कार्य करती है। दक्षता शिक्षण की कला को प्रभावी बनाती है। कुछ व्यक्तियों में उत्तम शिक्षण कार्य करने के लिए आवश्यक गुण तथा योग्यताएँ जन्मजात होती हैं जिनके कारण वह एक उत्तम शिक्षक बनने में सफल होते हैं। यह योग्यता जन्मजात ही नहीं बल्कि कार्य करने में उसके समुपयुक्तता के भाव को व्यक्त करती है। यदि शिक्षक में उचित शिक्षण दक्षता नहीं है तो वह न छात्रों की समस्या को हल कर सकता है और न ही प्रभावी शिक्षण कार्य कर सकता है, क्योंकि शिक्षा के उद्देश्यों को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब शिक्षक का शिक्षण कार्य प्रभावी एवं उत्कृष्ठ होता है। शिक्षक दक्षता के संबंध में आचार्य राममूर्ति समिति (1990) ने कहा है कि आज की परिस्थितियों में प्रशिक्षक कार्यक्रम को दक्षता आधारित बनाया जाना चाहिए। इसके द्वारा शिक्षकों में निम्नलिखित गुणों का विकास हो सकता हैं।[8]

1. शिक्षक में संज्ञानात्मक तथा मनःचलित पक्षों में शिक्षा देने की क्षमता।
2. सृजनात्मक कार्य तथा नवाचारों के लिए अभिवृत्ति।
3. सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया के व्यावसायीकरण के लिए तत्परता।
4. विशेष क्षेत्रों के लिए योग्यता।
5. विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था में अपनी भूमिका की समझदारी।

संबंधित साहित्य अध्ययन :- किसी भी कार्य की शत् प्रतिशत सफलता के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को उस विषय क्षेत्र का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इसी प्रकार किसी भी अनुसन्धान कार्य की अच्छी सफलता के लिए शोधकर्ता को सम्बन्धित सामग्री का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन के अभाव में शोधकर्ता का कार्य बिना नाविक के नाव के समान है। इसके बिना वह उचित दिशा में एक भी कमद आगे नहीं बढ़ा सकता है। संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण के अंतर्गत निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

बास्करन, पी. पीटर[9] ने 'इन्फ्लुएन्स आफॅ सॉफ्ट स्किल ऑन टीचिंग कम्पेटेंसी ऑफ हाईस्कूल टीचर्स' शोध कार्य के अंतर्गत प्रतिदर्श के रूप में 1000 शिक्षकों का चयन यादृच्छिक विधि से किया। प्रदत्तो के संकलन के लिए शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित शिक्षण दक्षता मापनी का प्रयोग किया गया। अध्ययन में शोध विधि के रूप में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। सांख्यिकीय प्रविधियों के रूप में मध्यमान,टी-परीक्षण, अनोवा, काई-वर्ग, सहसम्बन्ध का प्रयोग प्रदत्तो के विश्लेषण हेतु किया गया। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षो से ज्ञात हुआ कि -हाईस्कूल के महिला एवं पुरूष शिक्षकों में उनके संचार के आयाम में सार्थक अन्तर नहीं है। लेकिन हाईस्कूल के महिला एवं पुरूष शिक्षकों की प्रेरणा, योजना, प्रबन्धन, व्यक्तित्व, और शिक्षण दक्षता के विभिन्न आयामों में सार्थक अन्तर है। ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों की योजना, प्रेरणा, विषय योग्यता, सीखने की सामग्री का उपयोग, संचार, व्यक्तित्व और शिक्षण दक्षता के आयामों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। किन्तु उनकी प्रस्तुति, संगठन, कक्षा प्रबन्धन और शिक्षण दक्षता के आयामों में सार्थक अन्तर है।

एंटोनी, सगाया रूबान ए.[10] ने 'बी.एड. प्रशिक्षुओं की शिक्षण दक्षता पर व्यक्तित्व गुण और आधुनिकता के प्रभाव का अध्ययन' शीर्षक पर शोधकार्य किया। प्रतिदर्श के रूप में 987 बी.एड. प्रशिक्षुओं का चयन यादृच्दिक विधि से किया। प्रदत्तों के संकलन के लिए शीजा वी. टाइरस और अन्नराज द्वारा निर्मित शिक्षण दक्षता मापनी का प्रयोग उपकरण के रूप में प्रयोग किया। शोध विधि के रूप में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। संकलित प्रदत्तो के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय विधियों में मानक विचलन, टी-परीक्षण, अनोवा, काई-वर्ग परीक्षण, सहसम्बन्ध का प्रयोग किया गया। अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट हुआ कि-पुरूष एवं महिला बी.एड. प्रशिक्षुओं के बीच उनकी शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। शहरी एवं ग्रामीण बी.एड. प्रशिक्षुओं के बीच उनकी शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। स्नातक एवं स्नातकोत्तर बी. एड. प्रशिक्षुओं के बीच उनकी शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

कार्तिक, प्रियंका एवं अहूजा, मलविन्दर[11] ने 'वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित कॉलेजो के महिला एवं पुरूष प्रशिक्षणार्थियों

की शिक्षण दक्षता का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक पर शोधकार्य किया। प्रस्तुत अध्ययन में यादृच्छिक विधि से मेरठ जनपद से 50 स्ववित्तपोषित बी.टी.सी. प्रशिक्षुओं एवं 50 वित्तपोषित बी.टी.सी. प्रशिक्षुओं का चयन न्यादर्श हेतु किया। प्रदत्तो के संकलन के हेतु बी.के.पासी और एम.एस.ललिता द्वारा निर्मित शिक्षण दक्षता मापनी का उपकरण के रूप में प्रयोग किया। सांख्यिकीय विधियों के रूप में मध्यमान, मानक विचलन, टी-परीक्षण एवं टी-अनुपात का प्रयोग प्रदत्तो के विश्लेषण हेतु किया गया। निष्कर्ष स्वरूप प्राप्त हुआ कि- स्ववित्त पोषित संस्थान के बी.टी.सी. प्रशिक्षुओं का पूर्व अनुदेशन शिक्षण कौशल के उपयोग में अधिक दक्ष पायी गये। वित्तपोषित संस्थान के प्रशिक्षुओं की अपेक्षा स्ववित्त पोषित संस्थान के प्रशिक्षुओं का शिक्षण दक्षता पर अनुदेशन शिक्षण कौशल श्रेष्ठ था। महिला बी.टी.सी. प्रशिक्षुओं की अपेक्षा पुरूष बी.टी.सी. प्रशिक्षु पूर्ण अनुदेशन शिक्षण कौशल में अधिक दक्ष पाये गये।

जन, कौनसार[12] ने 'माध्यमिक स्कूल के सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन' किया। अध्ययन में कश्मीर डिवीजन के 100 माध्यमिक शिक्षकों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया। प्रदत्तों के संकलन के लिए बी.के. पासी एवं एम.एस.ललिता द्वारा निर्मित शिक्षण दक्षता मापनी का प्रयोग किया। अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु साख्यिकीय विधियों के रूप में माध्य, प्रमाप विचलन तथा टी परीक्षण का प्रयोग किया। अध्ययन के परिणाम स्वरूप सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर पाया गया। सरकारी शिक्षकों की तुलना में गैर सरकारी शिक्षकों की अच्छी शिक्षण दक्षता थी।

ठोंबर, सुनीता[13] ने 'म.प्र. राज्य के इन्दौर जिले में बी.एड. प्रशिक्षुओं के बीच शिक्षण दक्षता, व्यक्तित्व गुण और मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक पर पी-एच.डी. स्तरीय शोधकार्य किया। अध्ययन में शोधकत्री ने इन्दौर जिले के सात ब्लॉक से 400 बी.एड. शिक्षक प्रशिक्षुओं का चयन साधारण यादृच्छिक विधि से किया। प्रदत्तों के संकलन कि लिए बी.के.पासी एवं एम.एस.ललिता द्वारा निर्मित शिक्षण दक्षता मापनी का प्रयोग किया गया। अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। संकलित प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, टी-परीक्षण, प्रतिशत एवं काई वर्ग परीक्षण का प्रयोग किया गया। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों से स्पष्ट हुआ कि- बी.एड. शिक्षक प्रशिक्षुओं की शिक्षण दक्षता का उनके समूह के बीच सार्थक अन्तर नहीं है। ग्रामीण एवं शहरी बी.एड. शिक्षक प्रशिक्षुओं की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर पाया गया। महिला एवं पुरूष बी.एड. शिक्षक प्रशिक्षुओं की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

सोंदरी, गाना एम.[14] ने 'माध्यमिक स्कूल शिक्षकों की शिक्षण दक्षता पर विद्यालय वातावरण एवं संवेगात्मक बुद्धि का प्रभाव' शीर्षक पर पी-एच.डी. स्तरीय शोध अध्ययन किया। अध्ययन में 728 माध्यमिक स्कूल शिक्षकों का चयन यादृच्छिक विधि से किया। प्रदत्तों के संकलन के लिए शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित शिक्षण दक्षता मापनी का प्रयोग किया गया। शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों के सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु मध्यमान, टी-परीक्षण, एनोवा, सहसम्बन्ध का प्रयोग किया गया। अध्ययन में माध्यमिक स्कूल के महिला एवं पुरूष शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं उसके आयामों में सार्थक अन्तर पाया गया। महिला शिक्षकों की अपेक्षा पुरूष शिक्षकों कि शिक्षण दक्षता और इसके आयामों- उपयुक्त तकनीकी का उपयोग, प्रभावी शिक्षण, प्रभावी शिक्षण सामग्री का उपयोग में बेहतर पाये गये। माध्यमिक स्कूल के ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं उसके आयामों में सार्थक अन्तर पाया गया। शहरी शिक्षकों की अपेक्षा ग्रामीण शिक्षकों में शिक्षण दक्षता और इसके आयामों-उपयुक्त तकनीकी का उपयोग, प्रभावी शिक्षण, प्रभावी शिक्षण सामग्री का उपयोग में बेहतर पाये गये। माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के शिक्षण के माध्यम एवं उनके शिक्षण दक्षता और इसके आयामों में सार्थक अन्तर पाया गया। अंग्रेजी माध्यम के शिक्षकों की अपेक्षा तमिल माध्यम शिक्षक बेहतर पाये गये। माध्यमिक स्कूल के शिक्षकों की शैक्षणिक योग्यता के बीच उनकी शिक्षण दक्षता और इसके आयामों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

वर्मा, एन.[15] ने 'उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य का उनकी शिक्षण दक्षता और कार्य सन्तुष्टि के साथ संबंध का विश्लेषणात्मक अध्ययन' शीर्षक पर शोधकार्य किया। अध्ययन में स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिचयन विधि के द्वारा कानपुर जनपद के माध्यमिक स्कूलों में से 600 शिक्षकों (सरकारी, गैर सरकारी एवं अंग्रेजी माध्यम) का न्यादर्श के रूप में चयन किया गया। प्रदत्तों के एकत्रीकरण के लिए बी.के. पासी एवं एम.एस.

ललिता द्वारा निर्मित प्रमापीकृत मापनी का प्रयोग किया गया। अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। अध्ययन में संकलित प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय विधियों के रूप में मध्यमान, प्रसरण विश्लेषण, प्रसरण विश्लेषणोपान्त टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषण के फलस्वरूप ज्ञात हुआ कि- सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण योग्यता में सार्थक अन्तर है। गैर सरकारी विद्यालयों एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर है। सरकारी विद्यालयों एवं अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर है। सरकारी विद्यालयों एवं गैर सरकारी विद्यालयों की शिक्षिकाओं की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर है। सरकारी विद्यालयों एवं अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों की शिक्षिकाओं की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर है।

राजोत्या, नलिनी[16] ने माध्यमिक स्तरीय शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं प्रतिबद्धता का उनके प्रदर्शन क्षेत्र पर प्रभाव- एक अध्ययन विषय पर पी-एच.डी. स्तरीय शोध कार्य वनस्थली विद्यापीठ विश्वविद्यालय में किया। शोधकर्ता ने न्यादर्श के रूप में जयपुर जिले के तीन प्रकार के माध यमिक विद्यालयों (केन्द्रीय विद्यालय, राजकीय विद्यालय, तथा गैर राजकीय विद्यालय) में से कुल 600 शिक्षकों (300 महिला एवं 300 पुरूष) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि के माध्यम से किया। शिक्षण दक्षता मापन के लिए शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित मापनी का प्रयोग किया गया। अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय विधियों के रूप में मध्यमान, मानक विचलन, टी-मूल्य एवं सहसंबंध का प्रयोग किया गया। अध्ययन के परिणामों से पाया गया कि - केन्द्रीय विद्यालय, राजकीय विद्यालय और गैर राजकीय विद्यालय के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर तो पाया गया किन्तु सार्थकता के स्तर तक नहीं। केन्द्रीय विद्यालय, राजकीय विद्यालय और गैर राजकीय विद्यालय की शिक्षिकाओं की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। केन्द्रीय विद्यालय, राजकीय विद्यालय तथा गैर राजकीय विद्यालय के पुरूष शिक्षकों की शिक्षण दक्षता के मध्यमानों में अन्तर पाया गया किन्तु उनमें सार्थक अन्तर नहीं था। केन्द्रीय विद्यालय, राजकीय विद्यालय तथा गैर राजकीय विद्यालय के दस वर्ष का शिक्षण अनुभव रखने वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता के मध्यमानों में अन्तर पाया गया किन्तु उनमें सार्थक अन्तर नहीं था। केन्द्रीय विद्यालय, राजकीय विद्यालय तथा गैर राजकीय विद्यालय के दस वर्ष का शिक्षण अनुभव रखने वाली शिक्षिकाओं की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। केन्द्रीय विद्यालय, राजकीय विद्यालय तथा गैर राजकीय विद्यालय के दस से बीस वर्ष का शिक्षण अनुभव रखने वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर पाया गया किन्तु सार्थक अन्तर नहीं था।

अध्ययन की आवश्यकता :- वर्तमान समय में किसी भी व्यवसाय में मात्रा के अपेक्षा गुणवत्ता पर अधिक जोर दिया जाता है। शिक्षण व्यवसाय भी इससे अछूता नहीं है। आज 21वीं सदी में शिक्षक एक कमजोर कड़ी के रूप में कार्य कर रहा है, जिसका मुख्य कारण शिक्षक की शिक्षण दक्षता पर अधिपत्य न होना। इसीलिए शिक्षा की दशा दिनों-दिन खराब होती जा रही है। इसके अलावा यह भी देखा गया कि शिक्षण व्यवसाय में होने के वावजूद अधिकतर शिक्षकों में शिक्षण दक्षता का अभाव है। चूंकि जब तक एक शिक्षक को अपने शिक्षण क्षेत्र में विद्वता हासिल नहीं होगी तो वह शिक्षण को कुशलता के साथ नहीं कर सकता है। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में शिक्षा के बदलते स्वरूप ने शिक्षकों की शिक्षण दक्षता को प्रभावित किया है। शिक्षा में गुणात्मक अभिवृद्धि का एक महत्वपूर्ण घटक शिक्षण दक्षता है जो कि शिक्षण के समय परिलक्षित होता है। कक्षा में शिक्षार्थियों को समुचित रूप से शिक्षा तभी दी जा सकती है जब शिक्षक के कक्षागत व्यवहार विद्यार्थियों के अनुकूल हो। विद्यार्थियों को कक्षा में अपने विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो, साथ ही साथ शिक्षक को शिक्षण व्यवसाय के प्रति गहरी आस्था हो। वह शिक्षण कार्य को मात्र आय का स्त्रोत न मानकर उसमें पूर्ण निष्ठा रखे। इनकी व्यवसायिक तैयारी का स्तर इस तथ्य से मापा जा सकता है कि शिक्षक कितने दक्ष एवं योग्य व्यक्ति हैं और वे शिक्षण कार्य को कितनी दक्षता एवं संतुष्टि के साथ करते हैं। अब प्रश्न उठता है कि क्या 'माध्यमिक स्तर पर कार्यरत महिला एवं पुरूष शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर है? 'माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर है?'माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर है?इन्हीं प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत शोध कार्य करने का निश्चिय किया।

अध्ययन के उद्देश्य :- प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित रहे हैं :

1. माध्यमिक स्तर पर कार्यरत महिला तथा पुरूष शिक्षकों के शिक्षण दक्षता का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर के शहरी तथा ग्रामीण विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना :- प्रस्तुत अध्ययन के निमित्त निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के सन्दर्भ में निम्न परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया :

1. माध्यमिक स्तर पर कार्यरत महिला तथा पुरूष शिक्षकों के शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. माध्यमिक स्तर के शहरी तथा ग्रामीण विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन में प्रयुक्त तकनीकी शब्द

शोधकर्ता द्वारा संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण करने के उपरान्त मुख्य शब्दों को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया-

शिक्षण दक्षता : शिक्षण दक्षता से तात्पर्य शिक्षकों में सन्निहित शिक्षण करने की विशेष योग्यता एवं कार्य कुशलता की दक्षता से है।

माध्यमिक स्तर के शिक्षक : प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर के शिक्षकों से अभिप्राय वे शिक्षक जो कक्षा 9वीं एवं 10वीं स्तर के छात्रों को शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में पढ़ाते हैं।

विद्यालय प्रकार : प्रस्तुत शोध में विद्यालय प्रकार से आशय शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों से है। वे विद्यालय जो शासकीय प्राधिकरण द्वारा संचालित किये जाते है शासकीय विद्यालय कहलाते हैं और दूसरे प्रकार के विद्यालय जो व्यक्तिगत समूह द्वारा संचालित किये जाते है अशासकीय विद्यालय कहलाते हैं। इस अध्ययन में शासकीय विद्यालय से तात्पर्य वे माध्यमिक विद्यालय जो केन्द्र सरकार, राज्य सरकार द्वारा संचालित किये जाते हैं एवं अशासकीय माध्यमिक विद्यालय से तात्पर्य ऐसे विद्यालय जिन्हे न तो सरकार द्वारा किसी प्रकार की वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है और जो किसी व्यक्ति द्वारा संचालित किये जाते हैं।

विद्यालय क्षेत्र : प्रस्तुत अध्ययन में विद्यालय क्षेत्र से आशय शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों से है। जो शासकीय एवं अशासकीय संस्थाओं द्वारा संचालित किये जाते हैं।

विद्यालयी बोर्ड : विद्यालयी बोर्ड से तात्पर्य एम.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.सी. बोर्ड से है।

शोध विधि :- समस्या की प्रकृति के आधार पर शोध हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

स्वतन्त्र चर- लिंग, विद्यालय प्रकार, विद्यालयीन क्षेत्र।

परतन्त्र चर- शिक्षण दक्षता।

अध्ययन के स्त्रोत :- अध्ययन के स्त्रोत मध्यप्रदेश राज्य के एम.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.सी. बोर्ड माध्यमिक स्तर में पढ़ाने वाले शिक्षक हैं।

न्यादर्श :- प्रस्तुत शोधकार्य में जनसंख्या के रूप में मंदसौर जिले के 11 शासकीय विद्यालय (शासकीय हाईस्कूल, नाटाराम, शासकीय हाईस्कूल विशानिया, शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, पिपलिया मंडी, शासकीय बालक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, पिपलिया मंडी, शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, मल्हारणढ़, शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, नारायणगढ़, केन्द्रीय विद्यालय, मंदसौर, लौहपुरूष सरदार वल्लभभाई पटेल शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, मंदसौर, शासकीय नूतन हाईस्कूल, मंदसौर, शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, मंदसौर, शासकीय हाईस्कूल, गुजरदा,) एवं 10 अशासकीय विद्यालय (इंडियन पब्लिक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, नारायणगढ़, एम.पी. पब्लिक स्कूल, पिपलिया मंडी, नेचुरल पब्लिक स्कूल, पिपलिया मंडी, मंदसौर इंटरनेशनल, स्कूल, मंदसौर, डी.वी.एम. स्कूल, मंदसौर, सेंट थॉमस उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, मंदसौर, जागृति हायर सेकेण्डरी स्कूल, पाटीदार हार्ह स्कूल, साबाखेडा, दशपुर विद्या मंदिर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, मंदसौर, श्री दिगम्बर जैन कन्या उ. मा. विद्यालय, मंदसौर) का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा किया गया। कुल चयनित न्यादर्श 171 (80 पुरूष शिक्षक और 91 महिला शिक्षक) शिक्षक थे।

उपकरण

प्रस्तुत शोध में शिक्षण दक्षता मापन के लिए बी.के. पासी एवं एम.एस. ललिथा[16] द्वारा निर्मित 'जनरल टीचिंग कॉम्पीटेन्सी स्केल' का उपयोग किया गया। इस मापनी में 21 कथन है, अंकों का विस्तार 21 से 147 तक हैं। **प्रस्तुत** शिक्षण दक्षता मापनी को बी.के. पासी ने पांच आयामों (योजना, प्रस्तुतीकरण, समापन, मूल्यांकन, प्रबंधकीय) में वर्गीकृत किया है।

उपकरण का प्रशासन :- प्रस्तुत मापनी का प्रशासन शोधकर्ता द्वारा स्वयं किया गया। शोधकर्ता ने चयनित विद्यालयों से शिक्षकों को पढ़ाते समय उनके शिक्षण कौशल के आधार पर स्वयं उनकी कक्षा में उपस्थित रह कर उन्हें रेंटिग प्रदान की।

अंकन प्रक्रिया :- प्रस्तुत मापनी में शिक्षकों का रेंटिग प्रदान हेतु 1 से 7 रेंटिग स्केल का प्रयोग किया गया। **विश्वसनीयता :-** इस रेटिंग स्केल की विश्वसनीयता 0. 91 प्राप्त हुई।

वैधता :- इस रेटिंग स्केल की वैधता .82 प्राप्त हुई।

सांख्यिकीय प्रविधि :- शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत अध्ययन में सांख्यकीय प्रविधि के रूप में माध्य, प्रमाप विचलन व टी-परीक्षण प्रयोग किया गया।

प्रदत्तों का विष्लेषण तथा परिणाम :- प्रदत्तों का संकलन करने के पश्चात् प्राप्त प्रदत्तों के उद्देश्यानुसार विश्लेषण एवं व्याख्या की गई। उद्देष्यों के आधार पर निम्नलिखित परिणाम आये हैं :

तालिका 1

माध्यमिक स्तर पर कार्यरत महिला तथा पुरूष शिक्षकों की शिक्षण दक्षता की तुलना

शिक्षक	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (SD)	टी मूल्य ('t' value)	सार्थकता का स्तर
महिला	91	118.63	9.64	.858	**सार्थक अन्तर नहीं है .05 स्तर पर**
पुरूष	80	117.28	10.91		

विश्लेषण- सारणी संख्या 1 में प्रदर्शित आंकड़ों द्वारा स्पष्ट है कि महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का मध्यमान क्रमशः 118.63 व 117.28 तथा मानक विचलन क्रमशः 9.64 व 10.91 है। इन दोनों में शिक्षण दक्षता का टी-मूल्य .858 है जो .05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः यह शून्य परिकल्पना कि माध्यमिक स्तर पर कार्यरत महिला एवं पुरूष शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है को स्वीकार किया जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर पर लिंग के आधार पर महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। इस अध्ययन निष्कर्ष की पुष्टि संतोष कुमार यादव[18], राजेश कुमार पाल[19], एम. कौर एवं ए. तलवार[20], शुक्ला राय चौधरी एवं सुसन्ता राय चौधरी[21] के अध्ययन निष्कर्षों से होती है।

तालिका 2

माध्यमिक स्तर पर कार्यरत शासकीय तथा अशासकीय शिक्षकों की शिक्षण दक्षता की तुलना

शिक्षक	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (SD)	टी मूल्य ('t' value)	सार्थकता का स्तर
सरकारी	84	116.82	12.08	1.07	**सार्थक अन्तर नहीं है .05 स्तर पर**
गैर सरकारी	87	118.74	11.37		

विश्लेषण- सारणी संख्या 2 में प्रदर्शित आंकड़ों द्वारा स्पष्ट है कि शासकीय एवं अशासकीय शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का मध्यमान क्रमशः 116.82 व 118.74 और मानक विचलन क्रमशः 12.08 व 11.37 है। इन दोनों में शिक्षण दक्षता का टी-मूल्य 1.07 है जो .05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः यह शून्य परिकल्पना कि माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है को स्वीकार किया जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। प्रस्तुत निष्कर्ष की पुष्टि नलिनी राजोत्या[22], एम. कौर एवं ए. तलवार[23] तथा ए. वर्मा[24] के अध्ययन निष्कर्षों से होती है।

तालिका 3

माध्यमिक स्तर पर कार्यरत शहरी तथा ग्रामीण शिक्षकों की शिक्षण दक्षता की तुलना

शिक्षक	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (SD)	टी मूल्य ('t' value)	सार्थकता का स्तर
शहरी	96	119.28	12.58	.328	**सार्थक अन्तर नहीं है .05 स्तर पर**
ग्रामीण	75	118.69	10.29		

विश्लेषण :- सारणी संख्या 3 में प्रदर्शित आंकड़ों द्वारा स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का मध्यमान क्रमशः 119.28 व 118.69 और मानक विचलन क्रमशः 12.58 व 10.29 है। इन दोनों का शिक्षण दक्षता का टी-मूल्य .328 है जो .05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः यह शून्य परिकल्पना कि माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। को स्वीकार किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। प्रस्तुत अध्ययन निष्कर्ष की पुष्टि मनीष कुमार सिंह[25], सन्तोष कुमार यादव[26], राजेश कुमार पाल[27], पेन्नीर सेलवम एस के.[28] तथा मोनू सिंह गुर्जर के अध्ययन निष्कर्षों से होती है।

निष्कर्ष :- उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर पर महिला और पुरूष शिक्षकों, शासकीय तथा अशासकीय शिक्षकों और शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में सार्थक अन्तर नही पाया गया। सम्भवतः इसका यह कारण हो सकता है कि शिक्षण दक्षता पर लिंग, शासकीय एवं अशासकीय तथा ग्रामीण एवं शहरी होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि आज इन वर्गों के शिक्षक एक साथ शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त करके व्यवसायिक कौशल भी समान ढंग से सीखते हैं और सभी को एक साथ समान सामाजिक महत्व भी दिया जाता है जिससे उनकी शिक्षण दक्षता पर उनकें लिंग, शासकीय अथवा अशासकीय तथा ग्रामीण अथवा नगरीय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। आज इन सभी वर्गों के शिक्षक अपने कक्षा व विषय के प्रति समान रूप से सक्रिय रहते हैं, तथा अपने विद्यार्थियों के भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए निरन्तर प्रयासरत् रहते हैं। शिक्षण में नवाचार विधियों का प्रयोग भी समय-समय पर करते रहते हैं ताकि अपने विद्यार्थियों को नवीन ज्ञान एवं अनुभवों से अवगत करा सकें।

शोध का परिसीमन :- प्रस्तुत शोध मध्यप्रदेश के मंदसौर जिले में किया गया। शोध में केवल एम.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.ई. बोर्ड में पढ़ाने वाले शिक्षकों को ही सम्मिलित किया गया है। प्रस्तुत शोध में नवोदय विद्यालय के शिक्षकों को सम्मिलित नहीं किया गया।

सन्दर्भ

1. सक्सेना, एन.आर. स्वरूप, *'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त'*, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ, 2013, पृ. 189.192
2. स्वामी, आर.के. *'शिक्षण कुशलता के आयाम'*, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2012, पृ. 103
3. मिश्रा, सुनीता एवं संजना यादव, *'वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में अध्यनरत् बी.एड. प्रशिक्षुओं की शिक्षण अभिक्षमता का उनकी शिक्षण दक्षता पर प्रभाव'*, परिप्रेक्ष्य वर्ष 21, अंक 2, 2014, पृ. 90-91 Retrieved from www.nuepa.org
4. Possi, B.R., M.S. Lalitha, *'Becoming Better Teacher : Micro Teaching Approach'*, Sahitya Mudranalaya, Ahmedabad, 1976.
5. उद्धृत शुक्ला, शशि, *'टीचिंग कम्पेटेंसी, प्रोफेशनल कमिटमेंट एवं जॉव सेटिस्फेक्शन-ए स्टडी आफ प्राइमरी स्कूल टीचर्स'*, आई ओ एस आर जर्नल ऑफ रिसर्च एवं मैथर्ड इन एजूकेशन,(4)3, 2014,पृ. 44-64. Retrieved from http://www.iosrjournal.org
6. उद्धृत हेवकेव और विल्सन (1956), *'टीचिंग एण्ड टीचर एजुकेशन जर्नल इलेसिरेरे'* Retrived from www.erie.ede.ed.gov
7. गेज एवं ब्राउन, *'इन टीचिंग फॉर कम्यूनिकैटिम कम्पेटेन्सी, क्लासरूम एक्टिविटिज पब्लिस्ड बांड'*, ERIC, 1975] Retrived from www.erie.ed.gov
8. स्वामी, आर.के. पूर्वोकत, पृ. 103

9. बास्करन, पी. पीटर, *'इन्फ्लुएन्स आर्फ सॉफ्ट स्किल ऑन टीचिंग कम्पेटेंसी ऑफ हाईस्कूल टीचर्स'*, पी-एच.डी.,अप्रकाशित शोध प्रबन्ध मनोमनियम सुन्दरम विश्वविद्यालय, तिरूनेलवेली, तमिलनाडु 2017 पृ. 38
10. एंटोनी, सगाया रूबान, *'बी.एड. प्रशिक्षुओं की शिक्षण दक्षता पर व्यक्तित्व गुण और आधुनिकता के प्रभाव का अध्ययन'*, पी-एच.डी.,मनोमनिय सुन्दरन विश्वविद्यालय, तिरूनेलवेली, तमिलनाडु, 2016, पृ. 18.
11. कार्तिक, प्रियंका एवं मलविन्दर अहूजा, *'वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित कॉलेजो के महिला एवं पुरूष प्रशिक्षणार्थियों की शिक्षण दक्षता का तुलनात्मक अध्ययन'*, International Journal of Education & Multidisciplinary Research, Vol.4,Issue.2, 2016 PP.278-288 Retrieved from http://research-advances.org/index.php/IJEMS
12. जन, कौनसार, *'माध्यमिक विद्यालयों के सरकारी एवं गैर सरकारी अध्यापकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन'*, एन इंटरनेशनल जर्नन ऑफ मल्टीडिसपेनरी रिसर्च, खण्ड-2 अंक-1 पृ. 201, 2016, Retrieved from http://www.umr.com
13. ठोंबरे, सुनीता *'म.प्र. राज्य के इन्दौर जिले में बी.एड. प्रशिक्षुओं के बीच शिक्षण दक्षता, व्यक्तित्व गुण और मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन'*, अप्रकाशित पी-एच.डी., शोध प्रबंध श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टिबडेवाल विश्वविद्यालय, झुंझनु राजस्थान, 2016 पृ. 138
14. सोंदरी, गाना एम., *'माध्यमिक स्कूल शिक्षकों कि शिक्षण दक्षता पर विद्यालय वातावरण एवं संवेगात्मक बुद्धि का प्रभाव'*, एपी-एच.डी. शोध ग्रंथ, मनोमनिय सुन्दरम विश्वविद्यालय, तिरूलेनवेली, तमिलनाडु 2016 पृ.72-210
15. वर्मा, एन., *'उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य का उनकी शिक्षण योग्यता और कार्य सन्तुष्टि के साथ संबंध का विश्लेषणात्मक अध्ययन'*, पी-एच. डी. शोध प्रबंध, श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टिबडेवाल विश्वविद्यालय, झुंझनू ,राजस्थान, 2015.
16. राजोत्या, नलिनी, *'माध्यमिक स्तरीय शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं प्रतिबद्धता का उनके प्रदर्शन क्षेत्र पर प्रभाव- एक अध्ययन'*, पी-एच.डी., अप्रकाशित शोधकार्य, वनस्थली विद्यापीठ विश्वविद्यालय मान्य संस्था, वनस्थली, राजस्थान, 2012.
17. पासी बी.के. एवं एम.एस.ललिथा, *'जनरल टीचिंग कॉम्पीटेन्सी स्केल'*, एच.पी.भार्गव बुक हाउस, आगरा, 2011
18. यादव, सन्तोश कुमार *'माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षित तथा अप्रशिक्षित अध्यापकों की शैक्षिक अभिवृत्ति मूल्य एवं शिक्षण दक्षता का तुलनात्मक अध्ययन'*, पी-एच.डी.,वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2011, पृ. 82-184.
19. पाल राजेश कुमार, *'सेवा पूर्व आरम्भिक अध्यापकों की शिक्षण दक्षता, अभिक्षमता तथा उनकी सेवाकालीन शिक्षण दक्षता में संबंध का एक अध्ययन'*, पी-एच.डी., वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2012 पृ. 105-149.
20. कौर, एम. एवं ए. तलवार, *'माध्यमिक स्कूल शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का सांवेगिक बुद्धि में संबंध'*, International Journal of Learning, Teaching Educational Research,Vol.3,No.1, 2014 pp.83-90 Retrieved from http://citeseerx.ist.psu.edu/viewdoc/download
21. चौधरी, शुक्ला रॉय, एवं सुसन्ता रॉय चौधरी *'Teaching Competency of Secondary Teacher Educators In Relation To Their Metacognition Awarnes'*, International Journal of Humanity and Social Invention Vol.4, Issue.1, 2015 PP.17-23, Retrieved From http://www.ijhssi
22. राजोत्या, नलिनी *'माध्यमिक स्तरीय शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं प्रतिबद्धता का उनके प्रदर्शन क्षेत्र पर प्रभाव एक अध्ययन'*, पी-एच.डी., वनस्थली विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वनस्थली, राजस्थान, 2012 पृ.98-160.
23. कौर, पूर्वोक्त.
24. वर्मा, एन. *'उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य का उनकी शिक्षण योग्यता और कार्य सन्तुष्टि के साथ संबंध का विश्लेषणात्मक अध्ययन'*, पी-एच. डी., श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टिबडेवाल विश्वविद्यालय, झुंझनू, राजस्थान 2015, पृ. 98-160, 81-135.
25. सिंह, मनीश कुमार *'पूर्वी उ.प्र. के माध्यमिक स्तर के अध्यापकों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति, शिक्षण दक्षता और कार्य संतुष्टि का एक अध्ययन'*, पी-एच.डी., वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विष्वविद्यालय, जौनपुर, 2011 पृ. 75-130
26. यादव, पूर्वोक्त.
27. पाल, पूर्वोक्त.
28. सेलवम, एस.के., पेन्नीर *'हाईस्कूल अध्यापकों के बीच शिक्षण दक्षता और कार्य सन्तुष्टिः एक अध्ययन'*, Voice of Research, Volume 1 Issue 2, 2015 PP.1-5 Retrieved from http://voiceofresearch.blogspot.com/2012/06/teaching-competency-and-job.html
29. गुर्जर, मोनू सिंह, *'माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षकों की व्यावसायिक दक्षता को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन'*, परिप्रेक्ष्य वर्ष 21, अंक 3, 2014, पृ.101-108 Retrieved from http://www.nuepa.org

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी–जून 2019 UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

पंचायती राज संस्थाओं में शैक्षिक योग्यता का ग्रामीण विकास कार्यो पर प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ शिवकरण निमल

पंचायत लोकतांत्रिक व्यवस्था की प्रथम आधारभूत इकाई है। पंचायती राज व्यवस्था भारतीय ग्रामीण समाज की रीढ़ है। बिना गॉवों के विकास के देश के विकास की परिकल्पना करना निरर्थक होगा। अतः गॉवों का विकास करना अत्यावश्यक है, कारण कि भारत की अधिकांश जनता ग्रामों में ही निवास करती हैं। भारत में प्राचीनकाल से ही पंचायतों का अस्तित्व विद्यमान है। वैदिककाल में सभा और समिति नामक दो संस्थाओं का वर्णन मिलता है। रामायणकाल, महाभारत काल, मुगलकाल, ब्रिटिशकाल में भी पंचायती राज संस्थाओं का वर्णन मिलता है। अतः निरन्तर बहने वाली नदी की तरह पंचायती राज भारत में प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान तक किसी न किसी रूप में विद्यमान है। आजादी के बाद में बलवंत राय मेहता समिति, अशोक मेहता समिति और लक्ष्मीमल सिंघवी समिति के माध्यम से पंचायती राज संरचना को काफी बल मिला। अंततः 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से सम्पूर्ण देश में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था को अपनाया गया। राजस्थान में भी राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 के माध्यम से सम्पूर्ण राजस्थान में इस व्यवस्था को लागू किया गया। राजस्थान में 2014 में हुए चुनावों में सरपंच, पंचायत समिति सदस्य और जिला परिषद् के सदस्यों के लिए शैक्षिक योग्यता के प्रावधानों को लागू किया गया। इस शोध पत्र में यह जानने का प्रयास किया गया है, कि क्या पंचायती राज व्यवस्था में शैक्षिक योग्यता ग्रामीण विकास कार्यो को सकारात्मक रूप में प्रभावित करती है।

भारत गॉवों का देश है। भारत में ज्यादातर लोग गॉवों में निवास करते है। इस प्रकार गांवों का विकास किए बिना देश के विकास की कल्पना करना अधूरा हैं। हमारे देश के गांवों के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्रों में पंचायतों की भूमिका महत्वपूर्ण है। 'पंचायत' ही लोकतांत्रिक व्यवस्था की प्रथम आधारभूत इकाई हैं। पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं ग्रामीणों की सक्रिय सहभागिता को सुनिश्चित करके ग्रामीण विकास के अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करना संभव है। अतः ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज को एक ही सिक्के के दो पहलू कहा जा सकता है।[1] पंचायती राज व्यवस्था भारतीय ग्रामीण समाज की रीढ़ हैं। वर्तमान में पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।[2] पंचायत शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द 'पंचायतन्' से हुई है। पंचायत 'पंच' और 'आयत' दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसका अर्थ पांच सदस्यों की एक ऐसी संस्था से है, जो गॉवों के लोगों द्वारा निर्वाचित होती है। अन्य शब्दों में कहा जाये तो पंचायतें लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का ही एक रूप है, जिसमें प्रशासनिक एवं सत्ता के अधिकारों को केन्द्र से गॉवों को तरफ हस्तांरित किया जाता है।[3] शाब्दिक दृष्टि से पंचायती राज शब्द हिन्दी भाषा के दो शब्दों पंचायत और राज से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है-पांच जनप्रतिनिधियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र तथा परमेश्वर) का समूह। एक प्रसिद्ध कहावत भी है–'पांच पंच मिल कीजै, काज, हारे जीते होइे न लाज'। अर्थात् पंचों के निर्णय में हार अथवा जीत में लज्जा या शर्मिंदगी नहीं होती है।[4] भारत में प्राचीन पंचायती राज के विषय में आधुनिक साम्यवादी विचारधारा के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स ने भी अपनी कृति पूंजी(दास कैपिटल) में लिखा है-प्राचीन काल से चले आ रहे ये छोटे–छोटे भारतीय ग्राम समुदाय धार्मिक ढंग से संयुक्त स्वामित्व तथा किसान और मजदूर के श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित है।[5] सन् 1830 में सर चार्ल्स मैटकाफ ने भारत के आत्मनिर्भर गॉवों को 'लघु गणराज्य' का नाम दिया था।[6] अथर्ववेद में 'सभा' और 'समिति' को प्रजापति की दो युग्म कृतियॉं कहा गया है। अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए राजा को 'समिति' की पुष्टि प्राप्त करनी पड़ती थी।[7] महाकाव्य काल में ग्राम या गॉव ही प्रशासन की इकाई थी और ग्रामणी इसका प्रमुख था।[8] रामायण और महाभारत काल में भी पंचायत जैसी संस्थाओं का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। अपेक्षाकृत छोटी बस्तियों को 'घोष' लगभग 1000 परिवारों की बस्तियों को 'ग्राम' कहा जाता था, ग्रामीणी इनका मुखिया होता था।

❑ शोध अध्येता, राजनीति विज्ञान विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

जिसकी प्रमुख भूमिका विवादों को निबटाना, कर एकत्रित करना, ग्रामों का हिसाब रखना एवं अपराधों को रोकना था।[9] बौद्ध काल में पंचायतें अपने उत्कृष्ट स्वरूप में मौजूद थी।[10] मौर्यकाल में स्थानीय शासन में ग्राम शासन की निम्नतम इकाई जो कि ग्रामीक के अधीन थी।[11] गुप्तकालीन लेखों में 'ग्रामपति' एवं 'विश्वपति' के संदर्भ हैं जो क्रमशः ग्राम तथा जिले के प्रभारी होते थे।[12] सल्तनत काल में राज्य की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' थी।[13] मुगलकाल में स्थानीय शासन सुचारू रूप से संचालित किया जाता था। अबुल फजल द्वारा लिखित आईन-ए-अकबरी में नगरीय जीवन और प्रशासन का समुचित वर्णन किया है। नगर का प्रशासन जिस पदाधिकारी के जिम्में होता था, उसे कोतवाल के नाम से संबोधित किया जाता था। जिसे दण्ड व्यवस्था पुलिस प्रशासन तथा वित्तीय मामलों में सर्वोपरि सत्ता प्राप्त होती थी। उत्पादन, क्रय-विक्रय, जल व्यवस्था, विदेशी नागरिकों की गतिविधियों को नियंत्रित करना, करारोपण तथा अन्य कार्यो को सम्पादित करने का अधिकार भी प्राप्त था।[14] ब्रिटिश काल के अन्तर्गत स्थानीय शासन की इकाईयों को कर लगाने का अधिकार प्राप्त था। इन्हें लोकतंत्र की पाठशाला भी कहा जा सकता है। ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन का प्रारम्भ 1687 ईस्वी से माना जा सकता है।[15] 1880 ईस्वीं में लिटन स्ट्रेची की अध्यक्षता में गठित दुर्भिक्ष आयोग ने रेखांकित किया कि ग्राम स्तर पर सुदृढ़ पंचायती राज व्यवस्था के बिना प्राकृतिक आपदाओं से सामना करना कठिन कार्य है।[16] ब्रिटिशकाल में इनका श्रेय सर्वाधिक उदारवादी लार्ड रिपन की नीतियों माना जा सकता है।।[17] स्थानीय स्वायतशासी संस्थाओं की स्थिति की जॉच करने करने के लिए 1907 ईसवीं में सी.ई.एच. हाबहाउस की अध्यक्षता में राजकीय विकेन्द्रीकरण आयोग (शाही आयोग) का गठन किया गया।[18] भारत शासन अधिनियम, 1919 में स्थानीय शासन का विभाग प्रांतीय सरकारों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को देकर इसे उत्तरदायी बनाया गया।[19] 1947 में देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् 26 जनवरी 1950 को भारत में नया संविधान प्रवर्तित हुआ। इस संविधान के अंतर्गत स्थानीय स्वायत शासन को राज्य सूची का विषय घोषित किया गया। संविधान के अंतर्गत स्थानीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र में अब तक महत्वपूर्ण रही। संविधान निर्माता इस तथ्य से भली भांति अवगत थे कि देश की 80 प्रतिशत आबादी ग्रामों में निवास करती है।[20] महात्मा गांधी जी की अवधारण भी पंचायती राज को सशक्त बनाने की थी। महात्मा गांधी के प्रमुख विचार सूत्र रूप में इस प्रकार थे- ''पंचायत राज की स्थापना होने पर जनमत वह कार्य कर दिखाएगा जो हिंसा से नहीं हो सकता हैं। ये राजे, महाराजे, जमींदार और पूँजीपति उसी समय तक प्रभावशाली है जब तक कि जनसाधारण अपनी शक्ति से अपरिचित है जिस दिन लोग जमींदारी या पूंजीवाद की बुराईयों से असहयोग प्रारम्भ कर देंगे, उसी दिन से उनकी समाप्ति की शुरूआत हो जाएगी।''[21] संविधान सभा में भी ग्राम पंचायतों की अवधारणा को लेकर काफी विचार विमर्श किया गया। 2 अक्टूम्बर, 1952 को तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू की पहल पर सामुदायिक विकास कार्यक्रम को प्रारम्भ किया गया। सामुदायिक विकास का पहला स्थापित कार्यक्रम 'राष्ट्रीय प्रसार सेवा' था जो 1953 में शुरू किया गया था। इस कार्यक्रम का उद्देश्य देश के आर्थिक विकास एवं सामाजिक पुनरूद्धार कार्यक्रमों के प्रति जनता में रूचि पैदा करना तथा उसकी भागीदारी को बढ़ाना था।[22] 1957 में बलवंत राय मेहता समिति की नियुक्ति की गई, जिसका आशय सामुदायिक विकास परियोजना एवं देश सेवा प्रसार योजना का अध्ययन और आंकलन करना था। इसके साथ समिति को योजना की क्रियान्विति से समाज पर पड़े प्रभाव जागृति तथा ऐसे संस्थागत ढांचे का प्रारूप भी देना था जिससे कि ग्रामीण जगत् में सामाजिक-आर्थिक क्रांति का मार्ग प्रशस्त हो सके।[23] बलवंत राय मेहता समिति ने जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उसमें लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। बलवंत राय मेहता को भारत के 'पंचायती राज व्यवस्था' वास्तुकार या शिल्पी कहा जाता है।[24] जनता पार्टी की सरकार ने 1977 में पंचायती राज के संबंध में अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया, जिसने अपनी रिपोर्ट 21 अगस्त, 1978 को प्रस्तुत की। जिसमें खासतौर से द्विस्तरीय प्रणाली की सिफारिश की थी।[25] भारत सरकार ने 16 जून 1986 को श्री लक्ष्मीमल सिंधवी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन करके उसे दायित्व दिया गया कि वह पंचायती राज के पुनर्जीवन के संदर्भ में एक विचार पत्र (कन्सैप्ट पेपर) प्रस्तुत करें, जिसके आधार पर इस दिशा में सार्थक प्रयास किये जा सकें। इस समिति ने 28 जुलाई 1986 को कार्य प्रारम्भ करकें 5 नवम्बर 1986 को विचार पत्र का प्रारूप प्रस्तुत किया।[26] इसके बाद 22 दिसम्बर 1992 को पी.वी.नरसिंम्हा राव नेतृत्व में बनी सरकार ने 73 वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में पेश किया गया जो कि 64वें संविधान संशोधन

विधेयक की ही बदला हुआ रूप था।[27] भारत में स्थापित स्थानीय स्वशासन के संवैधानिक प्रावधानों के तहत ज्यादातर राज्यों में तीन स्तर विद्यमान है। प्रथम स्तर जिला, द्वितीय पंचायत समिति, तृतीय ग्राम पंचायत। स्थानीय स्वशासन का मध्यवर्ती स्तर पंचायत समिति कहलाता है। देश के सभी राज्यों में मध्यवर्ती स्तर के नामों में विभिन्नता पाई जाती है। आंध्र प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, उड़ीसा और राजस्थान में उसे पंचायत समिति; पश्चिम बंगाल में आंचलिक परिषद्; गुजरात में तालुका परिषद्; मध्यप्रदेश में जनपद पंचायत; कर्नाटक में तालुका विकास परिषद् और तमिलनाडु में पंचायत संघ परिषद् कहते है।[28] भारत के अन्य क्षेत्रों की भाँति ही राजस्थान में भी ग्राम पंचायते प्राचीन काल से विद्यमान थीं। राजस्थान से प्राप्त लेखों से यह ज्ञात होता है कि यहाँ पर वे कार्यकारिणी समितियाँ, या इन्हें ग्राम पंचायत कहना अधिक सही होगा, विद्यमान थी। वे ''पंचकुली'' कहलाती थीं और ये मुखिया की अध्यक्षता जिसे महन्त कहा जाता था, कार्य करती थीं।[29] स्वतंत्रता के बाद 1948 में ही राजस्थान के 15 राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था विद्यमान थी। राजस्थान सरकार ने ''राजस्थान पंचायत अध्यादेश'' 1948 पारित किया और फलस्वरूप उदयपुर राज्य में निर्वाचित पंचायत की स्थापना का शुभारम्भ किया गया। 1953 में राजस्थान विधानसभा द्वारा राजस्थान पंचायत अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम पर राष्ट्रपति की सहमति मिल जाने पर यह 1 जनवरी 1954 को लागू किया गया।[30] राजस्थान सरकार द्वारा सादिक अली समिति 1963-64, गिरधारी लाल व्यास समिति, 1973 का गठन पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावशाली बनाने की एवज में किया था, परन्तु इनके प्रतिवेदन पर आंशिक कार्यवाही ही सम्पन्न हुई।[31] 73वें संविधान संशोधन अधिनियम की अनुपालना में राजस्थान में पूर्व चले आ रहे अधिनियमों को मिलाकर राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 बनाया गया, जो कि 23 अप्रैल 1994 से लागू किया गया। इस अधिनियम में पंचायत समिति में सरपंचों एवं जिला परिषद् में प्रधानों की पदेन सदस्यता का अभाव था। राजस्थान में जनवरी 2000 में इसमें संशोधन किया गया और सरपंच और प्रधान को पदेन सदस्यता प्रदान की गई।[32] इसके अतिरिक्त 2008 एवं 2014 में भी राजस्थान पंचायती राज अधिनियम में संशोधन किये जा चुके है। जिनके अनुसार वर्तमान में पंचायती राज व्यवस्था विद्यमान है।[33] इस प्रकार से राजस्थान में पंचायती राज व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन नहीं है। परन्तु 2014 के चुनावों में सरपंच, पंचायत समिति सदस्य और जिला परिषद् के सदस्यों के लिए शैक्षिक योग्यता के प्रावधान को लागू किया है। राजस्थान में लागू शैक्षिक योग्यता जिला परिषद् एवं पंचायत समिति सदस्यों के लिए 10वीं पास रखी गई है। ग्राम पंचायत के सरपंच के लिए 8वी पास तथा अनुसूचित क्षेत्रों में 5वीं पास की योग्यता रखी गई है। परन्तु वार्ड पंच के लिए किसी भी प्रकार की शैक्षिक योग्यता के प्रावधान को लागू नहीं किया गया है।[34]

साहित्यिक समीक्षा

गिरवर सिंह राठौड़ ने ''भारत में पंचायती राज'' शीर्षक पुस्तक में प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक भारत में पंचायती राज संस्थाओं का विकास क्रम दिखाया है। पंचायती राज का दर्शन, सामुदायिक विकास, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। 73वें संविधान संशोधन का विवेचन किया गया है। संविधान संशोधन के पूर्व व पश्चात् का परिवेश, पंचायत समिति की संरचना, समिति व्यवस्था, प्रशासन, निर्वाचन प्रणाली, अवधि आदि पर विस्तार से विवेचन किया हैं। पंचायती राज संस्थाओं के आय के साधन,राज्य वित्तिय आयोग,पंचायती राज संस्थाओं के लेखे व अंकेक्षण तथा वित्तीय संसाधनों की समीक्षा आदि का विवेचन किया गया हैं। इसके अतिरिक्त पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य सरकार का नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण,ग्रामीण विकास की अवधारणा, पंचायती राज विभाग के संरचनात्मक व प्रकार्यात्मक स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया हैं।[35]

ब्रजकिशोर शर्मा ने ''भारत का संविधान एक परिचय'' के अन्तर्गत 73वें व 74वें संविधान संशोधनों को अनोखा उपबंध कहा है। इसमें गांधी-विनोबा भावे के ग्राम स्वराज पर भी टिप्पणी की है। इसके अलावा 73वें व 74 वें संविधान संशोधन के सन्दर्भ में पंचायत व नगरपालिकाओं के बारे में सटीक, संक्षिप्त व स्पष्ट विवरण प्रस्तुत किया गया है।[36]

अशोक शर्मा ने ''भारत में स्थानीय प्रशासन'' शीर्षक पुस्तक के अन्तर्गत स्थानीय स्वशासन का अर्थ, स्वरूप और आधुनिक राज्य में महत्व; प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक भारत में स्थानीय स्वायत् शासन की संस्थाओं का विकास; ग्राम सभा एवं वार्डसभा, ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद् के साथ ही ग्रामीण व नगरीय संस्थाओं के कार्मिक एवं वित प्रशासन का वर्णन किया है। इसके अलावा भारत व राजस्थान में निदेशालय तथा विभाग का विवरण भी दिया गया हैं।[37]

हरिश्चन्द्र शर्मा ने ''भारत एवं विदेशों में स्थानीय सरकारें'' शीर्षक पुस्तक में आधुनिक राज्य में भारत, इंग्लैंड, अमेरिका तथा फ्रांस के स्थानीय निकायों की विशेषताओं, क्षेत्र और संरचना; स्थानीय प्राधिकरण की विचारशील एवं कार्य पालिका शाखाएं तथा उनका कार्यात्मक विस्तार; स्थानीय सरकार की वित्तीय समस्याएं और स्थानीय सरकार का भविष्य आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला हैं।[38]

नन्दलाल मिश्र ने ''नयी पंचायती राज व्यवस्था और ग्रामीण विकास (ग्राम स्वराज के विशेष सन्दर्भ में) में इंग्लैंड में स्थानीय सरकार का विकास,भारत में स्थानीय सरकार का विकास, केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण, 73वां व 74वां संविधान संशोधन, भारत में पंचायती राज व्यवस्था का वर्तमान परिदृश्य, मध्यप्रदेश में ग्राम स्वराजःयथार्थ मॉडल, गॉवों की समझ एवं गॉव की प्रमुख समस्याएं आदि पर विस्तार से लेखन किया है।[39]

वेददान सुधीर, अरूण चतुर्वेदी, गिरिराज शर्मा ने ''भारत में पंचायती राजःविचार कल्पना एवं यथार्थ'' में विभिन्न लेखकों के विभिन्न विषयों पर लिखें गए विचारों को शामिल किया है। इसमें अपने-अपने लेखें में क्रमशः प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण विचार प्रतिबिम्ब और यथार्थ इकबाल नारायण, पंचायती राज व्यवस्था वैचारिक आधार अरूण चतुर्वेदी, विकेन्द्रीकरण, पंचायती राज एवं गांधी दृष्टि आशा कौशिक, पंचायती राज ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं वर्तमान संरचना गिरधारी सिंह कुपावत, स्वातंत्रोत्तर भारत में पंचायती राज का विकास गिरिराज शर्मा, प्राकृतिक संसाधन एवं पंचायती राजनीलिमा खेतान, पंचायती राज उभरता नेतृत्व के.सी. शर्मा, प्रत्यक्ष लोकतंत्र और ग्राम सभा समस्याएं एवं समाधान संजय लोढ़ा, 73वां संविधान संशोधन बी.एम.शर्मा, पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी-एक अनुभवमूलक अध्ययन ममता जैन, विकेन्द्रीकरण,पंचायती राज तथा जन भागीदारी-केरल के अनुभव नरेश भार्गव इत्यादि ने विस्तार से प्रकाश डाला हैं।[40]

आर.पी.जोशी एवं रूपा मंगलानी ने ''पंचायती राज के नवीन आयाम राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन'' में विभिन्न लेखकों के आलेखों का विवरण दिया है। यथा- स्थानीय स्वायत संस्थाओं के संदर्भ में पंचायती राज संस्थाओं की विकास यात्रा रूपा मंगलानी, पंचायती राज व्यवस्थाःवैचारिक व नये संदर्भ अरूण चतुर्वेदी, पंचायती राज का वैचारिक दर्शन रेहाना सुल्ताना, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं पंचायती राज का विकास अरूणा भारद्वाज, नवीन पंचायती राज संरचना में पंचायत समिति की भूमिका वेदप्रकाश, पंचायती राज में प्रशिक्षण व्यवस्था राजस्थान के संदर्भ में मेधा जोशी आदि। इन सभी लेखों में पंचायती राज के किसी न किसी बिन्दु का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है।[41]

प्रस्तुत अध्ययन में उपर्युक्त पुस्तकों की पंचायती राज व्यवस्था के उद्गम एवं विकास कार्यो के संबंध में जानकारी प्राप्त की गई है। प्रस्तुत शोध विषय पर अब तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ है।

प्राक्कल्पना : शैक्षिक योग्यता पंचायती राज कार्य निष्पादन को सकारात्मक रूप में प्रभावित करती है।

शोध उद्धेश्य : प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य पंचायतों के विकास कार्यों के निष्पादन पर निर्वाचित प्रतिनिधियों की शैक्षणिक योग्यता के प्रभाव का मूल्यांकन करना हैं।

शोध प्रविधि : निदर्शन प्रस्तुत शोध कार्य हेतु राजस्थान राज्य के झुन्झुनूँ जिले की उदयपुरवाटी पंचायत समिति के प्रधान(1) व सदस्य(26) सरपंच(40) एवं दैव प्रतिचयन विधि से प्रत्येक ग्राम पंचायत से एक वार्ड अर्थात् 40 वार्ड पंचों को कुल 107 सूचनादाताओं को चयनित किया गया है। आंकड़ों के संकलन व साक्षात्कार प्रक्रिया में चयनित प्रतिनिधियों में से 20 प्रतिनिधियों की अनुपलब्धता के कारण कुल 87 प्रतिनिधियों से ही सूचनाएं संकलित की गईं। आंकड़ों का संकलन व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से साक्षात्कार अनुसूची की सहायता से किया गया। द्वितीयक ऑकड़ों के लिए स्थानीय स्वशासन से संबंधित विभिन्न पुस्तकों, गठित आयोगों की रिपोर्ट, उपलब्ध लेख एवं शोध पत्रों, पत्र पत्रिकाओं, सरकारी मासिक एवं त्रैमासिक पत्रिकाएं, विभिन्न वेबसाइट्स इत्यादि का उपयोग किया गया है।

उत्तरदाताओं का वर्गीकरण : अध्ययन क्षेत्र से कुल 87 उत्तरदाताओं ने लैंगिक स्थिति के अनुसार 44 पुरूष, 43 महिलाओं ने भाग लिया है। लैंगिक स्थिति और शैक्षिक योग्यता के अनुसार वर्गीकरण सारणी 1 व 2 में है-

तालिका संख्या 1

उत्तरदाताओं का लैंगिक वर्गीकरण

लिंग	संख्या	प्रतिशत
पुरुष	44	50.57
महिला	43	49.43
कुल	87	100.0

तालिका संख्या 2
उत्तरदाताओं का शैक्षणिक स्तर

शैक्षणिक स्तर	संख्या	प्रतिशत
साक्षर	7	8.05
निरक्षर	9	10.34
प्राथमिक	6	6.90
उच्च प्राथमिक	11	12.64
माध्यमिक	5	5.75
उच्च माध्यमिक	11	12.64
स्नातक	22	25.29
स्नातकोत्तर	16	18.39
कुल	87	100.00

क्षेत्र सर्वेक्षण के दौरान उत्तरदाताओं से निर्वाचित सरपंच एवं वार्ड पंच के पढ़े लिखे होने या शैक्षिक योग्यता का ग्राम विकास कार्यो पर प्रभावों को मापने/जानने का प्रयास किया गया। इस विषय पर ऑकड़ों से तालिका 3 के अनुसार स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के 37.9 प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत हैं कि निर्वाचित सरपंच/पंच के पढ़े लिखे होने का ग्राम विकास कार्यो पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। 60.09 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस पर पूर्ण सहमति दी है कि ग्रामीण विकास कार्यो पर सरपंच एवं वार्ड पंच के पढ़े लिखे होने से सकारात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि इस तथ्य पर असहमति 1 प्रतिशत ने व्यक्त की है। इस प्रकार व्यापक रूप में देखा जाये तो 99 प्रतिशत यह मानते हैं कि निर्वाचित सरपंच व वार्ड पंच की शैक्षिक योग्यता ग्रामीण विकास कार्यो को सकारात्मक रूप में प्रभावित करती है।

तालिका संख्या : 3
सरपंच/पंच के पढ़े लिखे होने का प्रभाव

सहमति का स्तर	संख्या	प्रतिशत
सहमत	33	37.93
पूर्ण सहमत	53	60.92
असहमत	1	1.15
पूर्ण असहमत	0	0
मालूम नहीं	0	0
कुल	87	100

दूसरे, क्या पंचायत समिति के विकास कार्यो पर निर्वाचित प्रधान के पढ़े लिखे होने से प्रभाव अच्छा पड़ता है? इस विषय पर प्राप्त ऑकड़ों से तालिका 4 के अनुसार स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के 43.7 प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत हैं कि निर्वाचित प्रधान के पढ़े लिखे होने का पंचायत समिति के विकास कार्यो पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। 50.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस पर पूर्ण सहमति दी है। दूसरी तरफ इस तथ्य पर असहमति मात्र 2.3 प्रतिशत ही है। 3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न का उत्तर मालूम नहीं दिया है। इस प्रकार व्यापक रूप में देखा जाये तो 94. 3 प्रतिशत यह मानते है कि निर्वाचित प्रधान की शैक्षिक योग्यता पंचायत समिति विकास कार्यो को सकारात्मक रूप में प्रभावित करती हैं।

तालिका संख्या : 4
प्रधानों के पढ़े लिखे होने का प्रभाव

सहमति का स्तर	संख्या	प्रतिशत
सहमत	38	43.68
पूर्ण सहमत	44	50.57
असहमत	2	2.30
पूर्ण असहमत	0	0
मालूम नहीं	3	3.45
कुल	87	100

क्या पंचायत समिति के विकास कार्यो पर निर्वाचित पंचायत समिति सदस्यों के पढ़े लिखे होने से प्रभाव अच्छा पड़ता है? इस विषय पर प्राप्त ऑकड़ों से तालिका 5 के अनुसार स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के 41.4 प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत है कि निर्वाचित पंचायत समिति सदस्यों के पढ़े लिखे होने का पंचायत समिति के विकास कार्यो पर अच्छा प्रभाव पड़ता है, 40.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस पर पूर्ण सहमति दी है तथा असहमति मात्र 10.3 प्रतिशत ने दी है। 8 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न का उत्तर मालूम नहीं दिया है। इस प्रकार व्यापक रूप में देखा जाये तो 81.6 प्रतिशत यह मानते हैं कि निर्वाचित पंचायत समिति सदस्यों की शैक्षिक योग्यता पंचायत समिति विकास कार्यो को सकारात्मक रूप में प्रभावित करती है।

तालिका संख्या : 5
पंचायत समिति के सदस्यों के पढ़े लिखे होने का प्रभाव

सहमति का स्तर	संख्या	प्रतिशत
सहमत	36	41.38
पूर्ण सहमत	35	40.23
असहमत	9	10.34
पूर्ण असहमत	0	0
मालूम नहीं	7	8.05
कुल	87	100

क्या अभी अभी सम्पन्न पंचायती राज चुनावों में राजस्थान सरकार द्वारा लागू पढ़ाई लिखाई के नियम से ग्रामों के विकास कार्यो पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा? इस विषय पर प्राप्त ऑकड़ों से तालिका 6 के अनुसार स्पष्ट होता है कि अध ययन क्षेत्र के 35.6 प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत हैं कि शैक्षिक योग्यता के प्रावधान से ग्रामीण विकास कार्यो पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में 56.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस पर पूर्ण सहमति दी है। दूसरी तरफ इस तथ्य पर असहमति 1.15 प्रतिशत और पूर्ण असहमति मात्र 1.15 प्रतिशत ही है। 5.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न का उत्तर मालूम नहीं दिया है। इस प्रकार व्यापक रूप में देखा जाये तो 91.9 प्रतिशत यह मानते हैं कि अनिवार्य शैक्षिक योग्यता के प्रावधान ग्रामीण विकास कार्यो को सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। अर्थात् शैक्षिक योग्यता ग्रामीण विकास कार्यो को सकारात्मक रूप में प्रभावित करती है।

तालिका संख्या : 6

शैक्षिक योग्यता के प्रावधान का विकास कार्यों पर प्रभाव

सहमति का स्तर	संख्या	प्रतिशत
सहमत	31	35.63
पूर्ण सहमत	49	56.32
असहमत	1	1.15
पूर्ण असहमत	1	1.15
मालूम नहीं	5	5.75
कुल	87	100

यह पूछने पर कि क्या सरपंच एवं पंचायत समिति के सदस्यों के लिए पढ़े लिखे होने की सरकार द्वारा बाध्यता लागू करने वाले नियम को हटा देना चाहिए? इस विषय पर प्राप्त ऑकड़ों से तालिका 6 के अनुसार स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के 42.5 प्रतिशत उत्तरदाता इसे हटाने से असहमत हैं जबकि 35.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस पर पूर्ण असहमति दी है। दूसरी तरफ इस तथ्य पर सहमति मात्र 9.2 प्रतिशत ही है, साथ ही पूर्ण सहमति मात्र 2.3 प्रतिशत है। 10.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं को इस बारे में जानकारी नहीं है। इस प्रकार व्यापक रूप में देखा जाये तो 78.1 प्रतिशत यह मानते हैं कि शैक्षिक योग्यता के प्रावधान को नहीं हटाना चाहिए।

तालिका संख्या : 7

शैक्षिक योग्यता के प्रावधान की समाप्ति पर विचार

सहमति का स्तर	संख्या	प्रतिशत
सहमत	8	9.20
पूर्ण सहमत	2	2.30
असहमत	37	42.53
पूर्ण असहमत	31	35.63
मालूम नहीं	9	10.34
कुल	87	100

निष्कर्ष एवं सुझाव- भारत में पंचायती राज संस्थाओं अस्तित्व प्राचीनकाल से लेकर अब तक किसी न किसी रूप में मौजूद रहा है। भारत के संविधान में 73वें संशोधन के बाद पंचायती राज व्यवस्था को सत्ता के विकेन्द्रीकरण की अवधारणा के रूप में विकसित किया गया है। ग्रामीण विकास की अवधारणा में पंचायती राज की अवधारणा सार्थक सिद्ध हुई है। भारत की अधिकांश आबादी गॉवों में निवास करती है। अतः ग्रामों के विकास को देश के विकास में भागीदारी प्रदान करना आवश्यक है। तभी देश का सर्वांगीण विकास संभव है। 73वें संविधान संशोधन के द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में और उसी की अनुपालना में लागू राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 में पंच, सरपंच, पंचायत समिति सदस्य और जिला परिषद के सदस्यों के लिए निर्वाचित होने के लिए अनिवार्य शैक्षिक योग्यता के प्रावधान लागू नहीं किए थे। परन्तु 2014 के चुनावों में राजस्थान में अनिवार्य शैक्षिक योग्यता के प्रावधानों को लागू किया। अध्ययन क्षेत्र में किये गए सर्वे के अनुसार पंचायती राज व्यवस्था में लागू शैक्षिक योग्यता के प्रावधान अच्छे है। इनसे ग्रामीण विकास कार्यो में तीव्रता लाई जा सकती है, क्योंकि शैक्षिक योग्यता ग्रामीण विकास कार्यो को सकारात्मक रूप में प्रभावित करती है। अतः पंचायती राज व्यवस्था में शैक्षिक योग्यता के प्रावधान लागू किये जाने से किसी भी प्रकार की ग्रामीण विकास कार्यो में कमी नहीं आयेगी। शैक्षिक योग्यता विकास कार्यो को सकारात्मक रूप में प्रभावित करती है। अतः इसका उपयोग प्रत्येक चुनी जाने वाली संस्थाओं में किया जा सकती है। संसद और विधानसभा के लिए चुने जाने वाले प्रतिनिधियों के लिए भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. ओझा, शिवकुमार, *'भारतीय संविधान एवं राजव्यवस्था',* बौद्धिक प्रकाशन इलाहाबाद, 2016 पृ. 252
2. मोदी, अनिता, *'ग्रामीण विकास और पंचायतें',* कुरूक्षेत्र मासिक जनवरी 2014 पृ. 10
3. मंडल, सम्पादक, *'भारतीय राजव्यवस्था एवं शासन',* दर्पण प्रकाशक आगरा, 2015 पृ. 162
4. शर्मा, राकेश, *'पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की बढ़ती भूमिका',* कुरूक्षेत्र मासिक अगस्त 2006 पृ. 13
5. शर्मा, राकेश, पूर्वोकत, पृ. 19
6. कटारिया, सुरेन्द्र, *'पंचायती राज संस्थाएं-अतीत,वर्तमान और भविष्य',* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर-नई दिल्ली, 2006 पृ. 1-2
7. महाजन, वी.डी., *'प्राचीन भारत का इतिहास',* एस.चन्द एण्ड कम्पनी प्रा. लि. नई दिल्ली, 2016 पृ. 74
8. महाजन, वी.डी., पूर्वोक्त, पृ. 85
9. शर्मा, अर्चना, *'पंचायती राज में महिला प्रतिनिधियों की सहभागिताः दौसा जिले के संदर्भ में एक अध्ययन',* राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर, 2013 पृ. 113
10. मधूसूदन, गजेन्द्र सिंह, सोनू जैन, *'भारत में पंचायती राजः कल, आज और कल',* प्रतियोगिता दर्पण/जून/2016 पृ. 98
11. माहेश्वरी, श्रीराम, *'भारत में स्थानीय शासन',* लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा, 2013-14 पेज 20-21
12. मिश्र, निरंजन, *'भारत में पंचायती राज',* परिबोध जयपुर, 2006 पेज 1
13. शर्मा, अर्चना, पूर्वोकत, पृ. 9
14. कुंपावत, गिरधारी सिंह, *'पंचायती राज ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं वर्तमान संरचना',* हिमांशु पब्लिकेशंस, उदयपुर, 2004 पृ. 33
15. शर्मा, अर्चना, पूर्वोक्त, पृ. 116
16. कटारिया, सुरेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 6
17. मिश्र, निरंजन, पूर्वोक्त, पृ. 14
18. ओझा, शिवकुमार, पूर्वोक्त, पृ. 252
19. शर्मा, अर्चना, पूर्वोक्त, पृ. 120
20. शर्मा, अर्चना, पूर्वोक्त, पृ. 122
21. भसीन अनीश, *'भारत में पंचायती राजः उद्भव एवं विकास',* प्रतियोगिता दर्पण/जुलाई/2014 पृ. 83
22. ओझा, शिवकुमार, पूर्वोक्त, पृ. 253
23. शर्मा, अर्चना, पूर्वोक्त, पृ. 127
24. ओझा, शिवकुमार, पूर्वोक्त, पृ. 253
25. राठौड़, गिरवर सिंह, *'भारत में पंचायती राज',* पंचशील प्रकाशन जयपुर, 2004 पृ. 32
26. मिश्र, निरंजन, पूर्वाक्त, पृ. 39
27. शर्मा, अर्चना, पूर्वोक्त, पृ. 134
28. शर्मा, अशोक, *'भारत में स्थानीय प्रशासन',* आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स जयपुर, 2005 पृ. 107
29. राठौड़ गिरवर सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 13
30. राठौड़ गिरवर सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 18-19
31. मिश्र, निरंजन, पूर्वोक्त, पृ. 231
32. मिश्र, निरंजन, पूर्वोक्त, पृ. 231
33. शर्मा, रामेश्वर पी., *'राजस्थान पंचायत कानून',* यूनिवर्स लॉ पब्लिकेशन,जयपुर, 2015 पृ. 33-35
34. शर्मा, रामेश्वर पी., पूर्वोक्त, पृ. 7-8
35. राठौड. गिरवर सिंह, पूर्वोक्त
36. शर्मा, ब्रजकिशोर, *'भारत का संविधान एक परिचय',* पी.एस. आई.लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड,नई दिल्ली,2010
37. शर्मा, अशोक, पूर्वोक्त
38. शर्मा, हरिश्चन्द्र, *'भारत एवं विदेशों में स्थानीय सरकारें',* कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1999
39. मिश्र, नंदलाल, *'नयी पंचायती राज व्यवस्था और ग्रामीण विकास'* - ग्राम स्वराज के विशेष संदर्भ में, बी.एस.शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा, 2001
40. सुधीर, वेददान, अरूण चतुर्वेदी, गिरिराज शर्मा, *'भारत में पंचायती राज : विचार कल्पना एवं यथार्थ',* हिमांशु पब्लिकेशन, उदयपुर-दिल्ली, 2004
41. जोशी,आर.पी. एवं रूपा मंगलानी, *'भारत में पंचायती राज',* राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2000

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी–जून 2019
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

शिक्षा में लैंगिक भेदभाव – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ सुश्री तृप्ति रानी

आज के बदलते भारत में महिलाओं की स्थिति विरोधाभासी स्थिति से गुजरती हुई नजर आती है। एक ओर हम उन्हें 'देवी' जैसी उपमाओं से अलंकृत करते हैं और वहीं दूसरी ओर उन्हें नीची दृष्टि से देखते हैं (लैंगिक आधार पर)। महिलाओं की इस स्थिति में आशानुरूप परिवर्तन नहीं होने का एक प्रमुख कारण शिक्षा की कमी है। प्रस्तुत अध्ययन, लैंगिक भेदभाव और शिक्षा के बीच परस्पर संबंधों एवं ये दोनों एक दूसरे से/ एक दूसरे को किस प्रकार प्रभावित करते हैं, के संबंध में कुछ नवीन तथ्यों को उजागर करने का एक प्रयास है।

मानव जीवन का मूल आधार शिक्षा है जिसके अभाव में एक सफल एवं सम्पूर्ण जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती और इसके बिना मानव का विकास संभव नहीं है। इसके द्वारा ही मनुष्य का सम्पूर्ण विकास हो सकता है या हो पाता है। जीवन को सही तरीके से जीने के लिए, मनुष्य के लिए, वे जिस समाज में रहते हैं उसके द्वारा कुछ निश्चित उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए शिक्षा रुपी साधन सबसे सटीक एवं आधारभूत कार्य करता है। अपने जीवन से जुड़ी सारी आवश्यकताओं एवं अपने लक्ष्यों को इसी की सहायता से प्राप्त कर सकते हैं।

अरस्तू के शब्दों में 'शिक्षा स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण करती है।'[1] प्लेटो के अनुसार 'वह प्रशिक्षण, जो अच्छी आदतों द्वारा बच्चों में अच्छी नैतिकता का विकास करती है।'[2]

मानव शिशु प्राकृतिक पर्यावरण के साथ समायोजन करते हुए इसी प्रक्रिया के साथ बढ़ता रहता है। संक्षेप में शिक्षा सतत चलती रहने वाली वह प्रक्रिया है, जिसमें बालक के सर्वांगीण विकास की मिश्रित भावना होती है। अपने जीवन काल में व्यक्ति जन्म से लेकर मरण के अंतर्गत जो कुछ भी सीखता एवं अनुभव करता है,शिक्षा के अंतर्गत आता है। यह व्यक्ति के बुद्धि एवं व्यक्तित्व को विकसित कर उसे अपने सभी कार्यों को पूरा करने योग्य बनाती है। हरेक समाज के जीवन की अपनी कुछ विशिष्ट आवश्यकताएं होती है, जिनके द्वारा जीवन का आदर्श बनता है। इन आदर्शों के माध्यम से ही हमारे जीवन उद्देश्य का निर्धारित होता है, जिसे प्राप्त करने के लिए जिन कुछ बिंदुओं को निश्चित करते हैं, जो हमारे जीवन - मूल्य हैं। इन मूल्यों को प्राप्त करने में शिक्षा का योगदान बहुत होता है। शिक्षा से व्यक्ति को केवल ज्ञान ही नहीं मिलता बल्कि यह उसके व्यक्तित्व का निर्माण भी करती है।

असमानता, समता के विपरीत अर्थ को स्पष्ट करनेवाली अवधारणा है। इसका मतलब यह होता है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई भेदभाव है, सबको समान शिक्षा, सुविधाएं, वेतन एवं जीवन स्तर प्राप्त नहीं है। जबकि विषमता का अर्थ है - व्यक्तियों को अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के समान अवसर नहीं मिलना, समाज में विशेषाधिकारों का पाया जाना, जन्म, जाति, प्रजाति, व्यवसाय, भाषा, धर्म, आय एवं सम्पत्ति इत्यादि के आधार पर भेदभाव का पाया जाना एवं इस आधार पर ही मनुष्य - मनुष्य और समूह -समूह के बीच परस्पर ऊंच -नीच का भेद मानना एवं सामाजिक दूरी बरतना। प्रभुत्व, शक्ति और सत्ता का असमान वितरण, सामाजिक भेदभाव व उत्पादन के साधनों पर असमान अधिकार विषमता को दिखलाते हैं।

असमानता का तात्पर्य एक समाज के लोगों के जीवन अवसर एवं जीवन -शैली की भिन्नताओं से है। इसे स्पष्ट करते हुए राल्फ डेहरेंडर्फ ने कहा है 'समृद्ध समाज में भी यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि मनुष्य असमान स्थितियों में होते हैं।'[3] पी.ए. सोरोकिन ने कहा है कि 'वास्तविक समानता वाला श्रेणीहीन समाज एक कल्पना ही है एवं यह मानव इतिहास में कभी नहीं देखा गया।'[4] आंद्रे बिताई ने शक्ति और असमानता के बीच संबंधों की व्याख्या दी है। शक्ति असमानता बनाये रखती है और यह असमानता का रूप भी बदल देती है।

लिंग सम्बन्धी विषमता : लैंगिक विषमता का अर्थ, 'लिंग के आधार पर महिलाओं पर किसी प्रकार का

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, एल.एन.एम. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

भेदभाव, बहिष्कार या बंधन लगाने से है जिसका प्रभाव या उद्देश्य, चाहे उसका वैवाहिक स्तर जैसा भी हो, स्त्री -पुरुष को समानता के आधार पर प्राप्त अधिकारों को कमजोर करना या निष्प्रभावी बनाना हो एवं महिलाओं को उनके मानवाधिकारों और राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक या किसी अन्य क्षेत्र में मौलिक स्वतंत्रताओं के उपभोग या इस्तेमाल से वंचित करना हो।[4]

समाज में लैंगिक विषमता के दो आधार हैं - (1) जैविकीय तथा (2) सामाजिक -सांस्कृतिक। ये दोनों ही आधार लैंगिक भेदभाव को अपने - अपने तरीके से अभिव्यक्त करते हैं। कुछ विद्वान स्त्री - पुरुष के बीच पाए जानेवाले व्यवहार भेद, जो कि किसी-न-किसी रूप में सभी संस्कृतियों में पाए जाते हैं, जीवविज्ञान के कारण मानते हैं। कुछ संस्कृतियों में स्त्रियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे शांत प्रकृति की हो। स्त्री और पुरुष के बीच पाये जानेवाले श्रम विभाजन को कुछ लोग उनमें पाए जाने वाले विभेद के कारण मानते हैं। महिलाओं के साथ जीवन में विभिन्न आयामों में भेदभाव पुरुष प्रधान समाज में एक स्वाभाविक घटना है। समाज में नारियों का आचरण कैसा होना चाहिए? इसका निर्धारण भी पुरुषों के द्वारा ही किया गया है। स्त्री और पुरुष की भूमिका विभेद के लिए भिन्न - भिन्न प्रकार की व्याख्याएं दी गयी हैं।

प्राणीशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य : इस विचारधारा के अनुसार, स्त्री द्वारा किये जाने वाले कार्य कम गतिशील तथा घर पर अधिक रहने के कारण स्त्री को गृह कार्य ही सौपे गए, जबकि पुरुष ने अपनी अधिक शारीरिक शक्ति के कारण आखेट एवं कृषि सम्बन्धी कार्यों को ग्रहण किया और समाज में शक्ति प्राप्त कर ली जो अब तक बनी हुई है। समाज में आज भी यह धारणा प्रचलित है कि पुरुष को घर के बाहर जबकि स्त्री को घर का कार्य करना चाहिए क्योकि स्त्री का कार्य क्षेत्र घर होता है। क्योकि उसे बच्चों को जन्म और उसके लालन - पालन का कार्य करना है इसलिए वह रसोई, चक्की का कार्य करे। समाज में पुरुषों की भूमिका को अधिक महत्व एवं शक्ति प्रदान की गयी है।[5]

फ्रायड का मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य इन्होने कहा कि स्त्री - पुरुषों में यौन - भेद ही उनकी सामाजिक भूमिकाओं के भेद के लिए जिम्मेदार है। स्त्री में बचपन से ही पुरुष की तुलना में यौनिक दृष्टि से हीन भावना जन्म लेने लगती है और उनमे पाए जानेवाले स्त्री वाले गुण, रुचियाँ, भावनाएं, मनोवृत्तियां और इच्छाएं किसी-न-किसी रूप में उसके असंतोष एवं क्षति सम्बन्धी विचार को सामने लाती हैं। फ्रायड ने स्त्री और पुरुष को समान माना।[6]

मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य : मार्क्स के मित्र एंजिल्स ने स्त्री को पुरुष के अधीन होने का विश्लेषण किया। इनका जोर मुख्यतः इस विचार का विरोध करना था कि ईश्वर ने स्त्री को कमजोर बनाया है। इन्होने इतिहास के उदाहरणों द्वारा यह समझने का प्रयत्न किया कि पहले स्त्री समाज की एक स्वतंत्र एवं उत्पादन में समान रूप से भागीदार सदस्य थी और आगे चलकर वह पुरुष के अधीन व पुरुष पर निर्भर पत्नी बन गयी। पुराने जमाने में स्त्री एवं पुरुष को समान माना जाता था एवं कार्य के आधार पर उनके दो वर्ग बने थे - पुरुष शिकार करने व मछली मारने में उपयुक्त व स्त्री गृह कार्य के लिए।[7]

लिंग : स्त्री सम्बन्धी विशेषताओं अथवा पुरुष सम्बन्धी से जुड़े वे तत्व, जो संस्कृति द्वारा निर्धारित होते हैं। लिंग एक सामाजिक अवधारणा है, जबकि सेक्स एक जैविक अवधारणा है। मानव समुदाय लिंग के आधार पर दो भागों में बंटा हुआ है - नारी और पुरुष, जबकि यौन भेदभाव जीव विज्ञान के द्वारा विभाजित किये गए हैं। स्त्रियों की लिंग भूमिका समाज और परिवार, जिसमें वे पैदा होती हैं, उनके अनुसार निर्धारित होती है।

लिंग आवंटन : जब कोई व्यक्ति या समाज व्यक्ति के लिंग को ध्यान में रखकर किसी कार्य की जिम्मेदारी सौपता है, तो उसे लिंग आवंटन कहा जाता है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था : सदियों से भारत में पितृसत्तात्मक व्यवस्था मौजूद है। इस व्यवस्था के कारण भारतीय सामाजिक संरचना के अंतर्गत पुरुषों का वर्चस्व कायम है। महिलाओं की बनी स्थिति के लिए उत्तरदायी कारकों में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का योगदान तुलनात्मक रूप से (अन्य कारकों की अपेक्षा) अधिक है, जिसने इस स्थिति को पोषित किया।यह सामाजिक संरचना की एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अंतर्गत सामाजिक जीवन से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों के वर्चस्व एवं अधिकार को मान्यता प्रदान की गयी है। यह व्यवस्था इस विचाधारा को पोषित करती है कि पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ है एवं स्त्रियां पुरुषों के नियंत्रण में रहने की वस्तु हैं। इस विचारधारा में ऐसे वातावरण का निर्माण किया गया कि महिलाएं पुरुषों के अधीन बनी रहें।

साहित्य समीक्षा : जाहिद अली चनार[8] ने अपने

अध्ययन में कार्यस्थल पर कार्यरत श्रमिकों में होनेवाले लैंगिक भेदभाव के मुद्दे पर प्रकाश डाला है एवं लैंगिक भेदभाव के कारण कार्यरत कर्मचारियों के प्रेरक तत्व, संतुष्टि, उत्साह एवं कार्य के प्रति उनकी प्रतिबध्दता पर इसके प्रभाव का विश्लेषण व मूल्यांकन किया है। अध्ययन निष्कर्ष यह बताते हैं कि निजी संगठनों में पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं भेदभाव से अधिक प्रभावित होती है एवं निजी कार्यक्षेत्रों की अपेक्षा सार्वजनिक क्षेत्रों में महिलाएं अपेक्षाकृत अधिक पीड़ित है। साथ ही इसके निष्कर्ष में यह भी बताया गया है कि लैंगिक भेदभाव, संतुष्टि, प्रेरित करने की भावना एवं उनके कार्य के प्रति प्रतिबध्दता को कम करने के साथ - साथ सेवारत कर्मचारियों के दवाब के स्तर को भी बढ़ाता है।

डेविड शाइन[9] का शोध अध्ययन कार्यस्थल पर होने वाले लैंगिक भेदभाव की व्याख्या अलग तरीके से प्रस्तुत करता है। इसमें बताया गया है कि प्रारम्भ में लैंगिक भेदभाव को केवल महिलाओं से ही जोड़कर देखा जाता था। लेकिन आज यह विशेष रूप से लिंग से जुड़ा मुद्दा नहीं रहा। उन दिनों यह पितृसत्तात्मक समाज के कारण अस्तित्व में आया पर, आज इसके प्रचलन का कारण अपने से विपरीत लैंगिक विशेषता वाले को दबाकर श्रेष्ठ बनने की इच्छा है।

ब्रेन वेले[10] का अध्ययन महिलाओं की उस बनी बनाई छवि के बारे में चर्चा करता है जो कि महिलाओं को उनके अपने अधिकारों के प्रति कठोर, क्रिया करनेवाला एवं अपने विरुद्ध होनेवाले व्यवहार के प्रति प्रतिरक्षात्मक व प्रतिरोधी होने से रोकता है। अगर वे ऐसा करती भी हैं अर्थात व्यवस्था के विपरीत जाती हैं तो प्रायः वे अस्वीकार कर दी जाती हैं एवं अनेक सामाजिक समस्याओं का उन्हें सामना करना पड़ता है।

स्टेफन क्लासें[11] द्वारा प्रस्तुत शोध पत्र में शिक्षा में होने वाले लैंगिक असमानता का आर्थिक वृध्दि पर पड़ने वाले प्रभावों का विशेष रूप से विश्लेषण किया गया है। यह अध्ययन दिखलाता है कि स्त्री शिक्षा का विस्तृत प्रभाव जन्मदर पर पड़ता है।

प्रमोद कुमार सिंह[12] के शोध 'लैंगिक असमानता के परिप्रेक्ष्य में महिला आंदोलन' के अध्ययन में बिहार में महिला आंदोलन के क्षेत्र में स्वयंसेवी संगठनों के योगदानों का गहन एवं गंभीर अध्ययन किया गया है। अध्ययन महिलाओं के विकास एवं कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध स्वयंसेवी संगठनों के विविध आयामों के अध्ययनों से जुड़ा हुआ है। अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आया है कि महिलाओं के पुरुषों की तुलना में अधिक संवेदनशील होने की वजह से बिहार में उनका नेतृत्व कमजोर है।

मीनाक्षी निशांत सिंह[13] ने 'आधुनिकता और महिला उत्पीड़न' नामक शोध पुस्तक में महिला उत्पीड़न, जिसके मामले में हमारे देश में हालत अधिक खराब हैं, के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। विषय को सम्यकता से समझाने के लिए इसे दस भागों में बांटा गया है, जिसके अंतर्गत महिलाओं के मानवाधिकार एवं महिलाओं से संबंधित कानूनों की भी चर्चा की गयी है।

मंजु लता[14] ने अपनी पुस्तक 'अनुसूचित जाति में महिला उत्पीड़न' में अजमेर शहर की अनुसूचित जाति की महिलाओं का सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन किया है। शोध में महिला उत्पीड़न को स्पष्ट करते हुए इसके विभिन्न स्वरूपों, कारणों एवं प्रभावों की विस्तृत विवेचना की गयी है एवं महिला सगंठनों, महिला अभिजनों, मानवाधिकारों, सरकारी प्रयासों, योजना एवं कार्यक्रमों को दलित महिला उत्पीड़न को कम करने में कितनी सकारात्मक भूमिका निभा रही है, का भी विश्लेषण किया गया है।

गोपी रमण प्रसाद सिंह[15] की पुस्तक 'लिंग और समाज' में 'लिंग' अवधारणा पर विस्तृत रूप से लिखा गया है एवं इनसे जुड़े सारे पक्षों को सरलता से समझाया गया है। पुस्तक के अंतर्गत स्त्री इतिहास, स्त्रियों से जुड़ी समस्याओं तथा दहेज, लैंगिक भेदभाव, हिंसा, अपराध, तलाक, बाल-विवाह एवं विधवा विवाह इत्यादि को अलग- अलग अध्यायों में बांटकर समझाने का प्रयत्न किया गया है। इसके अतिरिक्त सामाजिक संरचना, समाजीकरण एवं पितृसत्ता जैसी अवधारणाओं को लिंग संदर्भित करके स्पष्ट किया गया है।

राम आहूजा[16] की पुस्तक 'भारतीय सामाजिक व्यवस्था' में भारतीय समाज में उप - व्यवस्थाओं के समायोजन की प्रकृति व सामाजिक परिवर्तन के प्रतिमानों को आंकने का प्रयत्न किया गया है। यह पुस्तक परिवर्तन सम्बन्धी प्रवृतियां इंगित करती है एवं उन आकस्मिक और अल्पकालिक परिवर्तन की भी पहचान करती है जिन्हें मतभेद समर्थक व विच्छेदकारी प्रवृतियों के रूप में अंकित किया गया है। इसमें न केवल सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण जैसे विषयों पर गंभीर रूप से विचार किया गया है एवं उन विधियों पर भी बल दिया गया है, जिनके द्वारा विवाह,

परिवार और जाति जैसी उप - व्यवस्थाएं भी अपने को जीवित रखने के लिए एकता को बनाये रखते हुए भी स्वयं को बदलती हुई परिस्थितियों में अनुकूलन करती हैं।

अंतराष्ट्रीय लाभ रहित संगठन ऑक्सफेम ने हाल ही में श्रम बल में स्त्रियों की भागीदारी से संबंधित एक प्रतिवेदन प्रकाशित किया है, जो इसके द्वारा ही 2018 में प्रस्तुत पहले असमानता प्रतिवेदन की अगली कड़ी है। इस रिपोर्ट के अनुसार, भारत में महिलाओं को कम मजदूरी मिलती है, चाहे वह किसी भी प्रकार का रोजगार करती हों (आकस्मिक या नियमित वेतन पर, संगठित या असंगठित क्षेत्रों में, शहरों या गावों में)। नौकरी और योग्यता सामान्य रहने पर भी पुरुषों की तुलना में, महिलाओं को 34 प्रतिशत कम वेतन मिलता है। संगठित क्षेत्रों में कार्यरत उच्च स्तर की महिलाकर्मियों को भी पुरुषों की तुलना में कम वेतन मिलता है। इस श्रेणी में कार्यरत महिलाएं सम्पूर्ण कार्यबल का 1 प्रतिशत ही होती है। चूँकि इनको अपने अधिकारों के बारे में पता होता है, अतः यहाँ पुरुष -महिला को भुगतान की गयी राशि का अंतराल कम होता है। अधिक कुशल कर्मियों में मजदूरी का अंतर कम एवं अर्ध-कुशल या अकुशल मजदूरों में यह अंतर अधिक होता है।[17]

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध के लिए विवरणात्मक शोध प्ररचना का उपयोग किया गया है। इसके अंतर्गत परिवार और समाज में शैक्षणिक क्षेत्र में व्याप्त लैंगिक विभेद व भेद - भाव जैसे मुद्दे तथा समस्याओं का निर्धारण किया गया है। अध्ययन के लिए दरभंगा नगर के होली मिशन स्कूल, लहेरियासराय, दरभंगा का चयन किया गया।

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति के आधार पर 100 उत्तरदात्रियों का चयन किया गया है। तथ्यों का संकलन करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है साथ में अवलोकन का भी प्रयोग प्राथमिक स्रोत के रूप में एवं द्वितीयक स्रोतों के रूप में विभिन्न अभिलेखों, पत्रों व शोध प्रबंधों आदि द्वारा अन्य संबंधित तथ्यों का संकलन किया गया है।

उद्देश्य :

(1) शिक्षा एवं लैंगिक भेदभाव के परस्पर संबंधों को जानना।

(2) शिक्षा में होने वाले लैंगिक भेदभाव का अध्ययन करना।

(3) लैंगिक भेदभाव एवं पितृसतात्मक व्यवस्था के बीच के जुड़ाव को समझना।

उपकल्पना :

(1) शिक्षित लोग लैंगिक भेदभाव से प्रभावित नहीं होते हैं।

(2) वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक भेदभाव की समस्या कम होती है।

(3) शिक्षा में लैंगिक भेदभाव जाति से प्रभावित नहीं होते हैं।

विश्वभर में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए किये गए आन्दोलनों में उनकी निम्न स्थिति को बदलने के लिए शिक्षा को एक महत्वपूर्ण कारक माना गया है। शिक्षा ही वह उपकरण है जिससे महिलाएं समाज में सशक्त, सम्मानजनक एवं पुरुषों के समकक्ष खड़े होने का अधिकार प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर सकती हैं।

परन्तु, महिला शिक्षा की स्थिति में मौजूद असमानता से उनकी स्थिति बेहतर नहीं है। आज भी देश के निरक्षर लोगो में अधिकांश हिस्सा महिलाओं का है। सामाजिक - सांस्कृतिक विसंगतियों एवं कुरीतियों के बने रहने के कारण महिलाएं शिक्षा व्यवस्था से जुड़ नहीं पाती और जुड़ती भी है तो माता - पिता लड़कों को तो अन्य खर्चे काटकर भी, यहां तक कि कर्ज लेकर भी पढ़ाते हैं। परन्तु, लड़कियां कितनी भी योग्य क्यों न हों, उन्हें पढ़ने से रोका जाता है। अधिकांश बच्चियों की पढ़ाई इसलिए बीच में ही छुड़वा दी जाती है क्योकि उन्हें घरेलू कार्यों में उलझा कर रखा जाता है। इसके लिए यह तर्क दिया जाता है कि लड़की के लिए शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं, आखिरकर उन्हें शादी के बाद घर ही संभालना है। अगर कुछ शिक्षित होकर अपने आपको एक निश्चित स्थान पर ले भी जाती हैं, रोजगार प्राप्त कर भी लेती है, तब भी वहां पर उन्हें भेदभावपूर्ण व्यवहार का सामना करना पड़ता है (वेतन व सुविधा इत्यादि मामलों में) महिलाओं के प्रति होनेवाले इस असमान व्यवहार के विरोध में आंदोलन जारी है।

भारत के संदर्भ में बालिकाओं का औसत स्कूलिंग बालकों की तुलना में 3.6 वर्ष कमतर है।[18] जो भारत के सांस्कृतिक सन्दर्भ में बालिकाओं के शैक्षणिक पिछड़ेपन को दर्शाता है। यूनेस्को इंस्टिट्यूट फॉर स्टेटिस्टिक्स की एक रिपोर्ट के अनुसार, 16 मिलियन लड़कियां कभी भी शिक्षित होने का अवसर नहीं प्राप्त कर पाती। भारत में 12 मिलियन बच्चे शिक्षा को पाने में असफल हो जाते हैं, जिसमें लड़कियों की संख्या असंगत है। 2006 से 2010 की अवधि के बीच में 50 प्रतिशत के लगभग लड़कों में

सिर्फ 26 प्रतिशत लड़कियां ही माध्यमिक स्तर की शिक्षा को पूरा कर पाई हैं। लिंगों के बीच पाई जानेवाली असमानता को भारत के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के क्षेत्र में स्पष्ट देखा जा सकता है। लड़कों की साक्षरता दर लगभग 82 प्रतिशत है लेकिन लड़कियों में केवल 65 प्रतिशत ही लिख एवं पढ़ सकी हैं।[19]

शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति को स्पष्ट करते, एक नए अध्ययन से यह तथ्य सामने आया है कि भारत की स्त्रियों की शैक्षणिक स्थिति के अंतर्गत स्कूली शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता का प्रदर्शन उसके अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान, नेपाल एवं बांग्लादेश से काफी खराब है। यह खुलासा इंटरनेशनल कमीशन ऑन फाइनेंसिंग ग्लोबल एजुकेशन अपारचुनिटी के द्वारा किया गया है।[20]

भारत में वैसी महिलाओं का प्रतिशत 48 है, जिन्होंने अपनी पांचवी तक की प्राथमिक स्कूली शिक्षा पूरी की है, जबकि हमारे पड़ोसी देश नेपाल में यह प्रतिशत 92, पाकिस्तान में 74 और बांग्लादेश में 54 है। महिला साक्षरता के वैश्विक सूचकांक में 51 विकासशील देशों में भारत को 38 वा स्थान मिला है। वहीं अफ्रीकन देशों (रवांडा, इथोपिया, तंजानिआ) की स्थिति, भारत की तुलना में काफी उच्च है।[21]

विश्व बैंक की एक रिपोर्ट बताती है कि संसद में महिलाओं की उपस्थिति के मामले में भी हम बहुत पीछे अथवा पिछड़े हुए हैं। जहां रवांडा में यह 61.3 प्रतिशत, क्यूबा में 52.2 प्रतिशत, वोल्विया में 53.1 प्रतिशत, मैक्सिको में 48.2 प्रतिशत, स्वीडन में 46.1 प्रतिशत, रूस में 42.3 प्रतिशत, ब्रिटेन में 32.2 प्रतिशत, पाकिस्तान में 20.6 प्रतिशत एवं अमेरिका में 19.6 प्रतिशत और इसके बाद भारत का स्थान आता है। यहाँ संसद में महिलाओं की उपस्थिति सिर्फ 11.8 प्रतिशत ही है। इस मामले में सिर्फ ब्राजील और नाइजीरिया ही भारत से नीचे है। संसद में महिलाओं की उपस्थिति में जिनका प्रतिशत क्रमशः 10.7 प्रतिशत एवं 5.6 प्रतिशत है।[22]

महिला शिक्षा का महत्व न केवल समानता के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक - आर्थिक विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए भी आवश्यक है। महिलाओं का शिक्षित होना, समाज के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक उन्नति और विकास के लिए अति आवश्यक है। इससे देश के सकल विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है। कहा जाता है कि जब एक पुरुष शिक्षित होता है तो एक व्यक्ति शिक्षित होता है और जब एक महिला शिक्षित होती है तो एक पूरा परिवार शिक्षित होता होता है। जवाहरलाल नेहरू ने इस तथ्य का समर्थन करते हुए कहा था कि एक लड़के की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा है और एक लड़की की शिक्षा में पूरे परिवार की शिक्षा निहित है।[23] अतः महिलाओं के लिए पूर्णतः सुशिक्षित होना बहुत जरुरी है।

विश्लेषण

तालिका संख्या - 1
लड़कियों को तकनीकी शिक्षा

आयु समूह	अभिमत			
	हाँ		नहीं	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
12 से 14	11	11	19	19
15 से 17	13	13	29	29
17 से अधिक	04	04	24	24
योग	28	28	72	72

तालिका संख्या - 1 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उत्तरदात्रियों का अधिकांश मत नकारात्मक पक्ष में दिया गया है, 'हाँ' को सिर्फ 28 प्रतिशत जबकि 'नहीं' को 72 प्रतिशत मत प्राप्त हुए अर्थात् अधिकांश उत्तरदात्रियाँ लड़कियों को तकनीकी शिक्षा दिलाने के पक्ष में नहीं हैं। उत्तरदात्रियों द्वारा नकारात्मक पक्ष में दिए गए अधिकांश मत यह दिखलाते हैं कि वर्तमान समय में शिक्षा लैंगिक भेदभाव से प्रभावित है। यह निष्कर्ष अध्ययन की इस उपकल्पना को गलत सिद्ध करता है कि वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक भेदभाव की समस्या कम होती है।

तालिका संख्या - 2
पारिवारिक सम्पत्ति में पुत्री को अधिकार

शिक्षा	अभिमत			
	पक्ष		विपक्ष	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
नवमी	17	17	3	3
दसवीं	12	12	3	3
ग्यारहवीं	12	12	13	13
बारहवीं	29	29	11	11
योग	70	70	30	30

तालिका संख्या - 2 से यह स्पष्ट हो रहा है कि सबसे ज्यादा मत 'हाँ' को दिया गया है। चार भागों में बँटे शैक्षणिक स्तर में, नवमी का 17 प्रतिशत, दसवीं का 12 प्रतिशत,

ग्यारहवीं का 12 प्रतिशत एवं बारहवीं का 29 प्रतिशत मत 'हाँ' के पक्ष में गया है। जबकि 'न' को केवल 30 प्रतिशत मत ही मिले हैं। अधिकांश उत्तरदात्रियाँ पारिवारिक सम्पत्ति में बेटियों को अधिकार देने के फैसले/कानून को सही मानते हैं। उत्तरदात्रियों द्वारा 'हाँ' को ज्यादा मत देने से अध्ययन की दूसरी उपकल्पना की पुष्टि होती है कि 'शिक्षित लैंगिक भेदभाव से प्रभावित नहीं होते हैं।'

तालिका संख्या - 3

लिंग के आधार पर व्यवहार पर नियंत्रण

जाति	अभिमत			
	हाँ		नहीं	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
उच्च जाति	24	24	6	6
मध्यम जाति	26	26	16	16
निम्न जाति	16	16	12	12
योग	66	66	34	34

तालिका संख्या - 3 से यह स्पष्ट हो रहा है कि 'हाँ' एवं 'नहीं' के रूप में दिए गए दोनों उत्तर के विकल्पों में 'हां' का चुनाव अधिक किया गया है। उच्च जाति ने अपना 24 प्रतिशत मत, मध्यम जाति ने 26 प्रतिशत एवं निम्न जाति की उत्तरदात्रियों ने सर्वाधिक 16 प्रतिशत मत 'हां' को दिया है। सभी जातिओं का 'हां' के पक्ष में सर्वाधिक मत प्रदान करना इस बात की ओर इशारा करते है एवं इस उपकल्पना को सत्य सिद्ध करता है कि शिक्षा में लैंगिक भेदभाव, जाति से प्रभावित नहीं है।

तालिका संख्या - 4

धन के उपयोग की स्वतंत्रता

जाति	अभिमत			
	हाँ		नहीं	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
उच्च जाति	17	17	13	6
मध्यम जाति	27	27	15	16
निम्न जाति	15	15	13	12
योग	59	59	41	41

तालिका 4 से स्पष्ट होता है कि 59 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने यह स्वीकार किया कि उन्हें अपने पैसे को अपनी इच्छानुसार उपयोग करने की स्वतंत्रता है। परन्तु 41 प्रतिशत उत्तरदात्रियों का नकारात्मक उत्तर पाया गया।

तालिका संख्या - 5

पारिवारिक स्तर पर शिक्षा में लड़कियों की उपेक्षा

जाति	अभिमत			
	हाँ		नहीं	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
उच्च जाति	20	20	23	23
मध्यम जाति	13	13	16	16
निम्न जाति	11	11	17	17
योग	44	44	56	56

परिवार में केवल लड़कों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है,ऐसा नहीं है । लड़कियों की उपेक्षा नहीं की जाती है ।उन्हें विद्यालय एवं कॉलेज जाने दिया जाता है ।यहां स्थिति उतनी बेहतर नहीं,पर सामान्य है। 44 प्रतिशत उत्तरदात्रियों का सकारात्मक उत्तर पाया गया।

तालिका संख्या - 6

एकाकी परिवार में महिलाओं की बराबरी

जाति	अभिमत			
	हाँ		नहीं	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
उच्च जाति	10	10	20	20
मध्यम जाति	20	20	22	22
निम्न जाति	14	14	14	14
योग	44	44	56	56

तालिका 6 स्पष्ट करती है कि अध्ययन की 44 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने स्वीकार किया किया कि एकाकी परिवार में उनकों बराबरी का अधिकार दिया जा रहा है। परन्तु 56 प्रतिशत उत्तरदात्रियों का नकारात्मक उत्तर पाया गया।

निष्कर्ष :- वर्तमान समय में महिलाओं के साथ जो भी समस्याएं जुड़ी हुई है, उसके पीछे उनकी अपनी अज्ञानता अर्थात अशिक्षा ही कारक है। एक सामान्य महिला को अपने लिए निर्मित सामान्य कानूनी अधिकारों के बारे में भी मालूम नहीं होता। चूँकि महिलाओं के पिछड़े होने में काफी हद तक कुछ सामाजिक व्यवहार भी जिम्मेदार होते है। पर अपनी अज्ञानता की वजह से वह परम्परागत व्यवहार के विरूद्ध भी नहीं जा पातीं और इसी का लाभ उठाकर समाज उनका शोषण करता रहता है। अतः वर्तमान युग में, जो विशेष रूप से पैसे का युग है, स्त्रियों की आर्थिक व बौद्धिक स्वतंत्रता, जिससे वे पैसे का उपार्जन और संरक्षण कर सकें, ही उनकी सामाजिक एवं राजनीतिक (कानूनी) स्वतंत्रता का आधार स्तम्भ का कार्य

कर सकती है। एक महिला को हमेशा यह कोशिश करना चाहिए कि वह अपने आपको पराधीन न रहने दे। अपने प्रति, पुरुषों द्वारा किये जानेवाले दुर्व्यवहारों का डटकर सामना करने का सामर्थ्य रखे।

सन्दर्भ

1. गुप्ता, लक्षता, *'भारतीय समाज और शिक्षा'*, वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 1-6
2. वही, प. 6
3. वही, पृ. 41
4. सिंह, गोपी रमण प्रसाद, *'लिंग और समाज'*, हेरिटेज पब्लिकेशन, मुंबई, 2017, पृ. 32
5. https://prezi.com /m /7x
6. वही
7. वही
8. चनार, जाहिद अली, *'जेंडर डिस्क्रिमिनेशन इन वर्कप्लेस एंड इट्स इम्पैक्ट ऑन द एम्प्लाइज'*, Pak. J. Commer Social Science vol - 5 (1), 177 -191
9. शाइन, डेविड, *'स्टडी ऑफ जेंडर डिस्क्रिमिनेशन एट वर्कप्लेस इंटरनेशनल जर्नल केयर इंजीनियरिंग एंड मैनजमेंट'*, वॉल्यूम 2; Issue1
10. ब्रेन, वेले, *'फॉर्मल एंड इनफॉर्मल अगेंस्ट वीमेन एट वर्क'* य डेली एक्सेल्सिएर य पेज नद्र- 24 - 30
11. स्टीफन, स्क्लॉसेन, *'द इम्पैक्ट ऑफ जेंडर इनक्वॉलिटी इन एजुकेशन एंड एम्प्लॉयमेंट इन इकनोमिक ग्रोथ इन डेवलपिंग कंट्रीज'* ;flamanna @world bank - org / sklasen @ uni & goetinge-de
12. सिंह, प्रमोद कुमार, 'लैंगिक असमानता के परिप्रेक्ष्य में महिला आंदोलन', ल.ना.मि. विश्वविद्यालय पी-एच. डी. शोध -प्रबंध (अप्रकाशित), 2011
13. सिंह, मीनाक्षी निशांत, *'आधुनिकता और महिला उत्पीड़न'* ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008
14. लता, मंजु, *'अनुसूचित जाति में महिला उत्पीड़न'* अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009
15. सिंह, गोपी रमण प्रसाद, पूर्वोक्त,
16. आहूजा, राम, *'भारतीय सामाजिक व्यवस्था'*, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2004
17. 28-31 मार्च प्रीलिम्स कैप्सूल
18. पांडेय, जीतेन्द्र कुमार, *'पंचायत राज और सशक्तीकरण'*, 648 सूचना भवन, नई दिल्ली, 2018 पृ. 42 -43
19. https ://women & s-net /gender
20. https ://currentaffairs -gktoday -in
21. वही
22. https ://t-me /banking 4 Exams
23. नेहरू जहवाहर लाल, उद्धृत वर्मा, सवलिया बिहारी, *'ग्रामीण महिला उत्थान'*, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी-जून 2019

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

भारत में स्वस्थ राष्ट्रवाद का विकास स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में

❑ रेखा मौनी

सन्यासी का जन्म बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के लिये होता है। दूसरों के लिये प्राण देने, जीवों के गगनभेदी क्रन्दन का निवारण करने, विधवाओं के आंसू पोछने, पुत्रवियोग-विधुरा के प्राणों को शांति प्रदान करने, अज्ञ अधम लोगों को जीवन संग्राम के उपयोगी बनाने, शास्त्रोपदेश- विस्तार के द्वारा सभी लोगों के ऐहिक-पारमार्थिक मंगल करने और ज्ञानलोक द्वारा सबमें प्रस्तुत ब्रम्ह-सिंह को जाग्रत करने के लिये ही सन्यासियों का जन्म हुआ है।[2]

स्वामी विवेकानन्द के जन्म को डेढ सदी बीत चुकी है। लेकिन आज भी उनके संदेश युवाओं के लिये प्रेरणा के स्त्रोत बने हुये हैं। संपूर्ण राष्ट्र के भविष्य की दिशा तय करने में भी उनके विचार निर्णायक भूमिका का निर्वहन करने की क्षमता रखते हैं। आज वेदान्त-दर्शन को विज्ञान के समान मान्यता मिलने लगी है, जिससे स्वामी जी के विचार और भी प्रासंगिक हो गये हैं। उनके ये विचार भारत ही नहीं बल्कि पश्चिमी राष्ट्र भी स्वीकार कर रहे हैं क्योंकि ये विचार मूलभूत हैं, जिसमें अखिल मानव जाति का विचार किया गया है।

> अद्वैत-वेदान्त के दर्शन को सक्रिय राष्ट्रवाद का रूप देते हुये स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि हमें ईश्वर को ढूंढना होगा - आकाश में नहीं, वरन् प्रत्येक जीव के हृदय में और विशेषकर निर्धन-पीड़ितों के हृदय में। ''हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं। सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ रहे हैं और जिस विराट देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं उसकी पूजा ही न करें ?जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव-देवियों की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नहीं।''[1] स्वामी जी ने तथाकथित सुधारकों से कहा कि जब तक वे आमजनता को दरिद्रता और दुर्दशा से उबार न लें, तब तक निश्चिन्त न हों, फिर उन्हें यह भी चाहिये कि वे अपने कार्य को अहंभाव से नहीं वरन् ईश्वर के सेवा भाव से करें। वे कहते हैं भूखे लोगों को धर्म का उपदेश सुनाने से कोई लाभ नहीं। पहले पाश्चात्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता से भारत को शारीरिक दृष्टि से बलवान और भौतिक दृष्टि से बलवान बनाना होगा। परन्तु हमारा सर्वोपरि लक्ष्य होगा आध्यात्मिकता को बढ़ावा देना, क्योंकि आध्यात्मिकता ही भारत का मेरूदण्ड है। स्वामी जी के नेतृत्व में ही भारत उद्धत राष्ट्रवाद के संकीर्ण तथा खतरनाक रास्ते से बचकर सर्वोदय और आध्यात्मिक एकता के लक्ष्य को पाने के लिये सह-अस्तित्व के मार्ग पर चल रहा है।

हिन्दू धर्म के पुनरूद्धारक स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी, 1863 को कलकत्ता के मोहन मुखर्जी स्ट्रीट के सिमुलिया मुहल्ले में मकर संक्रांति के दिन धनी-मनी दत्त परिवार में हुआ था। उनकी मां भुवनेश्वरी देवी अपने पुत्र को शिवजी का प्रसाद मानती थीं तथा उन्हें 'वीरेश्वर' के नाम से पुकारती थीं। परंतु परिवार के सभी सदस्य उन्हें 'नरेन्द्र' व 'बिले' कहते थे। उनके पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता उच्च न्यायालय में अधिवक्ता थे। मां बचपन से ही उन्हें रामायण और महाभारत की कहानियां सुनाया करती थीं। प्रारंभिक शिक्षा भी उन्हें मां के द्वारा ही मिली। 1879 में उन्होंने उच्च शिक्षा के लिये कलकत्ता प्रेसीडेंसी कॉलेज में प्रवेश लिया। बी0ए0 की पढ़ाई के दौरान उनके पिता की आकस्मिक मृत्यु से उन पर समस्याओं का पहाड़ खड़ा हो गया। इन दुष्कर परिस्थितियों ने नरेन्द्र को विद्रोही और नास्तिक बना दिया। इसी दौरान प्रोफेसर हेस्टी साहब के कहने पर उनकी भेंट दक्षिणेश्वर मंदिर के पुजारी श्री रामकृष्ण परम हंस से हुयी। कुछ समय बाद नरेन्द्र उनके सबसे प्रिय शिष्य बन गये।[3]

15 अगस्त, 1886 को वेदान्त के प्रचार की जिम्मेदारी नरेन्द्र को सौंपकर स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने महासमाधि द्वारा अपनी नश्वर देह का त्याग कर दिया। 25 वर्ष की आयु में स्वामी जी ने सन्यास ग्रहण कर लिया। यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि पहले स्वामी जी अपना नाम 'विविदिषानन्द' लिखा करते थे। खेतड़ी के राजा अजीत सिंह ने ही युवा सन्यासी विविदिषानन्द को 'विवेकानन्द' नाम दिया और शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिये प्रेरित किया, साथ ही उस प्रवास के लिये वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराये।[4] अब वे स्वामी विवेकानन्द हो चुके थे। अपने गुरू को दिये गये वचन के कारण ही उन्होंने ''सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय'' के सत्य

❑ शोध अध्येत्री, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

के प्रचार के लिये भारत तथा विदेशों का भ्रमण किया। 11 सितंबर 1893 में शिकागो धर्म महासभा में सनातन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में प्रतिभाग कर "हिन्दू धर्म" की विजय पताका पूरे संसार में फैला दी। वे जीवन पर्यन्त अपने गुरू के दिये वेदान्त ज्ञान का प्रचार-प्रसार भारत तथा अन्य देशों में करते रहे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने 1 मई, 1897 को कलकत्ता में 'रामकृष्ण मिशन' का गठन किया जो वर्तमान में भी स्वामी जी के संदेशों को संसार भर में फैला रहा है। भारत के ये महान सन्यासी मात्र 39 वर्ष की आयु में 4 जुलाई 1902 के बेलूरमठ में महासमाधि में विलीन हो गये।[5]

स्वामी जी की अमूल्य धरोहर जो उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिये छोड़ी है और जिन आदर्शों को स्वामी जी ने सदा ऊंचा रखा है, उन सबसे भारतीय युवकों को अवगत कराना अतीव आवश्यक है। आज जब संपूर्ण विश्व में राष्ट्रवाद अपने पूरे उत्कर्ष में है ऐसे में स्वामी जी के राष्ट्रवादी विचार हमें पथ प्रदर्शित करने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। राष्ट्रवाद का आध यात्मिक अथवा धार्मिक सिद्धान्त राजनीतिक चिंतन को विवेकानन्द की महत्वपूर्ण देन माना जाता है। संपूर्ण विश्व को अपनी सभ्यता और संस्कृति पर गर्व करना सिखाकर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का परिचय सबसे पहले विवेकानन्द जी ने ही कराया था। वे एक ऐसे आध्यात्मिक गुरू थे जिन्होंने धर्म को व्यवहारिक बनाया तथा भारतीय सभ्यता के निर्माण और संस्कृति के प्रसार के लिये हमेशा समर्पित रहे।[6]

राष्ट्रवाद एक भावना का संकेत भी देता है, और एक विचारधारा का संकेत भी। एक भावना के रूप में यह अपने राष्ट्र के प्रति व्यक्ति के अनुराग या लगाव को व्यक्त करता है। इस अर्थ में राष्ट्रवादी वह है जो राष्ट्रहित को अन्य सब हितों से ऊंचा स्थान देता है। एक विचारधारा के रूप में राष्ट्रवाद यह मांग करता है कि राज्य का ढांचा और राजनीतिक संगठन राष्ट्रत्व की नींव पर खड़ा होना चाहिये और प्रत्येक राज्य को किसी स्वाधीन राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करना चाहिये। लेकिन वर्तमान में राष्ट्रवाद को इन दोनों के मिश्रित रूप में अधिक देखा जाता है। राष्ट्रवाद 19 वीं सदी की सबसे ताकतवर विचारधारा रही है। सोलवीं और सत्रहवीं शताब्दी के आसपास यूरोप में आधुनिक राष्ट्र राज्य का उदय हुआ था जिसने राष्ट्रवाद के उभार में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसकी सत्ता केन्द्रीकृत सम्प्रभु और अविभाज्य थी। इसके विपरीत मध्ययुगीन यूरोप में राजसत्ता किसी एक सम्प्रभु शासक या सरकार के पास रहने की बजाय बंटी हुयी थी। आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों ने सत्ता का यह बंटवारा खत्म कर दिया, जिसके आधार पर राष्ट्रवाद का विचार पनप सका।[7]

सबसे पहले राष्ट्रबोध राजनैतिक दृष्टि से पश्चिम में जगा, और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जब साम्राज्य का पतन हुआ तो तब अमेरिका के नेतृत्व में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव हुआ। आर्थिक आधार पर अपनी मुद्रा को एक कर युरोप में एक संघीय मुद्रा 'यूरोजोन' का निर्माण हुआ किन्तु ब्रिटेन ने मुद्रा के स्तर भले ही अपना ली किन्तु अपनी राष्ट्रीय पहचान कायम रखी है जिससे आर्थिक राष्ट्रवाद का भी खोखलापन समझ आता है। इस तरह राष्ट्रवाद अपने इन दोनों ही रूपों में खरा नहीं उतर सका। अतः आज सभी देशों ने अपनी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और मान्यताओं को स्वीकार कर उन्हें पुर्नजीवित करना शुरू कर दिया है।

उदाहरणस्वरूप सोवियत रूस को ही देखो जब द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मार्क्स के साम्यवाद के आधार पर लोगों में राष्ट्रप्रेम जगाना असंभव हो गया था तब धर्म को अफीम मानने वाले इस साम्यवादी देश ने अपने पारंपरिक गिरजाघरों को बंधनों से मुक्त किया और इस तरह पादरियों ने लोगों में देशभक्ति जाग्रत की। स्टॉलिन ने उसके बाद पूरे देश में ही चर्च को उनके स्थान वापस लौटाये। आज चीन तथा अमेरिका को भी यह मर्म समझ में आ गया है। अतः अपनी जड़ों को सुदृढ करने के लिये चीन ने 'कनफ्यूसियस' धारणाओं को पुर्नजिवित करना प्रारम्भ कर दिया है। विश्व के 100 से अधिक विश्वविद्यालयों में इसके अध्ययन केन्द्र खोलने के लिये चीन सरकार ने पैसा लगाया है। अमेरिका भी गत 25-30 वर्षों से अपने स्वतत्व की खोज में लगा है। 9-2-11 की घटना के बाद तो उसमें अधिक आग्रह आ गया है।

विवेकानन्द जी एक दूरदर्शी महापुरूष थे उन्होंने भारतीयों को यह संदेश बहुत पहले ही दे दिया था कि भारत में स्वस्थ राष्ट्रवाद का विकास तभी हो सकता है जब हम अपने आप से पूछें कि हम कौन हैं? भारतीय होने का क्या अर्थ है ? इसके लिये हमें अपने स्वयं के ऐतिहासिक अनुभव के आधार पर अपनी खोज करनी होगी तथा अपने पूर्वजों के धर्म व संस्कृति के आधार पर अपनी राष्ट्रीयता की खोज करनी होगी। क्योंकि उनका कहना था कि राष्ट्र की भावी महानता का निर्माण उसके अतीत की नींव पर ही किया जा सकता है। अतीत की उपेक्षा करना राष्ट्र के जीवन का निषेध करने के समान है। इसलिये भारतीय राष्ट्रवाद का निर्माण अतीत की ऐतिहासिक विरासत की सुदृढ नींव पर ही करना होगा। स्वामी जी ने कहा कि जब कोई मनुष्य अपने पूर्वजों के बारे में लज्जित होने

लगे, तब समझ लो कि उसका अंत आ गया। मैं यद्यपि हिन्दू जाति का एक नगण्य घटक हूं तथापि मुझे अपनी जाति पर गर्व है। मैं स्वयं को हिन्दू कहलाने में गर्व का अनुभव करता हूं। मुझे गर्व है कि मैं आप लोगों का एक तुच्छ सेवक हूं। तुम ऋषियों की संतान हो, तुम्हारा देशवासी कहलाने में मैं अपना गौरव मानता हूं। तुम उन महान ऋषियों के वंशज हो, जो संसार में अद्वितीय रहे हैं।

यही वह पुरातन भूमि है। जहां ज्ञान ने अन्य देशों में जाने से पूर्व अपनी जन्म भूमि बनाई थी, यहीं सर्वप्रथम मानव प्रकृति एवं अंतर्गत के रहस्यों की जिज्ञासाओं के अंकुर उगे थे, यहीं आत्मा की अमरता, एक परमपिता परमेश्वर की सत्ता, प्रकृति और मनुष्य के भीतर ओत-प्रोत एक परमात्मा-परमेश्वर के सिद्धान्त सर्वप्रथम उठे और यहीं विज्ञान, धर्म और दर्शन के उच्चतम ज्ञान की लहर बार-बार उमड़ी और समस्त संसार में छा गयी। संपूर्ण विश्व पर हमारी मातृभूमि का महान ऋण है। सारे संसार से लोग हमारी सभ्यता व संस्कृति को देखने उससे सीखने के लिये भारत आते थे, इस कारण हम जगतगुरू कहलाये, लेकिन आज हम पाश्चात्यीकरण के चक्कर में अपनी धर्म व संस्कृति को भूल रहे हैं, जो हमारी राष्ट्रीयता के लिये सही नहीं है। आज आवश्यकता है हमें अपने प्राचीन सांस्कृतिक गौरव को पुनः स्थापित करने की, और फिर से अपनी अलग राष्ट्रीय पहचान बनाने की।[8]

इसके लिये हमें विवेकानन्द जी की यह बात भी ध्यान रखनी होगी कि भारत की आधार भित्ती या जीवन केन्द्र एकमात्र 'धर्म' ही है। उन्होंने कहा था कि प्राच्य और पाश्चात्य देशों में घूमकर मुझे दुनियां का कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है और मैंने सर्वत्र सब देशों का कोई न कोई ऐसा आदर्श देखा है कि जिसे उस देश का मेरूदण्ड कह सकते हैं। कहीं राजनीति कहीं समाज-संस्कृति, कहीं मानसिक उन्नति उसके मेरूदण्ड का काम करती है परंतु हमारी मातृभूमि का मेरूदण्ड धर्म-केवल धर्म ही है। उसी की नींव पर हमारा राष्ट्रीय जीवन का प्रासाद खड़ा है। भारतवासियों ने अभी भी उसका परित्याग नहीं किया है, और अन्धविश्वासों के बावजूद वह आज भी सबल है। भारत, मृत्यु की भांति, दृढतापूर्वक ईश्वर, केवल ईश्वर से चिपका हुआ है। हिन्दु का खाना धार्मिक, पीना धार्मिक, सोना धार्मिक, उसकी चाल-ढाल धार्मिक, विवाह आदि धार्मिक और यहां तक कि उसकी चोरी करने की प्रेरणा भी धार्मिक होती है। इसका एक कारण यह है कि इस देश की प्राण शक्ति-इसका ध्येय धर्म है, और चूंकि धर्म पर आघात नहीं हुआ है इसीलिये यह देश अभी तक जीवित है। इसलिये उसके पास अभी भी उन्नति की आशा है।[9]

आज संपूर्ण विश्व में राष्ट्रीयता का आधार धर्म व संस्कृति ही है। स्वामी विवेकानन्द ने ही इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का परिचय लोगों को करवाया था। संसार के सम्मुख भारतीय संस्कृति और सभ्यता का डंका बजाने का श्रेय स्वामी विवेकानन्द को ही जाता है। उन्होंने हिन्दू धर्म का इस आधार पर समर्थन किया था कि वह नैतिकता, मानवता और आध्यात्मिकता का एक सार्वभौमिक संदेश है। वे हिन्दू धर्म को सब धर्मों का सार मानते थे। यहां पर हिन्दू धर्म का आधार वैज्ञानिक विवेक और दर्शन है। धर्म सनातन रीति है, इसी का सुसंस्कृत व्यवहार संस्कृति है। इसी मूलभूत आधार के कारण हिन्दू एक राष्ट्र है।

भारत के राष्ट्रीय जीवन का मूल स्त्रोत धर्म है। एक ऐसा धर्म, जो विश्व की आध्यात्मिक एकता का प्रतिपादन करता है। स्वामी जी ने हिन्दू धर्म का इस आधार पर समर्थन किया था कि वह नैतिक मानववाद और आध्यात्मिक आदर्शवाद का एक सार्वभौम सन्देश है। उनके लिये हिन्दू धर्म एक ऐसा व्यापक सत्य था, जो मनोवैज्ञानिकों को राजयोग के मनोवैज्ञानिक ज्ञान का भण्डार दे सकता था, जो सामवेद के मंत्रों तथा तुलसीदास एवं दक्षिण के आलवार के संतों के भजनों द्वारा भक्तों को प्रेरणा दे सकता था और जो वीर कर्मयोगी को गीता में श्री कृष्ण द्वारा प्रतिपादित निष्काम कर्म का संदेश दे सकता था। यह सभी धर्मों और संस्कृतियों को साथ लेकर चलता है। जब तक इस्लाम धर्म की लहर भारत में नहीं आयी थी, तब तक यहां के लोग यह जानते तक नहीं थे कि धार्मिक अत्याचार किसे कहते हैं। जब विधर्मी विदेशियों द्वारा हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार हुआ, तभी उन्होंने इसे पहली बार अनुभव किया। संसार की सभी जातियों में हम ही हैं जिन्होंने कभी दूसरों पर सैनिक विजय प्राप्ति का पथ नहीं अपनाया और इसी कारण हम आशीर्वाद के पात्र हैं। स्वामी जी को इसलिये हिन्दू जाति में जन्म लेने तथा भारत जैसे देश का होने पर गर्व था। इसी विश्वास के कारण वे दुनियां के समक्ष हिन्दुत्व की विजय-पताका फहराने में सफल हो सके।

हिन्दू धर्म को स्वामी जी ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर पहचान दी है। 19 वीं शताब्दी के अंत तक विश्व भारत के बारे में बहुत कम जानता था। अंग्रेजों एवं ईसाई मिशनरियों ने भारत के बारे में कई भ्रांतियां फैलाई थीं, जैसे कि भारत असभ्य एवं सपेरों का देश है, यहां पर बुराइयों की भरमार है, लोग जंगली एवं बुरी परंपराओं को मानते हैं आदि। स्वामी जी ने इस भ्रान्तियों को दूर करने के लिये पश्चिमी देशों की यात्रायें

की। साथ ही स्वामी जी कहते हैं "मेरे विचार से हमारे राष्ट्रीय पतन का असली कारण यह है कि हम दूसरे रास्तों से नहीं मिलते-जुलते, यही अकेला और एक मात्र कारण है। हमें कभी दूसरों के अनुभवों के साथ अपने अनुभवों को मिलान करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। हम कूपमंडूक कुएं के मेंढक बने रहे।" वे आगे कहते हैं- हमें पश्चिम के साथ अपनी सभ्यता का आदान-प्रदान करना होगा क्योंकि 'प्रसार ही जीवन है और संकोच मृत्यु'।[10] इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने 1893 में शिकागो में आयोजित 'धर्म महासभा' में भारत की ओर से सनातन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में प्रतिभाग किया था। वहां उन्होंने अमेरिका वासियों को संबोधित करते हुये कहा था कि "मेरे अमेरिकी भाइयों और बहनों! आपने जिस हर्षोल्लास और स्नेह के साथ मेरा यहां स्वागत किया है उसके प्रति आभार प्रकट करने के लिये मेरा हृदय हर्ष से भर गया है। दुनियां के साधू सन्तों की सबसे प्राचीन परंपरा की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूं"। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूं जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और उत्पीड़ित और शरणार्थियों को आश्रय दिया है। मैं आप लोगों को एक श्लोक की कुछ पंक्तियां सुनाता हूं, जिसकी आवृति मैं अपने बचपन से ही करता रहा हूं और जिसकी आवृति प्रतिदिन लाखों मनुष्य किया करते हैं, -

रूचीनां वैचि-यादृजुकुटिलनानापथ्जुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इवं[11]

अर्थात जैसे विभिन्न नदियां भिन्न-भिन्न स्त्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रूचि के अनुसार टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अंत में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।

भगिनी निवेदिता लिखती हैं - शिकागो धर्ममहासभा में जब स्वामीजी ने अपना भाषण आरंभ किया, तो उनका विषय था-'हिन्दुओं के प्राचीन धार्मिक विचार 'पर जब उनका भाषण समाप्त हुआ तो आधुनिक हिन्दू धर्म की सृष्टि हो चुकी थी। उनके भीतर संपूर्ण भारतवर्ष को अपनी भावधारा का महत्व आंकने की क्षमता मिली। भारत की धर्म चेतना ने उनके द्वारा पश्चिम में अपने आप को प्रकाशित किया।[12]

इस तरह उन्होंने अमेरिका तथा यूरोप के अन्य देशों में भारत की वैभवशाली सांस्कृतिक परंपराओं की ध्वज पताका फैलायी और वहां वेदान्त दर्शन के सिद्धान्तों का प्रचार - प्रसार किया। इसके लिये उन्होंने न्यूयार्क में फरवरी 1896 में वेदान्त समिति की स्थापना की। इस दौरान अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में उनके अनेक शिष्य तथा शिष्याएँ भी बनीं जो उनके इस महान कार्य में उनकी सहायक बने, जिनमें से भगिनी निवेदिता और सेवियर दम्पत्ति तो उनके साथ भारत भी आये। स्वामी जी के कहने पर सेवियर दम्पत्ति ने 19 मार्च 1899 को हिमालय के समीप मायावती नामक स्थान पर अद्वैत आश्रम की स्थापना की जो आज भी उनके सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार कर रहा है। इस प्रकार स्वामी जी ने पाश्चात्य देशों में भारत के बारे में जो भ्रान्तियां फैली थीं उन्हे दूर किया।

स्वामी जी एक महान राष्ट्र भक्त थे। उनके राष्ट्र प्रेम का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि भारत लौटने से पूर्व जब उनके एक अंग्रेज मित्र ने उनसे पूछा कि-"स्वामी जी! पाश्चात्य देशों में इतने साल गुजारने के बाद अब भारतवर्ष आपको कैसा लगेगा"? भावभीने स्वर में स्वामी जी ने उत्तर दिया - "पाश्चात्य देशों में आने से पूर्व मैं भारत से प्यार करता था, पर अब तो भारत की हवा और मिट्टी तक मेरे लिये पवित्र है। भारतवर्ष मेरे लिये अब पावन तीर्थ है"।[13]

स्वामी जी भारतीय संस्कृति को पुर्नजीवित कर उसके प्रचार-प्रसार द्वारा भारत को फिर से 'जगतगुरू' बनाना चाहते थे। वे भारतवासियों को सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि - हमारे सामने एक महान आदर्श है और वह आदर्श है - 'भारत की विश्व पर विजय'। उठो भारत, तुम अपनी आध्यात्मिकता द्वारा जगत पर विजय प्राप्त करो, जैसा कि इसी देश में पहले-पहल प्रचार किया गया है, प्रेम ही घृणा पर विजय प्राप्त करेगा, घृणा, घृणा को नहीं जीत सकती। हमें भी वैसा ही करना पड़ेगा। जब एक सेना दूसरी सेना पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करती है तो वह महान जाति को पशु बना देती है और इस प्रकार वह पशुओं की संख्या बढ़ा देती है। आध्यात्मिकता पाश्चात्य देशों पर अवश्य विजय प्राप्त करेगी। धीरे-धीरे पाश्चात्यवासी यह अनुभव कर रहे हैं कि उन्हें राष्ट्र के रूप में बने रहने के लिये आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। वे इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसकी पूर्ति कहाँ से होगी? वे लोग कहाँ हैं, जो भारतीय महर्षियों के उपदेश जगत के सब देशों में पहुंचाने के लिये तैयार हों? कहाँ हैं वे लोग, जो इस हेतु सबकुछ छोड़ने को तैयार हों, ताकि ये कल्याणकारक उपदेश संसार के कोने-कोने तक फैल जाये। सत्य के प्रचार के लिये ऐसे वीर हृदय के लोगों की आवश्यकता है। वेदान्त के महासत्यों को फैलाने के लिये ऐसे वीर कर्मियों

को बाहर जाना चाहिये। जगत को इसकी चाहत है, इसके बिना जगत विनष्ट हो जायेगा। सारा पाश्चात्य जगत मानो ज्वालामुखी पर बैठा है, जो कल ही फूटकर उसे चूर-चूर कर सकता है। भारत के धार्मिक विचारों को पाश्चात्य देशों की नश-नश में भरने का यही समय है। इसलिये हे युवकों, मैं विशेषकर तुम्हीं को इसे याद रखने को कहता हूं। हमें बाहर जाना ही पड़ेगा, अपनी आध्यात्मिकता तथा दार्शनिकता से हमें जगत जीतना ही होगा। सतेज और प्रबुद्ध राष्ट्रीय जीवन के लिये बस यही एक शर्त है कि एक बार भारत पुनः विश्व पर 'आध्यात्मिक विजय' प्राप्त करे। उनके इन्हीं विचारों के कारण उनका राष्ट्रवाद अभूतपूर्व था।[14]

वर्तमान भारत में राष्ट्रवाद की स्थिति :- आज अगर हम राष्ट्रवाद की बात करें तो हमें आध्यात्मिक और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद दूर-दूर तक दिखायी नहीं देता, कारण इसका स्थान वर्तमान में साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद ने जो ले लिया है। आज धर्म व जाति के नाम पर मतभेद राष्ट्र का एक आम मुद्दा बन गया है। हिन्दू और मुसलमानों के आपसी दंगों के कारण देश की एकता और राष्ट्रीयता की भावना खतरे में दिख रही है। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की अवधारणा को साथ लेकर चलने वाला देश आज अपनी ही अंदरूनी कलह से हताश है। इसके लिये कुछ हद तक हमारी राजनीतिक व्यवस्था व सोशल मीडिया भी जिम्मेदार हैं। जहां एक ओर राजनीतिक पार्टियां अपने राजनीतिक लाभ व सत्ता प्राप्ति के लिये धर्म को आधार बनाकर वोट मांग रही हैं जिससे यह तनाव बढ़ता जा रहा है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान युग 'सोशल मीडिया का युग' है। और 'नौजवान काल' है जहां पर आप किसी भी विषय-वस्तु को त्वरित संचारित कर सकते हैं। आज देश में हिन्दू-मुस्लिम के छोटे से झगड़े को भी इतना बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया जाता है जिससे तनाव बढ़ जाता है, तथा किसी भी मुद्दे को धर्म से जोड़कर दिखाया जाता है जो न तो हमारे लिये सही है न हमारे देश के लिये। हम एक राष्ट्र के निवासी हैं चाहे हम किसी भी धर्म से हों हमारा मुख्य धर्म 'राष्ट्रप्रेम' होना चाहिये तभी हम एक मजबूत राष्ट्र बन सकते हैं। जब देश की बहुधा आबादी नवयुवकों की हो तो हमारे वैचारिक और सामाजिक दायित्व और भी बढ़ जाते हैं। हम किस तरह का मार्ग देश के युवाओं को दिखाना चाहते हैं वो हमारे संचार, समाचार व पत्रकारिता की कलम पर भी बहुत सीमा तक निर्भर करता है। यदि हमारी कलम राष्ट्र के प्रति समर्पित रहेगी तो हमारा नौजवान भी राष्ट्रहित के दायरे में अपने आपको विकसित व सवंर्धित करेगा।

दूसरी ओर हम अपनी सभ्यता और संस्कृति को भी भूल रहे हैं और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को अपना रहे हैं, जो हमारी राष्ट्रीयता के लिये दूसरा बड़ा खतरा है। क्योंकि अपनी सभ्यता और संस्कृति से दूर होने का मतलब है अपने राष्ट्र से दूर होना, जो सही नहीं है। वर्तमान सामाजिक बदलाव को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे न तो हमारी संस्कृति रह गयी है न ही हमारी सभ्यता। पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण द्वारा हमने उन बातों को अपनाया है जो हमारी संस्कृति के प्रतिकूल थीं। जिस भारतीय समाज में हम रह रहे हैं वहां की प्राचीन सभ्यतायें, मर्यादायें और नैतिक मूल्य कुछ और ही थे। ऐसे में जब हम पहनावे व खान पान में खुली सोच का अन्धानुकरण करते हैं तो हमारे वातावरण में नग्नता व रूग्णता दिखायी देती है। जब हमारे देश की आधिकारिक भाषा हिन्दी है तो क्यों उसे बोलने से लोग कतराते हैं। इस पाश्चात्यीकरण से सबसे ज्यादा हमारी युवा पीढी प्रभावित हुयी है। प्रत्येक युवा अपने को मार्डन कहलाना अच्छा समझ रहा है, इस कारण वह इसको अपना रहा है। वह भूल रहा है कि भारत अपनी संस्कृति के उच्च्व आदर्शो के कारण 'विश्वगुरू' कहलाता था। यहां की सभ्यता व संस्कृति से सीखने के लिये अनेक विदेशी भारत आते थे। लेकिन इसके विपरीत आज हम विदेश जाने और वहां की संस्कृति को अपनाने में गर्व महसूस कर रहे हैं। जो हमारे राष्ट्रीय पतन का एक बड़ा कारण है।[15]

आज धर्म के नाम पर जो जन-शोषण हो रहा है वह भी हमारी राष्ट्रीयता को कमजोर कर रहा है। स्वामी जी कहते थे कि - पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं, जो हिन्दू धर्म जैसा इतने उच्च्व स्वर में मानवता के गौरव का उपदेश देता हो और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं, जो हिन्दू धर्म के समान गरीबों और निम्न जातिवालों का गला ऐसी क्रूरता से घोटता हो। भारत के करोड़ों अनाथों के लिए कितने लोग रोते हैं? तुम लोगों के घरों के चारों ओर जो पशुवत भंगी-डोम हैं। उनकी उन्नति के लिये तुम क्या कर रहे हो? उनके मुख में एक ग्रास अन्न देने के लिये क्या करते हो ?बताओ ना। तुम उन्हें छूते भी नहीं और उन्हें 'दूर - दूर' कहकर भगा देते हो। क्या हम मनुष्य हैं। अब धर्म कहां है? केवल छुआछूत में, मुझे छुओ मत, छुओ मत। क्या हमारा सनातन धर्म ऐसा सिखाता है ?क्या हमारे वेदों में कहीं पर ऐसा लिखा है? यह पुरोहिती प्रपंच ही भारत के पतन का मूल कारण है। आज देश में सांप्रदायिकता और जाति के आधार पर भेदभाव बहुत बढ़ गया है। अतएव यदि भारत को महान बनाना है, इसका भविष्य उज्ज्वल बनाना है तो इसके लिये आवश्यक है - संगठन करने की और बिखरी

हुई इच्छा शक्तियों को एकत्रित करने की। यदि तुम 'आर्य' और 'द्रविड', 'ब्राह्मण' और 'अब्राह्मण' जैसे तुच्छ विषयों को लेकर तू-तू, मैं-मैं करते रहेगो, झगड़े और पारस्परिक विरोध के भाव को बढ़ाओगे तो समझ लो कि तुम उस शक्ति संग्रह से दूर हटते जाओगे, जिसके द्वारा भारत का भाग्य गठित होने वाला है। याद रखो, 'हमारा राष्ट्र झोपड़ियों में बसता है'। पहले हमें उनकी उन्नति के लिये कार्य करना होगा, तभी भारत का उद्धार हो सकता है।[16]

निष्कर्ष और सुझाव :- वर्तमान परिस्थिति को देखकर ही प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी को स्वामी जी के उच्च राष्ट्रीय आदर्शों से परिचित करना और उसमें राष्ट्रप्रेम की भावना को जगाना है। विवेकानन्द जी ने कहा था कि नैसर्गिक और स्वस्थ राष्ट्रवाद का विकास तभी हो सकता है जब न सिर्फ धर्मों के बीच बल्कि पूरब और पश्चिमी संस्कृतियों के बीच भी स्वस्थ आदान प्रदान हो। वे कहते थे आज जरूरत है 'वेदान्त युक्त पाश्चात्य विज्ञान की'। वे पाश्चात्य राष्ट्रों से उनकी अच्छी बातों जैसे - उनके शिल्प विज्ञान और भौतिक विज्ञान को सीखने के पक्ष में थे। लेकिन साथ ही वे पाश्चात्य देशों के अन्धानुकरण के विरोधी थे। उन्होंने स्पष्ट कहा था - 'स्मरण रखो, यदि तुम पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के चक्कर में पड़कर अपने धर्म यानी आध्यात्मिकता का आधार त्याग दोगे तो उसका परिणाम होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम्हारा जातीय अस्तित्व मिट जायेगा, क्योंकि राष्ट्र का मेरूदण्ड (धर्म) टूट जायेगा। राष्ट्रीय भवन की नींव खिसक जायेगी। इन सबका परिणाम 'सर्वतोमुखी विनाश'।[17]

स्वामी जी ने जीवन के हर क्षेत्र में होने वाले आजके पूर्व-पश्चिम के परस्पर आदान-प्रदान को बहुत पहले ही देख लिया था कि यही आदान-प्रदान पूर्ण विश्व सभ्यता का निर्माण करेगा। स्वामी जी के अनुसार सभ्यता तभी पूर्ण होगी जब भारत अपने आध्यात्मिक संदेश का कोश संसार को देगा और बदले में उससे आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियां लेगा। वास्तव में स्वामी जी की शिक्षा वेदान्त पर आधारित 'विश्व संस्कृति' का संदेश है। वे पुनः कहते हैं - ''जागो भारत ! जागो, अपनी आध्यात्मिकता से संसार को जीत लो, तुम्हारा नवजागरण और जातीय जीवन का दायित्व तभी चरितार्थ होगा जब तुम अपनी युग-युग से संचित आध्यात्मिक शक्ति द्वारा विश्व पर विजय पा सकोगे''।[18]

भारत आज भी अपनी अलग राष्ट्रीय पहचान बना सकता है। विश्व को देने के लिये उसके पास अभी भी बहुत कुछ है - वह अपने आध्यात्मिक आलोक द्वारा फिर से जगतगुरू बनने की क्षमता रखता है। वेदान्त का आध्यात्मिक आलोक ही भारत की बहुमूल्य धरोहर है। अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये पहले वे भारतीय युवाओं को संगठित करना चाहते थे, क्योंकि किसी भी राष्ट्र के निर्माण में उस देश की युवाशक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, और उस देश के लिये तो यह और भी महत्वपूर्ण है जिस देश की आधी आबादी युवाशक्ति की हो। स्वामी जी ने कहा -''हमारे देश के लिये इस समय जरूरत है लोहे की तरह ठोस मांसपेशियों और मजबूत स्नायुवाले शरीरों की। आवश्यकता है इस तरह से दृढ इच्छा-शक्ति की, जो ब्रह्माण्ड के सारे रहस्यों को भेद सकती हो। यदि यह कार्य करने के लिये अथाह समुद्र के मार्ग में जाना पड़े, सदा सब तरह से मौत का सामना करना पड़े, तो भी हमें यह काम करना ही पड़ेगा। यही हमारे लिये परम आवश्यक है और इसका आरम्भ, स्थापना और दृढ़ीकरण अद्वैतवाद अर्थात सर्वात्मभाव के महान आदर्श को समझने तथा उसके साक्षात्कार से ही संभव है''।[19]

वे युवाओं को जाग्रत करने के लिये उनका आह्वान करते हुये कहते हैं कि निराशा, कमजोरी, भय, आलस्य तथा ईर्ष्या युवाओं के सबसे बड़े शत्रु हैं। युवाओं का उससे बड़ा शत्रु है उनका स्वयं को कमजोर समझना। विवेकानन्द जी ने युवाओं को जीवन में लक्ष्य निर्धारण करने के लिये स्पष्ट संदेश दिया और कहा कि तुम सदैव सत्य का पालन करो, विजय तुम्हारी होगी। आने वाले भारत का भविष्य तुम्हारी कार्यशैली पर ही निर्भर करेगा। स्वामी जी ने कहा था कि हमें कुछ ऐसे युवा चाहिये जो देश के खातिर अपना सर्वस्व न्योंछावर करने को तैयार हों। ऐसे युवाओं के माध्यम से वे देश ही नहीं विश्व को भी संस्कारित करना चाह रहे थे। आज भारतीय युवा विश्व के प्रायः सभी देशों में अपनी प्रतिभा कौशल से न केवल संबंधित देश की अर्थव्यवस्था में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं अपितु बहुमूल्य विदेशी मुद्रा भेजकर व अपने देश में धन का निवेश करके राष्ट्र को समुन्नत करने में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। भारत अपनी इस युवाशक्ति के आधार पर ही अपनी परंपरागत छवि का आवरण उतारकर नूतन वैश्विक स्तर की अस्मिता बनाने में सफल रहा है। लेकिन इस सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता कि राष्ट्र के विकास की इस यात्रा में राष्ट्रवाद से जुड़ी भावनात्मक संवेदनशीलता युवाओं के जीवन से गायब होती जा रही है। अतः आज हमें आवश्यकता है कि युवाओं को उनके स्वतत्व और प्राचीन वैभव का ज्ञान कराया जाय जिससे वे स्वस्थ राष्ट्र के निर्माण में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सकें।[20]

वास्तव में स्वामी विवेकानन्द आधुनिक मानव के आदर्श प्रतिनिधि हैं। विशेषकर भारतीय युवकों के लिये स्वामी विवेकानन्द से बढकर दूसरा कोई नेता नहीं हो सकता। हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने बहुत पहले ही स्वामी जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये कहा था – ''मैं नहीं जानता हमारी युवा पीढ़ी में कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के भाषणों और लेखों को पढ़ते हैं, परंतु मैं उन्हें यह निश्चित बता सकता हूं कि मेरी पीढ़ी के बहुतेरे युवक उनके द्वारा अत्यधिक मात्रा में प्रभावित हुये थे। मेरे विचार में, यदि वर्तमान पीढ़ी के लोग स्वामी विवेकानन्द के भाषणों और लेखों को पढ़ें तो उन्हें बहुत बड़ा लाभ होगा और वे बहुत कुछ सीख पायेंगे। यदि तुम स्वामी विवेकानन्द के भाषणों और लेखों को पढो तो तुम्हें यह आश्चर्यजनक बात दिखायी देगी कि वे कभी पुराने नहीं प्रतीत होते। उन्होंने हमें कुछ ऐसी वस्तु दी हैं जो हममें अपने उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त परंपराओं के प्रति एक प्रकार का अभिमान-यदि मैं इस शब्द का व्यवहार कर सकूं-जगा देती है। स्वामी जी ने जो कुछ भी लिखा और कहा है वह हमारे लिये हितकर है और होना ही चाहिये तथा वह आने वाले लंबे समय तक हमें प्रभावित करता रहेगा। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उन्होंने वर्तमान भारत को दृढ रूप से प्रभावित किया है, और मेरे विचार से तो हमारी युवा पीढी स्वामी विवेकानन्द से निःसृत होने वाले ज्ञान, प्रेरणा एवं तेज के स्त्रोत से लाभ उठायेगी'' ।[21]

आज स्वामी विवेकानन्द के विचारों की इसी प्रासंगिकता को देखते हुये भारत सरकार ने घोषणा की है कि प्रतिवर्ष 12 जनवरी को, यानी स्वामी विवेकानन्द की जयन्ती को 'राष्ट्रीय युवा दिवस' के रूप में देशभर में मनाया जाए। इस संदर्भ में भारत सरकार को ऐसा अनुभव हुआ कि स्वामी जी के जीवन तथा कार्य के पश्चात निहित उनका आदर्श- यही भारतीय युवकों के प्रेरणा का बहुत बड़ा स्त्रोत हो सकता है। अतः आज के युवाओं के पास उत्तराधिकार के रूप में स्वामी विवेकानन्द के विचारों की अमूल्य धरोहर है, जिसके अनुपालन से वे विश्व में सफलता के नये आयाम स्थापित कर सकते हैं।

सन्दर्भ

1. स्वामी विदेहात्मानन्द, *'स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान'* अद्वैत आश्रम कोलकाता, 2002, पृ.378।
2. शंकर, *'विवेकानन्द की आत्मकथा'*, प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2017, पृ.19।
3. गुप्त परशुराम, *'विवेकानन्द और राष्ट्रवाद'*, प्रतिभा प्रतिष्ठान नई दिल्ली, 2015, पृ.11।
4. शर्मा पं0 झाबरमल्ल, 'खेतड़ी नरेश और विवेकानन्द', साहित्य प्रकाशन दिल्ली, 2013, पृ.10।
5. गुप्त परशुराम, पूर्वोक्त, पृ. 17।
6. वर्मा विश्वनाथ प्रसाद, *'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन'*, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 2016, पृ.187।
7. गाबा प्रकाश ओम, *'राजनीतिक सिद्धान्त की रूपरेखा'*, मयूर पेपर बुक्स, नई दिल्ली, 2015, पृ.128।
8. गुप्त परशुराम, पूर्वोक्त, पृ.42।
9. स्वामी विवेकानन्द, 'मेरा भारत अमर भारत', रामकृष्ण मठ नागपुर, 2011, पृ.15।
10. 'विवेकानन्द साहित्य', भाग-4, अद्वैत आश्रम कोलकाता, 2014, पृ.258।
11. *'विवेकानन्द साहित्य'*, भाग-1, अद्वैत आश्रम कोलकाता, 2014, पृ. 4।
12. स्वामी अपूर्वानन्द, *'स्वामी विवेकानन्द संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश'*, रामकृष्ठ मठ नागपुर, 2012, पृ.50।
13. पूर्वोत्तर, पृष्ठ -60।
14. गुप्त परशुराम, पूर्वोक्त, पृ. 97।
15. *'विवेक ज्योति'*, (हिन्दी त्रैमासिक), विवेकानन्द आश्रम रामपुर, 2002, पृ. 18।
16. 'मेरा भारत अमर भारत', पूर्वोक्त, पृ.20।
17. 'विवेकानन्द और राष्ट्रवाद', पूर्वोक्त, पृ.45।
18. 'मेरा भारत अमर भारत', पूर्वोक्त, पृ.33।
19. 'स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान', पूर्वोक्त, पृ.377।
20. 'विवेकानन्द और राष्ट्रवाद', पूर्वोक्त, पृ. 5।
21. ध्यानी ममता, 'प्रेमचन्द्र के साहित्य पर स्वामी विवेकानन्द के चिंतन का प्रभाव', ओमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली 2013, पृ. 47।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी-जून 2019

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

ऋणग्रस्तता निवारण में सर छोटूराम की भूमिका दक्षिण-पूर्वी पंजाब का एक अध्ययन

❑ डॉ. मन्जू बाला

आज का पंजाब और हरियाणा का क्षेत्र आर्थिक विकास में प्रति व्यक्ति आय के आधार पर हमारे देश में सबसे ऊपर है। लेकिन यह विकास अचानक परिवर्तन से सम्बन्धित नहीं है। विकास एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है, इसलिए इसकी जड़ों का ऐतिहासिक संदर्भ में पता लगाना आवश्यक है। आज इस क्षेत्र के किसान जागृत, खुले विचारों वाले और परिश्रमी हैं। उनके पास व्यक्तिगत और संस्थागत रूप में अच्छे साझेदार हैं जो शिक्षा, बेहतर उत्पादन तकनीक, मशीन व कृषि उपकरण व व्यापार की प्रभावी प्रणाली, बाजारीकरण, वित्त और सम्बद्ध सेवाएँ आदि प्रदान करते हैं। अब यहाँ के कृषक समुदाय में एक गतिशील तत्त्व की उपस्थिति है।

> आज का पंजाब और हरियाणा का क्षेत्र आर्थिक विकास में प्रति व्यक्ति आय के आधार पर हमारे देश में सबसे ऊपर है। लेकिन यह विकास अचानक परिवर्तन से सम्बन्धित नहीं है। विकास एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है, इसलिए इसकी जड़ों का ऐतिहासिक संदर्भ में पता लगाना आवश्यक है। आज इस क्षेत्र के किसान जागृत, खुले विचारों वाले और परिश्रमी हैं। उनके पास व्यक्तिगत और संस्थागत रूप में अच्छे साझेदार हैं जो शिक्षा, बेहतर उत्पादन तकनीक, मशीन व कृषि उपकरण व व्यापार की प्रभावी प्रणाली, बाजारीकरण, वित्त और सम्बद्ध सेवाएँ आदि प्रदान करते हैं। अब यहाँ के कृषक समुदाय में एक गतिशील तत्त्व की उपस्थिति है। प्रस्तुत लेख पंजाब और हरियाणा की इस वर्तमान स्थिति के मूल में सर छोटूराम की भूमिका को उजागर करने का एक प्रयास है।

आज से ठीक एक सदी पहले यहाँ की स्थितियाँ पूरी तरह से अलग थीं। किसान अनपढ़ और पिछड़े हुए, ऋणी और शोषित थे। उनके उपकरण और औजार आदिम थे। वित्त व्यवस्था, व्यापार, बाजारीकरण और सम्बद्ध सेवाएँ आदि सभी कुछ किसानों पर निर्भर था, लेकिन इसके बावजूद कृषक वर्ग की आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर थी। उनका भरपूर शोषण हो रहा था। इस समय कृषक वर्ग की बिगड़ती स्थिति का प्रमुख कारण था ब्रिटिश औपनिवेशीकरण। ब्रिटिशों ने अपने स्वयं के स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए यहाँ की प्राकृतिक अर्थव्यवस्था को विनिमय की अर्थव्यवस्था में बदल दिया। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप यहाँ के संगठित समाज का विघटन हुआ। बढ़ी हुई असमानताओं ने समाज के एक वर्ग (साहूकार) को अंग्रेजों द्वारा प्रदान की गई कानूनी मदद से दूसरे वर्गों (किसानों, कारीगरों और समाज के अन्य पिछड़े वर्गों) का शोषण करने के लिए पर्याप्त रूप से मजबूत बना दिया था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश प्रभुत्व के द्वारा अपनाई गई औपनिवेशिक नीतियों के परिणामस्वरूप किसानों व कारीगरों की ऋणग्रस्तता, स्वदेशी हस्तकला उद्योग में गिरावट, भूमि पर दबाव, भू-राजस्व व जल कर (एबियाना) के रूप में कृषकों पर करों का बोझ और किसानों की बेदखली बढ़ गई। हालांकि अंग्रेजों ने शोषण, ऋणग्रस्तता, अशिक्षा आदि के खिलाफ ग्रामीणों के प्रति सहानुभूति दिखाने के लिए कुछ विधायी कदम उठाए, लेकिन इनसे किसानों की आर्थिक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। शोषित और पिछड़ी जनता का हित ब्रिटिश नीतियों में कभी भी ऊपर नहीं था। कृषि के वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया से परिवर्तित हुई अर्थव्यवस्था, प्रथम विश्व युद्ध और अप्रवासन ने किसान को बाहरी दुनिया की स्थितियों से अवगत कराया। इसके साथ ही पंजाब के राजनीतिक क्षेत्र में सर छोटूराम के आगमन ने पंजाब व विशेषकर पंजाब के दक्षिण-पूर्वी हिस्से, जिसे आज हरियाणा नाम से जाना जाता है, के किसानों में जागृति का आरम्भ किया। सर छोटूराम ने किसानों और समाज के अन्य पिछड़े वर्गों के शोषण के विरूद्ध निर्भीक रूप से संघर्ष किया। उन्होंने किसानों को अज्ञानता और शोषण के विरूद्ध जागृत करने के लिए यूनियनिस्ट पार्टी की सह-स्थापना की, उर्दू साप्ताहिक निकाला एवं जमींदार लीग, जाट महासभा व

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, जीवन चानन महिला महाविद्यालय, असन्ध, करनाल (हरियाणा)

शिक्षण संस्थानों आदि को स्थापित किया।

सर छोटूराम ने अपनी नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से पूरे सामाजिक- आर्थिक परिदृश्य को बदल दिया, जिसने न केवल ग्रामीणों को शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बंधनों से मुक्त कर दिया बल्कि इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण इलाकों में व्यवस्थित प्रारम्भिक विकास भी आरम्भ हुआ।

सर छोटूराम ने कृषक वर्गों की बिगड़ती आर्थिक स्थिति के कारणों को सही तरीके से पहचाना और उचित निदान करने का प्रयास किया। इसलिए उन्हें किसानों का मसीहा की संज्ञा दी जाती है। बचपन से ही उनके जीवन पर तत्कालीन घटनाओं व परिस्थितियों ने बड़ा महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। जन्म लेते ही आस-पास के वातावरण में साहूकारों, सूदखोरों के द्वारा प्रताड़ने व शोषण की आग ने और स्वयं के साथ किए गए व्यवहार ने बालक छोटूराम को सर छोटूराम, किसानों का मसीहा बना दिया।[1]

सर छोटूराम ने कृषक वर्गों की बिगड़ती आर्थिक स्थिति के कुछ कारणों का वर्णन किया है जैसे बढ़ता ऋणग्रस्तता का बोझ, किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य प्राप्त करने में असमर्थता, निरक्षरता और अज्ञानता, मुकदमेबाजी और रिश्वत की व्यापकता आदि। साथ ही समाज के इस महत्वपूर्ण वर्ग की दुखद दुर्दशा का मूल कारण अंग्रेजों की कृषक विरोधी और श्रम विरोधी आर्थिक नीतियाँ थीं।

कृषकों की बिगड़ती आर्थिक स्थिति का सबसे प्रमुख कारण किसानों की बढ़ती ऋणग्रस्तता थी, जिसका सबसे प्रमुख कारण था भू-राजस्व प्रणाली। यहाँ की भू-राजस्व प्रणाली बहुत ही कठोर थी। जमीन की आमदनी को छोड़कर बाकी तमाम पेशों की आमदनी पर राजस्व घटती-बढ़ती दरों से लगता था अर्थात कम आमदनी वाले को कम दर से कर देना पड़ता था और अधिक आमदनी वाले को अधिक दर से लेकिन किसानों को एक ही लाठी से हांका जाता था। सभी को दो रुपये प्रति एकड़ की दर से कर देना पड़ता था।[2]

किसानों के साथ भू-राजस्व के सम्बन्ध में एक और ही निराला दुर्व्यवहार किया जाता था कि अगर एक साल उपज बहुत अच्छी होती हो तो भी किसान से सरकार एक निश्चित भू-राजस्व की रकम वसूल करती थी और अगर अगले साल फसल बिल्कुल नष्ट हो गई तो भी कोई छूट नहीं मिलती थी।[3] केवल भू-राजस्व की वसूली स्थगित होती थी। जब तक मालगुजारी तीन फसलों तक लगातार रूक न जाए छूट का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था।[4] भू-राजस्व वसूल करने की प्रणाली भी बहुत कठोर थी। अगर सरकार चाहती तो बाकीदार की कुछ चीजों को छोड़कर जो कुर्की से वर्जित हैं बाकी सारी चल-अचल सम्पत्ति को कुर्क या नीलाम किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त किसानों को नकद भू-राजस्व चुकाने, अकालों से उभरने और अपने सामाजिक अनुष्ठानों को पूरा करने के लिए जमींदारों, बनियों या साहूकारों से ऋण लेना पड़ता था। यहाँ का साहूकार, सूदखोर किसानों को बहुत ऊंची ब्याज दर पर ऋण देते थे और किसानों को मजबूरन अपनी आवश्यकताओं के लिए ऊँची ब्याज दर पर ही ऋण लेना पड़ता था। तत्कालीन समय में दक्षिण-पूर्वी पंजाब में किसानों की दशा काफी नाजुक थी और वह काफी बड़ी संख्या में कर्जमंद थे।[5] सन् 1921 में पंजाब इंक्वायरी कमेटी ने पंजाब के किसानों के कर्जमंद होने के बारे में बताया कि 1921 ई. में कृषि ऋण 90 करोड़ रुपये था जो 1929 ई. में बढ़कर 135 करोड़ रुपये हो गया तथा 1939 ई. में बढ़कर 200 करोड़ रुपये हो गया। इस इंक्वायरी कमेटी ने यह भी बताया कि 1923 ई° में पंजाब के 87 प्रतिशत किसान बुरी तरह से ऋण-ग्रस्त थे जिन पर 40000 सूदखोरों का ऋण चढ़ा हुआ था।[6] इस समय ब्याज पर उधार देना पंजाब में कृषि व्यवसाय के बाद दूसरा मुख्य व्यवसाय था। पंजाब में यह अनुमान लगाया गया कि पंजाब के किसान ऋण पर ब्याज उनके द्वारा अदा किये गए भू-राजस्व तथा पानी खर्च के जोड़ की तुलना में 4-5 गुणा ज्यादा अदा करते थे।[7] बिल्कुल यही स्थिति दक्षिण-पूर्वी पंजाब अर्थात् हरियाणा में थी।

अतः तत्कालीन समय में हरियाणा में किसानों की आर्थिक स्थिति बिगड़ने का प्रमुख कारण कर्जों का बहुत ज्यादा भार था। किसानों पर सरकार द्वारा, सूदखोरों द्वारा, साहूकारों द्वारा मनमाने अत्याचार किए जाते थे। कृषि व्यवसाय का जहां तक सम्बन्ध था लाभप्रद नहीं था। उस समय कृषि व्यवसाय के बारे में अनुमान लगाया था कि एक किसान जो 5 रुपये भू- राजस्व अदा करता था तथा साथ में उसका एक पुत्र भी नौकरी करता था, वह उस व्यक्ति से अच्छी स्थिति में था जो भू-राजस्व तो 25 रुपये अदा करता था लेकिन उसके परिवार में कोई भी सदस्य नौकरी नहीं करता था। अंग्रेजी राज में इस क्षेत्र के किसानों पर कर्ज बढ़ने की समस्या पर एम.एल.

डार्लिंग ने अपनी पुस्तकों में विस्तार से प्रकाश डाला है। 1925 में उन्होंने अपनी पुस्तक ''कर्ज और खुशहाली में पंजाबी किसान'' 1930 में 'कर्जदार किसान' और 1934 में पंजाबी गांव में 'बचत और बर्बादी' प्रकाशित की थी। इन पुस्तकों के माध्यम से उन्होंने दिखाया है कि किस तरह अंग्रेजी राज में पंजाब में किसानों पर कर्ज का बोझ और महाजनों की संख्या बढ़ी। डार्लिंग का कथन है कि 1911 में पंजाब महाजन उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच गया था।[8]

तालिका सं. 1

पंजाब में कृषि ऋणग्रस्तता के विभिन्न पहलू

विषय	1921	1929	1930	1936
कुल कृषि ऋण (प्रति करोड़ रुपये में)	90	135	140	200
1921 के बाद ऋण में प्रतिशत वृद्धि	–	50	56	122
भू-राजस्व के बहुविध में ऋण	19	27	52	50
ऋण प्रति एकड़ कृषि क्षेत्र (रुपये प्रति एकड़)	31	45	46	66
कृषि द्वारा समर्थित कुल संख्या	11864688	–	12932511	18800000
कृषि द्वारा समर्थित प्रति व्यक्ति ऋण	76	–	104	106
कृषि उपज का सकल मूल्य (प्रति करोड़ रुपये में)	128	99	83	65
कृषि उपज के प्रतिशत के रूप में ऋण	70	136	168	307

स्रोतः पंजाब प्रांतीय बैंकिंग जांच समिति की रिपोर्ट जनगणना रिपोर्ट, प्रांतीय बजट आदि से लिए गए आंकड़ों से की गई गणना।

इस प्रकार तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 1921 से 1936 तक कुल कृषि ऋण 122 प्रतिशत यानि 90 करोड़ रुपये से बढ़कर 200 करोड़ रुपये हो गया था। कृषि द्वारा समर्थित प्रति व्यक्ति ऋण 76 रुपये से बढ़कर 106 रुपये हो गया था, जबकि उसी समय प्रति एकड़ कृषि क्षेत्र 31 रुपये से 66 रुपये हो गया था। 1929 ई. की आर्थिक मंदी ने इनकी स्थिति को और खराब कर दिया था क्योंकि कृषि उपज का सकल मूल्य जो 1921 में 128 करोड़ रुपये था वो 1936 ई. में घट कर 65 करोड़ रुपये रह गया था। कृषि उपज के सकल मूल्य में कमी के साथ, इस ऋण का बोझ किसानों की किसी भी गलती के बिना या साहूकारों द्वारा आगे किसी भी उधार के बिना बहुत बढ़ गया था।

चौधरी छोटूराम और उनकी यूनियनिस्ट पार्टी ने किसानों और निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए काफी प्रयास किये। यूनियनिस्ट पार्टी का निर्माण 1924 ई. में मियां फजले हुसैन ने किया था। इसे जमींदार पार्टी भी कहा जाता था। चौधरी छोटूराम के नेतृत्व में ही इस पार्टी ने किसानों में जागृति पैदा की, सिंचाई साधनों का विकास करवाया और किसानों के हितों को ध्यान में रखकर कई कानून भी बनवाएं।

अत्यधिक भू-राजस्व और इसके संग्रह में कठोरता किसानों की ऋणग्रस्तता के मुख्य कारणों में से एक था। जिससे किसान को न केवल अपनी भूमि, बल्कि अपने मवेशियों व आभूषणों को भी बेचना पड़ता था और हालांकि बहुत बार नहीं पर अपनी बेटियों को भी भू-राजस्व का भुगतान करने को कहा जाता था। सर छोटूराम के अथक प्रयासों से पंजाब भूमि राजस्व (संशोधन) अधिनियम, 1928 जिसे फरवरी 1929 में गवर्नर जनरल की सहमति प्राप्त हुई, जिसने सभी भूमि छोटे व बड़े मालिकों को काफी राहत दी और इन मामलों को निपटाने की अवधि के रूप में 40 वर्ष निर्धारित कर दिए गए। 1938 तक पंजाब में भू-राजस्व दर पूरे देश में सबसे कम थी।

रेग्युलेशन ऑफ अकाउंट एक्ट, 1930

हिसाब में धांधलेबाजी को रोकने के लिए यह एक्ट बनाया गया।[9] इस एक्ट के बनने से पहले सूदखोर कृषकों से हिसाब करते धांधलेबाजी कर देते थे। वे ब्याज पर ली

गई रकम पर ब्याज दर लगा कर वास्तविक रकम को बहुत ज्यादा बढ़ा देते थे। वे ब्याज का हिसाब करते समय और जोड़ करते समय भी हेराफेरी करते थे। इस एक्ट के बन जाने पर साहूकार के लिए बही-खाता रखना जरूरी कर दिया गया, जिससे साहूकार किसान से किसी भी तरह की धांधलेबाजी नहीं कर सकता था।

पंजाब रिलीफ ऑफ इन्डैब्टनेस एक्ट, 1934

चौधरी छोटूराम के प्रयासों से पंजाब सरकार ने 1934 में पंजाब रिलीफ ऑफ इन्डैटनेस एक्ट बनाया। इस बिल का मुख्य ढांचा सर छोटूराम द्वारा ही तैयार किया गया था। अब किसान कर्जदारों की भूमि और मकान को नीलाम नहीं किया जा सकता था और न ही जब्त किया जा सकता था।[10] इसके तहत हर जिले में मसलहति बोर्ड (जबरदस्ती करने वाला बोर्ड) बना। इस मसलहति बोर्ड का मुख्य उद्देश्य ऋण की रकम को कम करना था तथा इस एक्ट के तहत कर्जदार ऋण की रकम का कुछ हिस्सा तो अदा करना था और बाकी रकम किस्तों में चुकानी थी। इसके अतिरिक्त जमानती ऋण पर अधिक से अधिक 12 प्रतिशत वार्षिक साधारण ब्याजदर या 9/3 प्रतिशत चक्रवृद्धि ब्याज दर हो सकती थी। बिना जमानत के ऋणों पर 183/4 साधारण ब्याज दर हो सकती थी।[11] लेकिन इम्पीरियल बैंक और अन्य ऐसी वर्किंग कम्पनी को भारतीय कम्पनी एक्ट 1913 के तहत पंजीकृत हुई थी और सहकारी समितियों को इस विधान की धारा से बाहर रखा गया। अब कृषक कर्जदारों की भूमि और मकान की बोली नहीं की जा सकती थी और न ही उसे जब्त किया जा सकता था। न्यायालय जब कर्जदार को ऋण अदा करने की सामर्थ्य देखता था तो इसमें इन चीजों को शामिल नहीं किया जाता था जो कि कानून द्वारा बाहर रखी गई थी। इस एक्ट के पश्चात् भूमि का अस्थायी हस्तांतरण स्वीकार नहीं किया जा सकता था। अब जिस कर्जदार के विरूद्ध डिग्री जारी की गई हो, को कर्ज अदा करने की स्थिति में गिरतार नहीं किया जा सकता था।[12]

पंजाब रजिस्ट्रेशन ऑफ मनी लैण्डर्स एक्ट, 1938

पंजाब के किसानों पर सन् 1937 ई. तक आते-आते इनकी रकम 200 करोड़ तक पहुँच गई थी।[13] पंजाब के किसान प्रति वर्ष भू-राजस्व और पानी खर्च के लिए अदा की गई रकम की तुलना में सिर्फ ऋण पर ब्या 4-5 गुणा अदा करते थे। पंजाब में ब्याज पर उधार देने का पेशा कृषि के बाद दूसरा मुख्य व्यवसाय बन गया था। सूदखोर यहां पर गैर-कानूनी धंधा चला रहे थे। पूरे पंजाब में 55000 सूदखोरों में से सिर्फ 8232 लोग ही ऐसे थे जिनका सरकार के पास रजिस्ट्रेशन था।[14] इस समस्या के समाधान के लिए यूनियनिस्ट पार्टी की लेजिस्लेटिव असैम्बली के प्रथम अधिवेशन में रजिस्ट्रेशन ऑफ मनी लैण्डर्ज बिल पेश किया गया। इस बिल का मुख्य उद्देश्य उधार (ब्याज पर) देने पर प्रतिबंध लगाने के लिए लाइसैंस लेना जरूरी करना था। यदि सूदखोर के पास लाईसेंस नहीं है, (अथवा उसका सरकार के पास रजिस्ट्रेशन नहीं है) तो उसकी रकम को वापस दिलाने के लिए कोई कानूनी सहायता नहीं दी जाएगी।[15] सूदखोर के दुर्व्यवहार का पता लगने पर उसके पंजीकरण को रद्द किया जा सकता था। यह एक्ट गैर-कृषक तथा कृषक सूदखोर दोनों पर समान रूप से लागू होता था।[16]

इस बिल का काफी विरोध किया गया जिनमें ज्यादातर शहरी सदस्य थे। इनकी अध्यक्षता गोकुलचंद नारंग कर रहे थे।[17] इसके विरोध का मुख्य कारण यह था कि इस बिल में बेईमान बनियों से सूदखोरों को बचाने के लिए कोई भी प्रावधान नहीं था क्योंकि सूदखोरों को डर था कि अब बेईमान ऋण तो ऋण वापिस नहीं करेंगे। लेकिन यूनियनिस्टों ने इसके समर्थन में कहा कि यह बिल ईमानदार सूदखोरों को कोई हानि नहीं पहुँचाएगा बल्कि बेईमान सूदखोरों पर प्रतिबंध लगाएगा।[18] इस एक्ट का समर्थन करते हुए चौधरी छोटूराम ने कहा-"मैं महाजन का दुश्मन नहीं हूँ। मै उन्हें अपना भाई समझता हूँ। मेरी दुश्मनी तो उन साहूकारों से है जो बेनामी सौदों के जरिए किसानों की जमीनों को हथियाते हैं और किसानों की मेहनत को क्रूर तरीकों से लूटते हैं।" उन्होंने व्यापारियों से कहा कि यूनियनिस्ट पार्टी की नीति किसानों, गरीबों के रहने सहने के स्तर को ऊँचा करने के लिए है, किसी के जीवन-स्तर को नीचा करने के लिए नहीं। धर्म के नाम पर लोगों को लड़ाने से आर्थिक समता के नाम पर लड़ना बीस गुणा अच्छा है।

इस एक्ट के लिए प्रयास कई प्रांतीय लेजिस्लेटिव असेम्बलियों में हो चुका था, यहाँ तक कि केन्द्रीय लेजिस्लेचर में भी प्रयास हो चुका था। लेकिन यह एक्ट सबसे पहले पंजाब में ही 1938 ई° में बना।

द पंजाब रेसिटच्यूशन ऑफ मॉर्गेज लैंड एक्ट, 1938

यहाँ की एक प्रमुख समस्या रहन शुदा जमीनों के

समाधान के लिए यूनियनिस्टों ने 'रेस्टिच्यूशन ऑफ मॉर्गेज लैंड बिल, 1930' में पेश किया। यह बिल 1938 में ही एक्ट बन गया। इस एक्ट के तहत 8 जून 1901 से पहले की रहनशुदा जमीनों की वापसी मुत में करवा दी गई, जिसमें 5 प्रतिशत जमीन कृषक सूदखोरों और 95 प्रतिशत जमीन अकृषक सूदखोरों द्वारा वापस की गई। इस एक्ट से किसानों को ऋण में बहुत राहत मिली। 365000 किसानों की 835000 एकड़ भूमि वापिस मिली।[19] पंजाब सरकार के द्वारा किसानों की भूमि को साहूकार के द्वारा खरीदने पर प्रतिबंध लगाने के लिए अथवा किसान की जमीन को गैर-जमींदार व्यक्तियों के हाथों से बचाने के लिए 1901 में एक एक्ट बनाया गया, जिसे इंतकाली अराजी एक्ट कहते थे।[20] 1938 में इस एक्ट में एक और संशोधन किया गया था। इसे जमींदार-साहूकार एक्ट भी कहा जाता था, क्योंकि अभी तक बड़े जमींदारों को साहूकारों की सूची में नहीं रखा गया था। 1940 तक इस एक्ट से संयुक्त पंजाब के 13 लाख लोगों को लाभ मिला। बेनामी तौर पर 40 लाख एकड़ भूमि साहूकारों के पास थी। इस भूमि की कीमत लगभग 16 करोड़ रुपये थी।[21] इस एक्ट के बनने पर भी लाखों लोगों को फायदा हुआ।

पंजाब रिलीफ ऑफ इंडैब्टिडनैस (संशोधित) एक्ट XII, 1940 के अंतर्गत लेनदारों और देनदारों को लंबे समय से चल रहे ऋण के मामलों की मुकदमेबाजी से बचाने के लिए जिला मुख्यालयों में Debt Conciliation Boards बनाए गए। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए सुरक्षित ऋणों के लिए 7.5 प्रतिशत प्रति वर्ष व असुरक्षित ऋणों के लिए 12.5 प्रतिशत प्रति वर्ष ब्याज की अनुमति दी गई थी। इन दरों पर 1942 ई. तक 1400 लाख रुपये तय हो चुके थे।

मण्डी कानून

मंडी एक ऐसी संस्था है जिसमें हर अमीर और गरीब, छोटे और बड़े को आना पड़ता है। यहां मिडल और अपर मिडल क्लास के लोग कारोबार करते हैं। इनमें से बहुत सारे कमीशन एजेन्ट होते हैं जो बड़े व्यापारियों की तरफ से मंडियों में खरीद-फरोख्त करते हैं। किसानों की उपज के भाव समय-समय पर ऊपर नीचे करने के लिए सट्टा लगाते हैं। यह कमीशन एजेन्ट किसानों की उपज अपने मनमाने भाव खरीद कर बड़े व्यापारियों के गोदामों में भर देते हैं और उनका बना हुआ पक्का माल लाकर आम लोगों को बेचते हैं और बीच में कमीशन बनाते है। पूंजी बड़े व्यापारी की माल गरीब देहाती का और आमदनी इन बिचौलियों की। हींग लगे न फटकरी रंग चौखा आये। यह वे लोग है जिनकी पांचों उँगलियां घी में और सिर कड़ाही में होता है।

एक समय था जब सरकारी (मुद्रा) सिक्का, रुपया, देहात और शहरों की आम जनता में इन कमीशन एजेन्टों की मार्फत ही पहुंचता था। सरकार किसान जमींदार से 'नकद' के रूप में मालियाना और आबियाना वसूल करती है। इस नकद को हासिल करने के लिए ही किसान और हर देहाती फसल उठाते ही मंडी की तरफ भागता है। मंडी के कमीशन एजेंट और व्यापारी किसान की इस लगन और मजबूरी का अनुचित लाभ उठाते हैं, वह जानते हैं कि किसान अपनी पैदावार गाड़ी में भर कर जब लाता है तो उलटा घर ले जाने के लिए नहीं लाता, क्योंकि उनको फौरी तौर पर नकद की आवश्यकता होती है। इस नकद के बिना न उसकी सरकारी अदायगी हो सकती है न बच्चों के ब्याह-शादी किये जा सकते हैं, न बच्चों को शिक्षा दिलाई जा सकती है और ना ही उनकी बीमारी का इलाज कराया जा सकता है।

मंडियों के अंदर भी कुछ ऐसा माहौल था कि 'जान मारे बानियां पिछान मारे जाट' की कहावत पर खुलकर अमल होता था। आदमी किसान को कहीं उजागर और कहीं गुप्त रूप से लूटते थे। उनकी अपनी बनाई हुई तखड़ी और ईंट-पत्थर के बांट होते थे जिनका पूरा वजन होने की कोई गारन्टी नहीं होती थी। सरकारी पड़ताल पर इनके बट्टे 49 प्रतिशत और तखड़ी 69 प्रतिशत पैमाने में कम पाई गई थी। इनके राज और दूसरे पैमाने भी कई बार लकड़ी के बने हुए होते थे। जमींदार का माल तौलने का अजीब रिवाज और तरीका था। तखड़ी की तौल में शुरू के दो पलड़े 'रामां' रामां गिन कर डाले जाते थे। एक भगवान राम के नाम का और दूसरा धर्म के नाम का। धर्मादा वसूल करने की यह पहली स्टेज थी। इनका वजन जमींदार के माल में शुमार नहीं होता था और इनकी कीमत जमींदार को नहीं मिलती थी। एक मंडी में एक फसल पर ऐसा हजारों मन अनाज एकत्रित हो जाता था। अनाज की झराई, ढुलाई, भराई, तुलाई की मजदूरी जमींदार के जिम्में होती थी।[22] मंडी के कारोबार की अच्छाई व बुराई, ईमानदारी व बेईमानी, सही और गलत, इंसाफ और बेइंसाफी, कानूनी कार्यवाहियों की पड़ताल

और रोकथाम के लिए कोई सरकारी मशीन नहीं होती थी।

इस लूट को बंद करने के लिए व किसानों को उनकी पैदावार के उचित मूल्य दिलाने के लिए चौधरी छोटूराम ने दो बिल पेश किए। एक पंजाब कृषि उपज की मंडियों में बिक्री को रेगूलेट करने का बिल 1938-39 और दूसरा पंजाब वजन (तुलाई-मपाई) और बट्टों का बिल 1938-39। इन बिलों के तहत आढ़तियों को रजिस्टर कराना और लाइसेंस लेना आवश्यक हो गया। कांटा व बट्टे सरकारी मोहरशुदा रखने पड़े।[23]

मंडियों में कारोबार की पड़ताल देख-रेख और कानून पर अमल कराने के लिए मंडी के मार्केटिंग कमेटियाँ बनाई गई। हर कमेटी में 50 प्रतिशत से अधिक जमींदारों को नामजद किया गया। तखड़ी, बट्टों और पैमानों की पड़ताल के लिए दूसरे कर्मचारियों के काम की देखभाल के लिए इंस्पैक्टर लगाये गये। ध्येय व्यापारियों का उचित व्यापार खत्म करना नहीं था, बल्कि मंडियों के कारोबार और व्यवहार में सुधार करना था ताकि खोटे बट्टे कानी डंडी, झूठे पैमाने और अनुचित लाभ बंद कर दी जाये। इरादा बहुत ने कथा, समाज की भलाई में था। पिछड़े लोगों को सहारा देने का था। किसी के ईमानदारान रोजगार पर बात करना नहीं था, लूट की कमाई पर अंकुश लगाना था। इस एक्ट से छोटे किसानों को ज्यादा लाभ हुआ क्योंकि बड़े जमींदारों को मण्डी में जाने की आवश्यकता नहीं होती थी। उनके पास थोक व्यापारी अनाज खरीदने के लिए स्वयं आ जाते थे। बड़े जमींदार अपनी फसल को बाजार में बेचने के लिए ले भी जाता था तो दलाल उनका बड़ा आदर करते थे और उनको किसी तरह की धांधलेबाजी का डर नहीं होता था। जबकि छोटे किसानों को साहूकार के द्वारा धोखा दिया जाता था और लूटा जाता था।[24]

मालगुजारी कानून

कुछ इसी तरह का एक अन्य एक्ट मालगुजारी एक्ट से भी किसानों की स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ। सरकार ने पहले माालगुजारी का यह सिद्धान्त बना रखा था कि पैदावार का 55 प्रतिशत हिस्सा किसान के पास रहेगा और 45 प्रतिशत हिस्सा सरकार का होगा। यूनियनिस्ट पार्टी के प्रयासों से इसमें एक बहुत ही महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। अब कुल आमदनी में से 25 प्रतिशत सरकार की मालगुजारी निश्चित की गई।[25] भू-राजस्व वसूली के सिद्धान्त में यह परिवर्तन एक क्रांतिकारी कदम था। इसके अतिरिक्त सरकारी खर्चों में अधिक से अधिक कटौती करके किसान को अन्य प्रकार की रियायतें दी। इस एक्ट के तहत 25 लाख रुपये की छूट दी गई हालांकि सर छोटूराम ने इस छूट को बहुत कम बताया।[26] इस एक्ट से सभी किसानों को लाभ हुआ और खुशहाली आई।

प्रांतीय दिवालिया एक्ट

इस एक्ट के तहत किसान दिवालिया कोर्ट में जाकर अपने आपको दिवालिया घोषित कर सकता था यदि वह अपने आपको आर्थिक तौर पर असमर्थ और असहाय पाये और ईमानदारी से महसूस करे कि वह कर्जा अदा नहीं कर सकता। वह केवल आठ आने कोर्ट फीस देकर अपना कर्जा माफ करवा सकता था। इस एक्ट के तहत सिर्फ वे व्यक्ति आते थे जिनके कर्जे 250 या इससे अधिक है या जिनकी सम्पत्ति की कीमत 2 हजार से अधिक नहीं।

इस प्रकार यूनियनिस्टों द्वारा किए गए प्रयासों के परिणामस्वरूप सरकार ने किसानों की भलाई के लिए अनेक कानून पास किए, जिन्हें लोगों ने सुनहरें कानूनों का नाम भी दिया। इन कानूनों के बन जाने पर किसानों की दशा में काफी सुधार हुआ।

हालांकि अपने निहित स्वार्थों के कारण साहूकारों, व्यापारियों और राजनीतिक विरोधियों ने इन विधानों के खिलाफ आवाज उठाई और राज्य विधानमंडल की कानूनी वैधता पर सवाल उठाते हुए इस तरह के विधानों को पारित किए जाने के मामले को संघीय न्यायालय में ले जाने की धमकी दी। यह मुख्य रूप से छोटू राम ही थे जिन्होंने इन सभी कृषि विधानों के मुख्य उद्देश्यों को जनता के सामने रखा और उन विरोधियों की आलोचना का जवाब दिया, जिन्होंने इन विधानों को ब्लैक एक्ट कहा था। इन विधानों का बड़े पैमाने पर प्रचार करने के लिए और ग्रामीण क्षेत्रों के हर वर्ग को इनके प्रति जागृत करने के लिए छोटू राम ने पंजाब के कई जिलों में विशाल ग्रामीण सम्मेलनों का आयोजन किया।

कृषि सहायता कोष की स्थापना

इसके अतिरिक्त किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए सर छोटूराम के प्रयासों से कृषि सहायता कोष की स्थापना भी की गई, जिसमें सरकार ने एक्ट के समय विशेष रूप से अकाल, टिड्डी, ओले, शीत, बाढ़ आदि प्राकृतिक प्रकोपों से राहत के लिए कृषि सहायता कोष से

किसानों को अनुदान राशि देने के लिए 55 लाख रुपये जमा किए।[27] यह रुपया सिर्फ किसान की खातिर ही खर्च किया जा सकता था। विशेष रुप से प्राकृतिक प्रकोपों के कारण जब किसान की फसल खराब हो जाती थी और किसान को इतना भी नहीं मिल पाता था कि वह अपने बच्चों को दो वक्त की रोटी ही दे सके। ऐसे संकट के समय पर इसी कृषि सहायता कोष से किसानों को अनुदान राशि दी जाती थी। इस कृषि सहायता कोष के बनने से पहले सरकार ऐसी प्राकृतिक आपदाओं के समय विभिन्न विभागों में ज्यादा खर्च कर देने के बाद किसानों की सहायता के लिए बहुत ही कम राशि बचा पाती थी। सारे भारत में पंजाब में यह प्रथम प्रयास था, जिसने किसानों को प्राकृतिक प्रकोप से पीड़ित होने पर सहायता मिलने का आश्वासन दिया। इसी कृषि सहायता कोष के विरोध में जब सरदार लाल सिंह ने कहा कि इससे किसानों में हीन भावना बढ़ेगी। तब चौधरी छोटूराम ने कहा– "मैंने जिंदगी भी किसान को ऊँचे इरादे रखने की प्रेरणा दी है। किसान अपनी इज्जत को समझने लग गया है। वह अपने हितैषी और शत्रु को जानने लग गया है।"[28] कृषकों की आर्थिक दशा सुधारने की दिशा में यह महत्वपूर्ण प्रयास था। सारे भारत में पंजाब में यह प्रथम प्रयास था जिसने किसानों को प्राकृतिक प्रकोप से पीड़ित होने पर सहायता मिलने का आश्वासन दिया।

सिंचाई सुविधाओं का विकास

इसके साथ ही चौधरी छोटूराम का सिंचाई के साधनों के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हरियाणा के कई क्षेत्रों में वर्षा काफी कम होती थी और जिन क्षेत्रों में वर्षा होती थी, वहाँ भी कभी ज्यादा हो जाती थी तो कभी बिल्कुल सूखा रह जाता था। हरियाणा के रोहतक, हिसार और गुड़गांव जिले तो सिंचाई के क्षेत्र में बहुत ही ज्यादा पिछड़े हुए थे।[29] चौधरी छोटूराम के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हरियाणा में सिंचाई के साधनों का धीरे-धीरे विकास होता चला गया।

सिंचाई क्षेत्र में चौधरी छोटूराम की मुख्य देन चाही रेट को समाप्त करवाना था। चौधरी छोटूराम ने चाही रेट का विरोध करते हुए एक ज्ञापन दिया जिसमें तर्क दिया गया कि कुओं की खुदाई पर खर्च किसान द्वारा किया जाता है, इसलिए सरकार को इस पर लागत लेने का अधिकार नहीं है। 1930 में यूनियनिस्ट पार्टी के घोषणा-पत्र में भी उन्होंने चाही रेट की समाप्ति को रखा।[30] परिणामस्वरूप अंत में 1933 में सरकार ने कुछ जिलों में जैसे रोहतक जिले में चाही रेट को समाप्त कर दिया।[31]

इस क्षेत्र में चौधरी छोटूराम का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य पानी कर (आबियाना दर) को कम करवाना था। पंजाब सरकार ने सर छोटूराम के सुझाव पर 1935 में आबियाना दर को घटा दिया। इस समय पूरे पंजाब में आबियाना की रकम में 37 लाख 50 हजार की कमी की गई।[32] 1942 तक सम्पूर्ण भारत में पंजाब का किसान दूसरे नम्बर पर सबसे कम आबियाना दर अदा करता था। इस समय भारत के लगभग सभी प्रान्तों में आबियाना दर पंजाब से ऊँची थी।

भाखड़ा बांध के निर्माण में भी सर छोटूराम का प्रमुख योगदान रहा है। हरियाणा के जिलों के पिछड़ेपन का मुख्य कारण यहाँ सिंचाई सुविधाओं का अभाव था तथा यहाँ वर्षा भी अपर्याप्त ही होती थी। इसलिए इस क्षेत्र की उन्नति काफी हद तक भाखड़ा बांध के निर्माण पर निर्भर थी। इस योजना को पूरा करवाने के लिए चौधरी छोटूराम ने हरियाणा क्षेत्र के लोगों को प्रेरणा दी कि वे भाखड़ा बांध परियोजना को व्यवहारिक रूप देने के लिए सरकार पर दबाव डाले। जनवरी 1928 में इस परियोजना को स्वीकृति भी प्रदान कर दी गई थी। इसके बाद इसे भारत सरकार की स्वीकृति के लिए भेज दिया गया था।[33] तथापि चौधरी छोटूराम के जीवनकाल में इस योजना को कार्यान्वित नहीं किया जा सका। इस परियोजना के ठीक समय पर कार्यान्वित न होने के लिए बम्बई सरकार, बिलापुर का नवाब, केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार के बीच मतभेदों का होना था।[34] सर छोटूराम ने अपने उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इन सारी समस्याओं को सुलझा भी दिया था। लेकिन उनके इतने कठिन प्रयासों के बावजूद भी भाखड़ा बांध परियोजना का काम सर छोटूराम के जीवनकाल में शुरू न हो सका।

इस प्रकार चौधरी छोटूराम के दबाव के प्रभावस्वरूप खासकर 1930 के पश्चात् औपनिवेशिक सरकार ने हरियाणा में किसानों की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए कई सराहनीय प्रयास किए। सरकार द्वार बनाए गए कानूनों से न केवल किसानों के शोषण में कमी आई बल्कि किसानों पर ऋणग्रस्तता का निरन्तर बढ़ता बोझ भी कम हुआ। किसानों की ऋणग्रस्तता को कम करने के लिए 1939 तक पंजाब में 29 डेब्ट-कॉन्साइटेशन बोर्डस स्थापित किए गए थे। जिसमें क्रमशः देनदारों और

साहूकारों से 40720 और 27060 आवेदन प्राप्त हुए जिसमें 5.634 करोड़ रुपये और 2710034 रुपये के ऋण शामिल थे।

जिसके तहत 1940 के दौरान 2.26 करोड़ रुपये के 26000 मामलों का निपटारा किया गया। 1941 तक पूरे पंजाब में लगभग 14 करोड़ दावों का निपटारा कर दिया गया था।[35] अखिल भारतीय ग्रामीण क्रेडिट सर्वेक्षण (वॉल्यूम-I, पार्ट पृ. 221) की रिपोर्ट के अनुसार कॉन्साइटेशन लेजिस्लेशन के सबसे अच्छे परिणाम पंजाब में रहे।

डार्लिंग की सूचना के अनुसार पहली बार कम से कम दो पीढ़ी के ऋण में कमी आई। वह आगे लिखते हैं कि पंजाब में 75 प्रतिशत से 90 प्रतिशत तक के असुरक्षित ऋण पूरे हो गए और 66 प्रतिशत से 77 प्रतिशत तक गिरवी ऋण।[36]

इसके अतिरिक्त सरकार ने मालगुजारी की दर को भी पहले की बजाय कम कर दिया। सिंचाई के साधनों के विकास की तरफ भी ध्यान दिया गया। इन सारे सुधारों, प्रयासों के करने के लिए सरकार पर सबसे ज्यादा दबाव चौधरी छोटूराम ने डाला। इसी कारण चौधरी छोटूराम को किसानों का मसीहा कहा गया।

सन्दर्भ

१. वर्मा, डी.सी., सर छोटूराम, *'लाईफ एंड टाइम्स'*, स्टर्लिंग पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १९८१, पृ. ३५
२. चौधरी छोटूराम, *'बेचारा किसान'*, सं. रणजीत सिंह, रोहतक, १९८१, पृ. ३८
३. वही, पृ. ३९
४. द ट्रिब्यून, लाहौर, ०६.०२.१९३३, पृ. ७
५. तंवर, रघुवेन्द्र, *'यूनियनिस्ट पार्टी इन पंजाब'*(१९२३-१९४७) अप्रकाशित पीएच.डी. शोध ग्रंथ, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र, १९८६, पृ. ८५
६. वही, पृ. ८६
७. पंजाब लेजिस्लेटिव कौंसिल डिबेटस, २१.०३.१९३३, पृ. ६६८
८. पामदत्त, रजनी, *'आज का भारत'*, जन प्रकाशन बम्बई, पृ. २४१-४२
९. सिंह, हरि, दीनबंधु चौधरी, *'सर छोटूराम जीवन चरित'*, रोहतक, १९८४, पृ. ग्टप्
१०. बजाज, यशपाल, सर छोटूराम, अप्रकाशित पीएच.डी., शोध ग्रंथ, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र, पृ. १४५
११. वही, पृ. १४५
१२. वही, पृ. १४६
१३. पंजाब बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी रिपोर्ट, १९३०, पृ. ३१३
१४. पंजाब लेजिस्लेटिव असेम्बली डिवेट्स, १९३८, भाग-५, पृ. २२८-३०
१५. तंवर, रघुवेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. १९०
१६. पंजाब लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स,१९३८, भाग-५, पृ. २२८-३०
१७. तंवर, रघुवेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. १९०
१८. पंजाब लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स, भाग-५, पृ. ९८३-८९
१९. जाट गजट, २७/०७/१९३८, पृ. १
२०. चौधरी, प्रेम, *'पंजाब पालिटिक्सः दि रोल ऑफ सर छोटूराम'* विकास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १९८४, पृ. २३९-४०
२१. जाट गजट, २५/०१/१९३९, पृ. ६
२२. सांगवान, सूरजमल, *'किसान संघर्ष तथा विद्रोह'*, (दीनबंधु सर छोटूराम के संदर्भ में), आनन्दा प्रिंटिंग प्रेस, नई दिल्ली, पृ. ७८
२३. सांगवान, सूरजमल, पूर्वोक्त, पृ. ७९
२४. जाट गजट, २३/११/१९३८, पृ. ८
२५. सिंह, हरि, पूर्वोक्त, पृ. ८१
२६. वही, पृ. ८१
२७. वही, पृ. ८४
२८. सिंह, हरि, पूर्वोक्त, पृ. ८४
२९. बजाज, यशपाल, पूर्वोक्त, पृ. १५८
३०. जाट गजट, १०/०८/१९२७, पृ. ४
३१. जाट गजट, २७/०५/१९३१, पृ. २
३२. पंजाब लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स, १६/०३/१९४३, पृ. ३५७
३३. पंजाब लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स, भाग-XII, ०३/१२/१९२८, पृ. २७४
३४. बजाज, यशपाल, पूर्वोक्त, पृ. १७३
३५. हरियाणा स्टेट गजेटियर, वोल्यूम-II, एग्रीकल्चर एंड इरिगेशन, हरियाणा गजेटियरस आर्गेनाइजेशन, रेवेन्यू डिपार्टमेंट, चण्डीगढ़, २००८, पृ. ५५०
३६. वही, पृ. ५५०

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी-जून 2019

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

राष्ट्रवादियों को संगठित करने में दादाभाई नौरोजी की भूमिका

❑ डॉ0 प्रियंका कुमारी

प्रस्तुत शोध-पत्र में राष्ट्रवादियों को संगठित करने में दादा भाई नारौजी के योगदानों पर प्रकाश डाला गया है। राष्ट्रीय भावना के प्रसार एवं विकास में दादा भाई की एक महान योगदान रहा है। पहली काँग्रेस के अध्यक्ष ने अपने भाषण में ही यह जोर दिया था कि सभी देश प्रेमियों के बीच आपसी प्रेम एवं मेल जोर बढ़ाना काँग्रेस का पहला उद्‌देश्य होगा। घनिष्ठ व्यक्तिगत सम्पर्क के माध्यम से धर्म, जाति, भाषा एवं प्रान्त के विभेदों को दूर करके राष्ट्रीय भावना को संपुष्ट करना काँग्रेस का दूसरा उद्‌देश्य था। इसमें कोई सन्देह नही है कि प्रारंम्भिक चरण के नेता इस दोनों उद्‌देश्यों की सिद्धि में सफल रहे। काँग्रेस के अधिवेशन के माध्यम से नेताओं ने अपने देशवासियों को संगठित किया और सिखलाया कि वे एक ही भारत माता के संतान है। देश प्रेम की भावना को शक्तिशाली बनाने में दादा भाई तथा अन्य नेताओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

राष्ट्र प्रेम के लिए दादाभाई नौरोजी द्वारा किए गए कार्यो का प्रभाव राष्ट्रवादियों को एकजुट करने में सफल रहा था, उन्होंने राजनीतिक संगठनों की एकता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने भारतवासियों को सलाह दी कि वे याचिकाओं तथा सभाओं द्वारा आंदोलन चलाने के मार्ग पर दृढ़ता से डटे रहें। आंदोलन पाश्विक बल का नैतिक विकल्प है। दादाभाई ने स्पष्ट रूप से कह दिया था कि भारत में ब्रिटिश प्रशासन के आधारभूत सिद्धांत अनुचित हैं अतः वे चाहते थे कि कांग्रेस उनके विरूद्ध आंदोलन करे। किन्तु उन्होंने अनुभव कर लिया था कि भारत के लिए एकमात्र उपचार स्वराज है। दादा भाई ने भारत के पक्ष में ब्रिटेन में अथक प्रचार किया। राष्ट्रीय भावना के प्रसार एवं विकास में दादाभाई तथा अन्य उदारवादी नेताओं की एक महान उपलब्धि थी। पहली कांग्रेस के अध्यक्ष ने अपने भाषण में ही यह जोर दिया था कि सभी देश प्रेमियों के बीच आपसी प्रेम एवं मेलजोल बढ़ाना कांग्रेस का पहला उद्देश्य था तथा घनिष्ठ व्यक्तिगत सम्पर्क के माध्यम से धर्म जाति, भाषा, एवं प्रांत के विभेदों को दूर करके राष्ट्रीय भावना को सम्पुष्ट करना कांग्रेस का दूसरा उद्देश्य था। इसमें कोई संदेह नही कि प्रारंभिक चरण के नेता इन दोनों उद्देश्यों की सिद्धि में सफल रहे। कांग्रेस के अधिवेशनों के माध्यम से तथा अपनी गतिविधियों से इन नेताओं ने अपने देशवासियों को संगठित किया और सिखलाया कि वे एक ही भारत माता की संतान हैं।

कांग्रेस के अधिवेशनों ने शिक्षित भारतीयों को क्रमशः लोकतांत्रिक पद्धति एवं संसदीय प्रणाली से परिचित कराया। इन नेताओं ने ब्रिटिश शासन के सच्चे रूप से भारतीय जनता को परिचित कराया। अपने विद्वतापूर्ण लेखों एवं शोध के आधार पर इन लोगों ने इस बात को सिद्ध किया कि ब्रिटिश शासन से भारत का नुकसान हुआ है और इस देश में गरीबी एवं बेरोजगारी बढ़ी है। उनकी इन बातों से ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि तिलमिला जाते थे, क्योंकि अभी तक वे इस बात का प्रचार करते आ रहे थे कि ब्रिटिश शासन में ही भारत की भलाई है।[1] अतः दादा भाई नौरोजी जैसे भारतीय नेताओं ने अपने लेखों एवं भाषणों से इस प्रचार का पर्दाफाश कर सिद्ध किया कि ब्रिटिश शासन ने भारतीय आर्थिक जीवन को तहस-नहस कर दिया है। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सही मूल्यांकन करने की प्रक्रिया को शुरू करने में ये नेता अग्रणी थे।

प्रारंभिक चरण के नेताओं में सर्व प्रमुख दादाभाई नौरोजी की कृतियाँ प्रशंसनीय है तथा राष्ट्रीय आंदोलन का यह दौर अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं शिक्षाप्रद है। बाद के नेताओं ने इस युग की भूलों से लाभ उठाकर राष्ट्रीय आंदोलन को सबल एवं सशक्त बनाया। 1885 से 1905 तक का युग राष्ट्रीय आंदोलन की आधार शिला रखने का युग था। इसमें संदेह नहीं कि अपनी कठिनाइयों एवं व्यक्तिगत समस्याओं के बावजूद इस दौर के नेताओं ने राष्ट्रीयता का बीजारोपण अच्छी तरह से किया। उन्होने देश के शिक्षित वर्ग में राष्ट्रीय भावना भरने एवं संगठित करने में सफलता पायी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद एवं अंग्रेज नौकरशाही के खोखलेपन को उजागर करने में

❑ ग्राम-मेघा, पोस्ट-कोयलास्थान, जिला-दरभंगा (बिहार)

सफलता प्राप्त की। इन लोगों ने देश के शिक्षित समुदाय के मन में यह एहसास करा दिया कि अंग्रेज सर्वशक्तिमान नहीं हैं और उनकी नीतियों का संवैधानिक ढंग से जमकर और खुलकर विरोध होना चाहिए। अंग्रेजी शासन द्वारा भारतीय उद्योग-धंधों के विनाश एवं आर्थिक शोषण के विषय में दिये गये आंकड़ों से इस प्रारंभिक चरण में ही अंग्रेज नौकरशाही तिलमिलाने लगी थी। अंग्रेज अफसर दादा भाई नौरोजी जैसे नेताओं को भी बागी और राजद्रोही समझने लगे। इन प्रथम बीस वर्षों में इंडियन नेशनल कांग्रेस अंग्रेजी शासकों की आँखों में खटकने लगी थी और अंग्रेज शासक कांग्रेस की बढ़ती हुई लोकप्रियता से सशंकित होने लगे थे। इंडियन नेशनल कांग्रेस जैसी संस्थाओं को स्थापित करके उसे राष्ट्रीय अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाना प्रारंभिक चरण के नेताओं की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। इस दौर के नेताओं ने राष्ट्रीयता की प्रथम ज्योति को जलाने में निःसंदेह सफलता प्राप्त की। उनके भगीरथ प्रयत्न से राष्ट्रीयता की गंगा हिमालय की ऊँची पहाड़ियों से उतर कर शिक्षित समुदाय के बीच एक पतली स्त्रोतस्विनी के रूप में बहने लगी। धीरे-धीरे इस पतली स्त्रोत ने एक बेगवती नदी का रूप धारण कर भारतीय जीवन को आप्लावित करना शुरू किया।[2]

कांग्रेस की स्थापना में दादाभाई नौरोजी का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा था, अर्थात् संस्थापक सदस्यों में वे प्रमुख थें। स्थापना के कुछ ही वर्षों में देश के शिक्षित समुदाय में यह संस्था लोकप्रिय होने लगी। प्रतिवर्ष कांग्रेस के अधिवेशनों में प्रतिनिधियों एवं दर्शकों की भीड़ बढ़ने लगी। पहले अधिवेशन में बहत्तर प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। दूसरे अधिवेशन में चार सौ छः प्रतिनिधि उपस्थित थे। तीसरे अधिवेशन में छः सौ प्रतिनिधियों ने भाग लिया और चौथे अधिवेशन में बारह सौ अड़तालीस प्रतिनिधियों ने भाग लिया। चौथे अधिवेशन में एक विशाल पंडाल बनाया गया था, जिसमें पाँच हजार व्यक्ति बैठ सकते थे। कांग्रेस के पाँचवें अधिवेशन में प्रतिनिधियों की संख्या बढ़कर अठारह सौ नवासी हो गई। इस अधिवेशन में भारतीय हितों के समर्थक एवं ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य चार्ल्स ब्रैडला ने भाग लिया। देश के सभी गणमान्य व्यक्तियों ने कांग्रेस से अपना घनिष्ठ संबंध स्थापित किया है। हिन्दू, मुसलमान, पारसी एवं ईसाई नेताओं ने कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेकर देश की एकता एवं कांग्रेस की प्रतिष्ठा को बढ़ाया।

पहली कांग्रेस के अध्यक्ष डब्ल्यू सी. बनर्जी ईसाई थे। दूसरी कांग्रेस के अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी पारसी थे तथा तीसरी कांग्रेस के अध्यक्ष बदरूद्दीन तैयब जी मुसलमान थे। चौथी एवं पांचवी कांग्रेस के अध्यक्ष जार्ज यूल एवं विलियम बेडरवर्न अंग्रेज थे। इस देश के निवासियों में कांग्रेस की लोकप्रियता एवं साख बढ़ती जा रही थी। लगभग प्रत्येक वर्ग एवं धर्म के लोगों ने कांग्रेस को सम्मान की दृष्टि से देखना शुरू कर दिया था। राजा-महाराजा, जमींदार, व्यवसायी, वकील, प्रोफेसर, एवं डॉक्टर इसके अधिवेशनों में आने लगे थे।

ध्यातव्य है कि पहली कांग्रेस में दो मुसलमान प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। दूसरे अधिवेशन में तैंतीस मुसलमान प्रतिनिधि थे। 1890 के छठे अधिवेशन में सात सौ दो प्रतिनिधियों में एक सौ छप्पन मुसलमान थे। इस प्रकार मुसलमानों में भी कांग्रेस की लोकप्रियता बढ़ती जा रही थी। शुरू से ही यह संस्था भारत में रहने वाले सभी वर्गो का कल्याण चाहती थी और इसमें न केवल राजनीतिक सुधार के लिए प्रस्ताव पास किये, बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए भी इसके अधिवेशनों में प्रस्ताव पारित किए गये। प्रारंभिक दौर में ही कांग्रेस का धर्मनिरपेक्ष एवं लोकप्रिय रूप उजागर होने लगा था। इस संस्था की बढ़ती लोकप्रियता एवं इसके अधिवेशनों में ब्रिटिश सरकार की आलोचना होने के कारण धीरे-धीरे अंग्रेज नौकरशाही इससे रूष्ट होने लगी।[3] कांग्रेस को मजबूत आधार प्रदान कर तथा राष्ट्रवादियों को संगठित कर दादाभाई नौरोजी ने कीर्तिमान स्थापित किया। इस प्रकार 1906 में राष्ट्रवादियों को संगठित करने में दादाभाई के योगदानों को भुलाया नहीं जा सकता।

1886 के कलकत्ता अधिवेशन में प्रतिनिधियों की सामाजिक संरचना का विश्लेषण करते हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की रिपोर्ट में कहा गया था कि इसमें तथाकथित रूप से जनता का स्वाभाविक नेता माना जाने वाला पुराना अभिजात वर्ग पूर्णतः अनुपस्थित था। यह भी स्वीकार किया गया था कि रैयत और काश्तकार वर्गों का प्रतिनिधित्व भी पर्याप्त नहीं था, जबकि छोटे साहूकारों और दुकानदारों की अनुपस्थिति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती थी। यद्यपि रिपोर्ट में दावा किया गया था कि अधिवेशन में उच्च वाणिज्य वर्गों, बैंकरों, व्यापारियों आदि का पर्याप्त प्रतिनिधित्व था। लगभग 130 प्रतिनिधि ऐसे थे जो किसी न किसी प्रकार के भूस्वामी थे। फिर भी कांग्रेस के आरंभिक

अधिवेशनों के नेतृत्व की विशेषता थी – उस वर्ग के साथ इसका स्पष्ट रूप से एकाकार होना जिसे इतिहासकारों ने शिक्षित मध्यवर्ग, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त अभिजन अथवा बुद्धिजीवी कहा है। 1888 की इलाहाबाद कांग्रेस के लगभग 1200 प्रतिनिधियों में 455 ने अपने आपको वकील बताया था, जबकि इसमें अध्यापकों की संख्या 59 और पत्रकारों की 73 थी।[4]

लार्ड कर्जन के वायसराय काल में उसकी प्रतिगामी नीतियों के कारण भारतीयों के हृदय में राष्ट्रीयता की एक नई उत्तेजित लहर उठ रही थी। कई कांग्रेसजन भी इस बात से खिन्न थे कि कांग्रेस प्रतिवर्ष भारी–भरकम प्रस्ताव पारित करती है लेकिन सरकार उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं देती। अतः उदारवादियों के तरीकों को भिक्षावृत्ति कहकर पुकारा जाने लगा। इस नई राष्ट्रीय चेतना के मुख्यतः तीन केन्द्र थे। बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब। विपिन चन्द्रपाल, अरविन्द, बाल गंगाधर तिलक और लाला लाजपत राय इनके प्रेरणा स्त्रोत थे। यह नई चेतना 1905 में गोखले की अध्यक्षता में बनारस कांग्रेस में मुखरित हुई। गोखले ने उपद्रव की आशंका से चिमनलाल सितलवाड़ को तार भेजा कि फिरोजशाह मेहता अधिवेशन में भाग लें। गोखले का विश्वास था कि उनकी उपस्थिति से अधिवेशन सफलता से सम्पन्न हो सकेगा। लेकिन फिरोजशाह नहीं आ सके और कांग्रेस को भी कोई गंभीर खतरा नहीं हुआ।

धनपति पाण्डेय ने अपनी पुस्तक आधुनिक भारत का इतिहास में स्पष्ट किया है कि 1905 ई0 में जब उत्तर प्रदेश के बनारस में कांग्रेस का अधिवेशन प्रारंभ हुआ तब गरम और नरम विचार वालों ने अपनी अलग–अलग बैठकें की। निश्चित रूप से बनारस अधिवेशन से कांग्रेस में फूट आ गई। जब 1906 ई0 में प्रिस ऑफ वेल्स भारत आये और उनके स्वागत के लिए नरम दल वालों ने प्रस्ताव पारित करना चाहा तब गरम दल वाले नेताओं एवं विचारकों ने इसका विरोध किया। विरोध के वातावरण में ही 1906 ई0 में कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। गरम दल वाले बाल गंगाधर तिलक को अधिवेशन का अध्यक्ष बनाना चाहते थे। किन्तु बहुमत रहने के कारण नरम पंथियों ने दादाभाई नौरोजी को कांग्रेस का अध्यक्ष बना दिया। नौरोजी ने बुद्धिमानी दिखला कर दोनों पक्षों को मिलाने का प्रयास किया। उन्होंने गरम विचारों को भी स्वीकार किया और अपने अध्यक्षीय भाषण में कहाः स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और कांग्रेस का लक्ष्य उसे प्राप्त करना है। हम स्वतंत्रता चाहते हैं। हम दया की भीख नहीं मांगते। हम न्याय चाहते हैं। इसी अधिवेशन में उन कार्यक्रमों को भी सम्मिलित किया गया जिन्हें गरम विचार वाले नेता राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल करना चाहते थे। अधिवेशन में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा आदि से संबंधित प्रस्ताव स्वीकार कर लिए गये। संक्षेप में, नौरोजी के प्रयास से तत्काल कांग्रेस में फूट की प्रक्रिया रूक गई।[5]

कांग्रेस ने, जिसपर नरमदली नेताओं का कब्जा था, युद्ध के दौरान हुए अपने चार अधिवेशनों में से प्रत्येक अधिवेशन में प्रस्ताव पारित करके साम्राज्यवादी युद्ध के प्रति अपनी निष्ठा और हमदर्दी की घोषणा की। जब ब्रिटेन ने भारतीय सैनिकों को युद्ध क्षेत्र में भेज दिया तब कांग्रेस के नेताओं ने इसका विरोध नहीं किया। 1914 ई0 के अंत में मद्रास कांग्रेस के अधिवेशन में अध्यक्ष के पद से भूपेन्द्र नाथ बसु ने कहा यह कांग्रेस कृतज्ञता और संतोष के साथ नोट करती है कि भारत की अभियानकारी सेना युद्ध करने के लिए भेजी गई और महामहिम वायसराय को बहुत–बहुत हार्दिक धन्यवाद देती है कि उन्होने भारत वासियों को निष्ठा दिखलाने का अवसर दिया है और भारतवासी अधिकार और न्याय के पक्ष में तथा साम्राज्य की रक्षा के लिए लड़ने को तैयार हैं। यह प्रस्ताव के रूप में अधिवेशन में पास हुआ। अधिवेशन में भारत सरकार से बड़े पदों पर भारतीयों की नियुक्ति भारत में सैनिक स्कूलों को खोलने और सेना में भारतीयों की भर्ती किये जाने का नम्र निवेदन किया गया । सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने अपने भाषण में कहा जाइये और देख आइए कि फ्रांस के युद्ध क्षेत्र में अरब मरूभूमि में, अफ्रीका के पूर्वीतट पर क्या हो रहा है। भारत का पुरूषत्व साम्राज्य की रक्षा में अपना सर्वोत्तम खून बहा रहा है। 1918 ई0 में युद्ध की समाप्ति पर दिल्ली में आयोजित अधिवेशन में तो कांग्रेस ने अंग्रेज सम्राट के प्रति निष्ठा का एक प्रस्ताव पारित किया और सम्राट को इस बात के लिए बधाई दी कि युद्ध सफलतापूर्वक समाप्त हो गया। दादा भाई नौरोजी ने युद्ध ने ब्रिटेन को दी जाने वाली मदद की जोरदार शब्दों में स्वीकृति दी थी। फिरोजशाह मेहता ने भी कहा था कि हम इसलिए एकत्र हुए हैं कि अपने पवित्र स्वामी, अपने प्रिय सम्राट के चरणों में अपनी निष्काम भक्ति, अटल निष्ठा और जोशीला वन्दना उपस्थित करें।[6]

युद्धराम्भ के समय जो भारतीय नेता लंदन में थे उन्होंने

सरकार के प्रति अपना समर्थन घोषित करने में बड़ी तेजी दिखाई। कांग्रेस का एक प्रतिनिधि मंडल उन दिनों लंदन में था जिसमें लाला लाजपतराय, मुहम्मद अली जिन्ना, सिन्हा आदि थे। इस प्रतिनिधि मंडल ने भारतीय मामलों के मंत्री को एक निष्ठापूर्ण पत्र लिखकर यह विश्वास प्रकट किया कि साम्राज्यवाद की शीघ्र विजय के लिए भारत के राजे-रजवाड़े और भारत की जनता तत्काल और स्वेच्छा से अपनी पूरी सामर्थ्य भर सहयोग करेगी और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह देश के सभी साधन सम्राट को अर्पित कर देगी। गाँधीजी उसी समय दक्षिण अफ्रीका से लंदन पहुँचे थे। उन्होंने सेसिल होटल में अपने सम्मान में आयोजित एक समारोह में अपने नौजवान भारतीय दोस्तों से कहा कि उन्हें साम्राज्य के दृष्टिकोण से सोचना चाहिए और अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। उन्होंने अपने तथा अन्य लोगों के हस्ताक्षर सहित भारतीय मामलों के मंत्री के नाम एक पत्र भेजा और अपनी सेवाएँ अर्पित करने का वचन दिया। पत्र के शब्द इस प्रकार थे हममें से तमाम लोगों ने यह उचित समझा है कि ब्रिटिश साम्राज्य के सामने उत्पन्न वर्तमान संकट की घड़ी में जो भारतीय ब्रिटेन में रह रहे हैं और जो इस योग्य हैं उन्हें ब्रिटिश अधिकारियों को बिना शर्त अपनी सेवाएँ पेश करनी चाहिए।[7] इस प्रकार दादाभाई नौरोजी ने राष्ट्रवादियों को देश की समस्याओं राष्ट्रीय आंदोलन तथा अन्य मामलों में अपने विचारों से एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया।

भारत जैसे विशाल देश में राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के लिए एकता का होना अत्यंत महत्वपूर्ण था और इस बात को समझते हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने भारत में एकता की भावना को विकसित करने के हर संभव उपाय किए। राष्ट्रीय नेता इसे अपना पहला कर्त्तव्य मानते थे। वे जानते थे कि अलग-अलग धर्मो के मानने वालों को मिलाकर ही एक सूत्र में बाँधा जा सकता था। इसी से कांग्रेस के नेताओं ने कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहा जिसके लिए वर्ग और सम्प्रदाय तैयार न हो। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने इटली की एकता का उदाहरण देते हुए कहा कि जब समूचा भारत प्रेम सद्भाव और सम्मान के तीन बंधनों में जुड़ जाएगा तो भारतीय महत्ता का दिन दूर नहीं होगा। दादा भाई नौरोजी ने भी विभिन्न धर्मो के अनुयायियों के बीच की दूरी को खत्म करने पर जोर दिया। इस प्रकार के परिणामस्वरूप पढ़े-लिखे भारतीयों में एकता की भावना पैदा हुई। देश के हर भाग में समय-समय पर कांग्रेस के अधिवेशन किए जाते थे ताकि संपूर्ण देश के लोग इस आंदोलन के माध्यम से राष्ट्रीय एकता के प्रति जागृत हों।[8]

दादाभाई नौरोजी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के माध्यम से भारत में राजनीतिक जागृति को नया मोड़ दिया। इस संगठन के मंच से देश के सभी प्रतिभाशाली बुद्धिजीवियों ने अपनी न्यायोचित मांगों पर आपस में विचार-विमर्श किया तथा देश में नव चेतना जागृत की। प्रारंभ में यह आंदोलन उदारवादी और संवैधानिक आंदोलन था। इस समय कांग्रेस के लक्ष्य सीमित थे। कांग्रेस के उदारवादी नेताओं को ब्रिटिश राजतंत्र में असीम आस्था थी वे सोचते थे कि बड़े संयोग से भारत में अंग्रेजी शासन स्थापित हुआ है और यह देश को स्वतंत्र, प्रगतिशील, लोकतांत्रिक राष्ट्रीय अस्तित्व प्रदान करेगा। उदारवादियों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह रहा कि इन्होंने साम्राज्यवाद के आर्थिक पहलू की कड़ी आलोचना करके लोगों में आर्थिक चेतना जागृत की। भारत की आर्थिक समस्याओं की तरफ इनकी वैज्ञानिक दृष्टि थी। वे उद्योगीकरण और सामाजिक संबंधों के लोकतांत्रीकरण द्वारा भारत की आर्थिक प्रगति के समर्थक थे। इन उदारवादियों के आर्थिक प्रवक्ता दादा भाई नौरोजी महादेव, गोविन्द रानाडे, गोपालकृष्ण गोखले और रमेशचन्द्र दत्त थे। इन्होंने अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण को भारत की बढ़ती हुई गरीबी का कारण माना। भारतीय नेता यह शिकायत करने लगे कि निर्धनता देश में जड़ पकड़ती जा रही है और सरकारी राजस्व अधिकारियों द्वारा किसान को लूटा जा रहा है। स्वदेशी उद्योगों को नष्ट कर दिया गया है और आधुनिक उद्योगों को जान बूझकर निरूत्साहित किया जा रहा है अथवा पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं किया जा रहा है। भारतीय उद्योग और कृषि हितों के विरूद्ध मुद्रानीति अपनाई जा रही है। उद्योगों में भारतीय श्रमिकों को दास बनाया जा रहा है। भारतीय राजस्व और कृषि विकास की आवश्यकताओं की उपेक्षा करके रेलों का विस्तार किया जा रहा है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि भारत से संपत्ति और पूँजी की निकासी की जा रही है। उन्होंने जनता के सम्मुख यह सच्चाई प्रकट की और बताया कि भौतिक दृष्टि से ब्रिटिश शासन भारत के लिए हानिकारक रहा है।[9]

दादाभाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक पावर्टी ऐंड अन-ब्रिटिशरूल इन इंडिया में यह वर्णन किया है कि किस

प्रकार इंग्लैंड ने भारत का धन अपने देश में पहुँचाया और यही भारत की गरीबी तथा मुसीबतों का मुख्य कारण था। यह सच है कि भारतीय नेताओं द्वारा सुझाए गए उपचार अथवा उनकी आर्थिक नीतियों का स्वरूप साम्राज्यवाद विरोधी था। वे ब्रिटेन और भारत के मध्य चालू आर्थिक संबंधों में मौलिक परिवर्तन चाहते थे। उनकी राजनीतिक माँगे तो मृदु थीं, किन्तु उनकी आर्थिक मांगे क्रांतिकारी थीं। उनकी सभी आर्थिक मांगों में मूल आधार पर इच्छा थी कि वास्तविक राष्ट्रीय आर्थिक नीति का निर्धारण इंग्लैंड के नहीं वरन् भारत के हितों में संदर्भ में किया जाना चाहिए। आर्थिक क्षेत्र में भी दादाभाई नौरोजी ने राष्ट्रवादियों को संगठित करने में सफलता पाई साथ ही अपने आर्थिक विचारों से भारतीय जनमानस को भी प्रभावित किया।

जिन परिस्थितियों में उन्होंने यह कठिन कार्य अपने हाथों ने लिया और जो कठिनाइयाँ उनके सम्मुख आई, उनको देखते हुए इस युग के नेताओं की उपलब्धियों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। वे मध्य वर्ग तथा निम्न मध्यवर्ग में इस राष्ट्रीय भावना को जगाने में सफल रहे कि वे एक ही राष्ट्र से संबंधित हैं। उन्होंने भारतीयों को सामान्य राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक हितों के प्रति जागरूक किया। उन्होंने उन्हें सामान्य शत्रु से परिचित कराया और इस प्रकार एक सामान्य राष्ट्रीयता की भावना को सुदृढ़ बनाने में सहायता की। उन्होंने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की एक सशक्त आर्थिक समीक्षा प्रस्तुत की जिसने यह सिद्ध कर दिया कि भारत की गरीबी, बेकारी और आर्थिक पिछड़ा अंग्रेजों के कारण है। इस समीक्षा से ब्रिटिश राज का नैतिक आधार कमजोर हुआ और राष्ट्रीय चेतना को बल दिया। उन्होंने जनता को अपनी आर्थिक दुर्दशा और अपमानित स्थिति से तथा उसमें सुधार की संभावना से परिचित कराया। उन्होंने सुस्पष्ट आर्थिक आकांक्षाओं को एक सुस्पष्ट राष्ट्रवादी स्वरूप दिया तथा आर्थिक विकास के विचारों का प्रचार किया, मार्ग की आर्थिक और राजनीतिक बाधाओं और उन पर विजय पाने के उपायों का निर्देश किया।

उल्लेखनीय है कि आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन में जो अनुभव हुए उससे भारतीय नेताओं में परिपक्वता तथा स्थायित्व आया। उनमें आत्म विश्वास और आत्म सम्मान बढ़ा। उन्हें विश्वास था कि वे अपना शासन स्वयं चला सकते हैं। उन्होंने भारत के अतीत से प्रेरणा लेकर इतिहास की महान उपलब्धियों के विवरण द्वारा लोगों को जगाने और उनमें राष्ट्रीय गौरव और आत्म सम्मान की भावना भरने की कोशिश की।

दादाभाई नौरोजी तथा अन्य राष्ट्रवादियों में आपसी तालमेल बेजोड़ था। संगठन की कोई भी कमी नहीं थी तथापि बंगााल का विभाजन 16 अक्टूबर 1905 को कर दिया गया। लार्ड कर्जन ने कहा कि प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से इस प्रांत को दो प्रांतों में विभाजित कर दिया जाना चाहिए। 1903 के अंत में प्रकाशित कर्जन की योजना के अनुसार पूर्व बंगाल के चटगाँव डिवीजन तथा ढाका और मैमनसिंह के जिलों को बंगाल से अलग कर असम के साथ मिला देने की बात कही गयी थी। जनता ने तत्काल ही विभाजन की इस योजना का विरोध किया था। लेकिन पूर्वी बंगाल का दौरा करते हुए जब कर्जन ने बंगालियों में राष्ट्रीयता की भावना का जो ज्वार देखा, तो उसने सारे उत्तर-पूर्वी बंगाल को ही बंगाल से अलग करने का फैसला कर लिया। साथ ही संशोधित योजना बहुत ही गुप्त तरीके से तैयार की गयी।

जनता जब यह सोच रही थी कि शायद बंगाल के विभाजन की योजना त्याग दी गयी है, तब 7 जुलाई, 1905 ई0 को बंगाल के विभाजन की सरकारी घोषणा की गयी। 19 जुलाई को संशोधित योजना की पूरी रूपरेखा जनता के सामने पेश की गयी और जनता के भारी विरोध के बावजूद 16 अक्टूबर, 1905 ई0 की यह योजना लागू कर दी गयी। ढ़ाका चटगाँव और राजशाही डिवीजनों को बंगाल से अलग कर असम के साथ मिलाकर पूर्व बंगाल व असम नामक नया प्रान्त बनाया गया, जिसकी राजधानी ढाका रखी गयी। बाकी हिस्सा बंगाल ही बना रहा और उनकी राजधानी कलकत्ता ही रही। राष्ट्रवादियों के लिए बंगाल का विभाजन एक अपमाान के जैसा था। वस्तुतः बंगाल को विभाजित करने का असली उद्देश्य राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करना था। कलकत्ता पूरे हिन्दुस्तान की राजधानी थी, राजनीतिक चेतना की दृष्टि से बंगाल वासी बहुत आगे बढ़े हुए थे और बंगाल सारे देश में राजनीतिक आंदोलन का केन्द्र बन गया था। अतः कर्जन जैसे साम्राज्यवादी शासक ने फूट डालो और राज करो की नीति पर चलते हुए मुस्लिम बहुसंख्या वाले पूर्वी बंगाल को अलग कर उसे हिन्दू बहुसंख्यक वाले शेष बंगाल के विरूद्ध खड़ा करने की कोशिश की। ए. सी. मजूमदार के अनुसार लार्ड कर्जन ने मुसलमानों की बड़ी सभाएँ कर उन्हें यह समझाया कि ''बंगाल विभाजन में मेरा उद्देश्य

प्रशासकीय सुविधा भर देखना नहीं है, मैं एक मुस्लिम प्रांत बनाना चाहता हूँ जहाँ इस्लाम के अनुयाइयों का बोलवाला होगा। विभाजन से पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को वह एकता प्राप्त होगी, जो मुसलमान बादशाहों और सूबेदारों के राज के बाद उन्हें नसीब नहीं हुई थी।[10]

जब राष्ट्रवादियों ने देखा कि उनके विरोध का शासन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है, तो विदेशी माल के बहिष्कार और केवल स्वदेशी के प्रयोग का नारा बुलंद किया गया। बंगला पत्रिका 'संजीवनी के सम्पादक कृष्ण कुमार मित्र ने अपनी पत्रिका के 13 जुलाई, 1905 के अंक में सुझाव दिया कि लोगों को सारे विदेशी माल का बहिष्कार करना चाहिए, शोक मनाना चाहिए और सरकारी अधिकारियों एवं सरकारी संस्थाओ से सारा सम्पर्क तोड़ लेना चाहिए। जुलाई 1905 से ही 'बहिष्कार आंदोलन प्रारंभ हो गया। जमींदारों, वकीलों, विद्यार्थियों, नौजवानों, किसानों, दुकानदारों, यहाँ तक कि मोचियों, धोबियों, और रसोइयों ने इस आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। बहिष्कार आंदोलन की व्यापकता के दो चार उदाहरण ये हैं ! मैमनसिंह के मोचियों ने सभा कर फैसला किया कि वे अंग्रेजों के जूतों की मरम्मत न करेंगे। काली घाट के धोबियों ने सभा कर ऐलान किया कि वे विदेशी कपड़े न धोएँ। बारी साल के उड़िया रसोइयों ने सभा कर घोषणा की कि वे विदेशी माल का इस्तेमाल करने वाले मालिकों के यहाँ काम न करेंगे।[11] उनका यह आंदोलन सारे बंगाल में फैल गया। मध्यम वर्ग की 6 साल की एक लड़की ने दवा खाने से इंकार कर दिया, क्योंकि दवा विलायती थी। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी की 5 साल की नातिन ने एक रिश्तेदार द्वारा भेजे गए जूते वापस कर दिये, क्योंकि वे विलायती थे। कुछ स्थानों पर छात्रों ने परीक्षा देने से इंकार कर दिया, क्योंकि उत्तर लिखने के लिए उन्हें दी गयी कॉपियों का कागज विलायती था।[12]

गुप्तचर रिपोर्ट के अनुसार 'बैरक पुर और फोर्ट विलियम के सिपाहियों की तीन रेजीमेंटों ने जब विदेशी वस्त्र से बनी वर्दी पहनने से इंकार कर दिया, तो उन्हें निरस्त कर दिया गया और पश्चिमोत्तर भारत की सुदूर छावनियों में भेज दिया गया।[13] इसी गुप्तचर रिपोर्ट में यह भी स्वीकार किया गया कि देशी पुलिस वालों को भी गुप्त रूप से इस आंदोलन की मदद करते देखा गया। विद्यार्थी और नौजवान इस आंदोलन की जान थे। विद्यार्थियों में विदेशी माल बेचने वाली दुकानों पर धरने का भी रास्ता अपनाया। उनके जत्थे बाजार में घूम-घूमकर देशवासियों से विदेशी माल न खरीदने का अनुरोध करने लगे। सरकार ने बहाने खोजकर इन विद्यार्थियों पर लाठी चार्ज किया। आंदोलन की शक्तिशाली बनाने के लिए राष्ट्रीय स्वयं सेवकों का संगठन किया गया और जन समितियाँ बनायी गयी। यह आंदोलन न तो केवल बंगाल तक सीमित था और न केवल हिन्दुओं का आंदोलन था। कर्जन और उसके मित्रों ने मुसलमानों को इस आंदोलन से अलग करने और दूर रखने की पूरी कोशिश की थी, फिर भी वे इसमें पूरी तरह सफल नहीं हुए। मुसलमान भी आंदोलन में शामिल हुए और अब्दुल रसूल, लियाकत हुसैन, अब्दुल हलीम गजनबी, युसुफ खान बहादुर और मुहम्मद इस्माइल चौधरी जैसे नेता सामने आये। तत्कालीन राष्ट्रवादियों को इस आंदोलन को सफल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान किया।

बहिष्कार का यह शस्त्र बड़ा शक्तिशाली और सर्वव्यापी साबित हुआ। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप भारत में ब्रिटिश माल की खपत बहुत घट गयी। बंगाल के विभिन्न जिलों में राष्ट्रीय स्कूल स्थापित किये गये और प्रमुख नेता राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना पर विचार करने लगे। सरकार ने आतंक का मार्ग अपनाकर आंदोलन को दमन करने की भरसक चेष्टा की, लेकिन आंदोलन दिन-ब-दिन जोर पकड़ता गया। सभाएँ प्रदर्शन और हड़तालें सामाजिक जीवन का सामान्य अंग बन गयी।

दादाभाई नौरोजी तथा अन्य राष्ट्रवादी नेताओं ने संगठित होकर विधान परिषदों को अधिक से अधिक जनतंत्रातात्मक बनाने के लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला। इस परिणाम की प्राप्ति के लिए चुनाव प्रणाली का प्रारंभ अत्यंत आवश्यक था। लार्ड डफरिन के शासन काल (1884-1888) में विधान परिषदों के सुधार के प्रश्न को पूरी गंभीरता से लिया गया। कांग्रेस के तीन अधिवेशनों के होने तक यह प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो गया था। 1888 में भारत मंत्री को लिखे अपने सरकारी पत्र में, डफरिन ने 1861 के संविधान में बिना किसी सैद्धांतिक परिवर्तन किए ही प्रांतीय परिषदों को वृहत और अधिसंख्यक करने का प्रस्ताव भेजा। इन प्रस्तावों में भारत के शिक्षित वर्ग में ही परिषदों के सदस्यों का चयन या निर्वाचन करने की बात भी कही गई थी। भारत मंत्री लार्ड क्रास्ट (1886-92) ने इस प्रस्तावों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखाई। उसका मानना था और इस अल्प अनुभव के आधार पर प्रांतीय परिषदों के संविधान में परिवर्तन करना अपरिपक्व होगा।

वास्तव में क्रास के इस विचार से प्रधानमंत्री लार्ड सल्सबरी पूरी तरह से सहमत था। लंदन में अधिकारियों की इस उदासीनता के बावजूद डफरिन के उत्तराधिकारी लार्ड लैंसडाउन विधान परिषदों में सुधार की आवश्यकता पर जोर देता रहा। अंततः फरवरी 1892 में, जब टोरी सरकार के प्रभाव का अवसान हो रहा था, भारतीय परिषद विधेयक पुनः प्रस्तुत किया गया। इसमें सबसे विवादास्पद मुद्दा परिषद के सदस्यों के लिए चुनाव प्रणाली को प्रारंभ करने से था। अंत में किम्बरले धारा के द्वारा इस गुत्थी का समाधान किया गया। जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली स्थानीय संस्थानों को अपने प्रतिनिधियों को चुनने, चयन करने या मनोनीत करने का अधिकार दिया गया। विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रेषित ऐसे सदस्यों में से गवर्नर को कुछ को मनोनीत करने का अधिकार था। फिर से सदस्य गर्वनरर जनरल की परिषद के सदस्यों का चुनाव करते। संवैधानिक और कानूनी दृष्टि से अभी भी ये सदस्य मनोनीत ही थे, परंतु वे अब विभिन्न संस्थाओं के यथा डिस्ट्रिक्ट और म्युनिसिपल बोर्ड, विश्वविद्यालय और व्यापार मंडलों के प्रतिनिधि थे। इस प्रकार परिषदों के संविधान में चुनाव प्रणाली का भले ही वह परोक्ष ही हो, सूत्रपात हुआ।[14]

लार्ड कर्जन के त्याग-पत्र के पश्चात् नबंबर 1905 में लार्ड मिंटों की नियुक्ति हुई। नए गर्वनर जनरल की राजनीतिक दृष्टि निश्चित रूप से अनुदार थी। दिसंबर 1905 में भारत मंत्री के पद पर लार्ड माले की नियुक्ति हुई। वयोवृद्ध लार्ड माले की प्रसिद्धि एक उदारवादी राजनीतिक की थी, जो स्वयं अपने को बर्क और मिल के राजनीतिक सिद्धांतों का उपासक मानता था। इसके अतिरिक्त वह ग्लैडस्टोन की आत्मकथा का भी रचयिता था। माले के सत्ता में आते ही कांग्रेस के नरम पंथियों के हृदय में आशा की एक लहर दौड़ पड़ी। इनके प्रमुख नेता दादाभाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता सुरेन्द्र नाथ बनर्जी आदि थे। माले के सत्ता में आने के कुछ ही दिनों पूर्व गोपालकृष्ण गोखले इंग्लैंड में थे और उन्होंने भावी भारत मंत्री से एक भेंट में विधान परिषदों और कार्यकारिणी में समुचित सुधारों की मांग की।

दिसम्बर 1905 में बनारस के कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण करते हुए गोखले ने इंग्लैंड की लिबरल सरकार की ईमानदारी और विशेषतः लार्ड मौले की उदार राजनीतिक विचारधाराओं में अपनी आस्था दुहराई। इसी विश्वास के आधार पर कांग्रेस ने 1905 में आवश्यक सतर्कतापूर्ण तरीकों से स्वशासन प्राप्त करने के उद्देश्य की घोषणा की बनारस अधिवेशन के बाद गोखले फिर इंग्लैंड गए और मई जून 1906 में उन्होंने मालें में पाँच-छः भेंटे की। इन भेंटों के परिणामस्वरूप मेर्ले ने अपने पत्रों में भारत के वाइसराय मिंटों कसे तुरंत सुधारों को प्रारंभ करने का आग्रह किया। माले का विचार था कि यदि ब्रिटिश संसदीय संस्थाओं की स्थापना भारत में न भी की जा सके तो कम से कम उनकी 'आत्मा' तो हस्तांतरित की जा सकती है। अपने इन्हीं विचारों और आशाओं के अनुरूपप मॉले ने ब्रिटिश संसद में 20 जुलाई 1906 को यह घोषणा की कि भारत में संवैधानिक सुधारों पर विचार विमर्श प्रारंभ हो गया है।[15]

1893 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन के सभापति पद से बोलते हुए दादा भाई नौरोजी ने कहा था 1892 के अधिनियम के अनुसार किसी सदस्य को कोई प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं होगाा न ही वित्तीय विचार विनिमय में सदन का मत विभाजन मांगने का और न ही इस अधिनियम के अधीन बनाए नियमों अथवा इसके अधिकार द्वारा दिये गये प्रश्नों के उत्तर में ऐसा करने का अधिकार होगा। इस अधिनियम के अधीन दिए गए अधिकार इतने व्यर्थ हैं। इस ऐक्ट के अधीन बनाए गए नियमों को समाप्त करने अथवा उनमें परिवर्तन करने का अधिकार उस सभा को नहीं होगा जो कानून तथा नियम बनाने के लिए बुलाई जायेगी। इस प्रकार हम लोग सभी अभिप्राय तथा उद्देश्यों के लिए एक मनमानी सरकार के अधीन होंगे।[16]

दादाभाई नौरोजी ने स्वशासन की मांग हेतु राष्ट्रवादियों को संगठित कर ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालना प्रारंभ किया। प्रांतों को स्वायत्तता देने के अभिप्राय को लेकर इंग्लैंड के राजनीतिक क्षेत्रों में बहुत चर्चा हुई।[17] 1914 में जब गंगाधर तिलक मांडले में अपना निर्वासन समाप्त कर भारत वापस आए तो उन्होने कांग्रेस के नरम और गरम दल के खेमों में समझौता कराने में बहुत योगदान दिया। इस बीच अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के फलस्वरूप तुर्की के आटोमन साम्राज्य का भारी संकट आ पड़ा। तुर्की का सम्राट समस्त इस्लाम जगत का खलीफा भी था और धार्मिक स्वामिभक्ति के कारण भारतीय मुसलमानों को उसके अस्तित्व के लिए बहुत चिंता थी। इसके परिणामस्वरूप ब्रिटेन की सरकार की तुर्की के प्रति शत्रुता की नीति के

कारण भारत में सरकार और मुसलमानों के बीच चला आ रहा सौहार्द का संबंध समाप्त सा हो गया। 1913 के अपने अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने कांग्रेस की भाँति ब्रिटिश राज के अधीन भारत के लिए उपयुक्त स्वशासन की मांग की। क्रमशः कांग्रेस और लीग एक दूसरे के निकट आते गए और 1917 में दोनों राजनीतिक दलों ने अपनी मांगों को संयुक्त रूप से प्रस्तुत करने का निर्णय किया।

20 अगस्त 1917 को हाउस औप कॉमन्स में, संसद सदस्य चार्ल्स रॉवर्ट्स के एक प्रश्न के उत्तर में मांटेग्यू ने भारत में ब्रिटिश शासन के उद्देश्य संबंधी वह घोषणा की जो अब तक वे भारत इंग्लैंड संबंधों की सबसे प्रशासन की प्रत्येक शाखा में भारतीयों को अधिक से अधिक सम्मिलित करना तथा क्रमशः उत्तरदायी सरकार की स्थापना के उद्देश्य से ब्रिटेन साम्राज्य के अभिन्न अंग के रूप में, स्वशासन की संस्थाओं का विकास करना है। घोषणा में यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि स्वशासन के विकास के प्रत्येक चरण की सीमा और समय का निर्धारण ब्रिटिश संसद करेगी। मांटेग्यू की उत्तरदायी शासन संबंधी घोषणा के दो महीने पहले ही भारत के अधिकारों के लिए आजीवन संघर्ष करने वाले उस महान सेनानी की इहलीला समाप्त हो गयी। राजनीति के संबंध में दादाभाई की पद्धति नैतिक थी। उनका व्यक्तिगत जीवन अलौकिक पवित्रता का जीवन था। अंग्रेजों में दादाभाई को सम्मानीय स्थान प्राप्त था। उग्रराष्ट्रवादियों के हृदय में भी उनका स्थान था। उन्होने अनन्य भक्ति तथा आत्म त्याग से युक्त समर्पण की भावना से कार्य किया। वे शुद्ध, गंभीर तथा अविकल देशभक्ति के साक्षात अवतार थे। उन्होंने राजनीतिक आंदोलन का मार्ग इस लिए अपनाया कि वे उसे भारत की आर्थिक तथा सामाजिक पुनः स्थापना तथा प्रगति के लिए सर्वाधिक शक्तिशाली कार्य प्रणाली मानते थे। उनका विश्वास था कि भारत की आशा, शक्ति तथा होतव्यता केवल स्वराज्य पर निर्भर हैं इसके लिए उन्होंने राष्ट्रवादियों को संगठित करने का प्रयास किया।

निष्कर्ष :- राष्ट्रवादियों में सांगठनिक एकता अपूर्व थी तथापि बंगाल का विभाजन हो गया । दादा भाई नारौजी ने यह स्वीकार किया कि बंगाल के विभाजन में कर्जन का उद्देश्य बंगाल में बढ़ती राष्ट्रीयता की भावना को कुचल देना है। लेकिन इस कार्य के परिणामस्वरूप न केवल बंगाल वरन सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीयता की अभूतपूर्व भावना को जन्म दिया। कर्जन की मूर्खता ने भारतीय राष्ट्रवाद को एक ऐसे बिन्दु तक पहुँचा दिया जिस तक पहुँचने में उसे अनेक वर्ष लग सकते थे । बंग-भंग के परिणामों में गोखले ने ठीक ही कहा था कि हमारे राष्ट्रीय प्रगति के इतिहास में बंगाल के विभाजन के परिणामस्वरूप पैदा हुए जन रोष और भावना का महान उद्वेग चिर स्मरणीय रहेगा। इस तरह 1911 बंग-भंग रद्द हुआ। 6 वर्ष के कठिन संघर्ष के बाद राष्ट्रवादियों को अन्त में सफलता प्राप्त हुई। अतः हमारे विचार में राष्ट्रवादियों को संगठित करने में दादा भाई नारौजी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।[17]

सन्दर्भ

1. पाठक, सुशील माधव, *'भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास'*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1998 पृ0 54
2. वही, पृ0 56-57
3. Rao Raman M.V, *'A Short History of The Indian National Congress'* , S.Chand & Co 1969 Pg-21
4. सरकार, सुमित, *'आधुनिक भारत'*, राजकमल प्रकाशन, 2007 पटना, पृ0 83
5. पाण्डेय, धनपति, *'आधुनिक भारत का इतिहास'*, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, 1995 खण्ड .2 पृ0 265
6. पामदत्त, रजनी, *'आज का भारत'*, मैकमिलन पब्लिशर्स नईदिल्ली पृ0 343
8. शुक्ल, आर. एल. (सम्पादक), आधुनिक भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002 पृ0 481।
9. वही, पृ0 482।
10. Majumdar.A C *'Indian National Evaluation'*, wentworth press 2007 p. 242
11. Majumdar Ramesh Chandra , *'History Of Freedom Movement In India'*. Mukhopadhya , calcutta 1963 . vol- 2, p.19
12. Banarjee Surendra Nath , *'A Nation in Making'* Rupa Publications 2016, p. - 196
13. Sitaramayya Dr. Pattabhi *'The History of the Indian National Congress'* Vol-1, S.Chand & Co. 1969, p. 40
14 शुक्ल, आर. एल, (सम्पादक) पूर्वोक्त, पृ0 772
15. वही, पृ0 774
16. ग्रोबर, बी. एल. एण्ड यशपाल, *'आधुनिक भारत का इतिहासः एक नवीन मूल्यांकन'*, 2003 से उद्धृत, पृ0 383
17. शुक्ल, आर. एल, पूर्वोकत, पृ0 780

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी-जून 2019
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

सामाजिक चेतना और विद्यासागर नौटियाल का साहित्य

❑ डॉ0 गुड्डी बिष्ट पँवार

व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग होता है। बिना व्यक्ति के समाज की संकल्पना नहीं। व्यक्ति के क्रियाकलाप उसके सामाजिक परिवेश को प्रभावित करते हैं। समाज के अभिन्न अंग के रूप में व्यक्ति का सामाजिक परिदृश्य समय के साथ-साथ नित नए-नए रूपों में रूपायित होता है। विचारों और क्रियाओं के सम्बन्धों के फलवरूप समाज के विभिन्न परिदृश्य निर्मित होते हैं। प्रत्येक युग में मानव को राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियाँ प्रभावित करती रही हैं तथा साथ ही साथ मनुष्य की सोच के बदलाव के कारण उसकी परम्पराओं, रीतिरिवाजों, मान्यताओं तथा आस्थाओं में भी कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है। यह सामाजिक चेतना का एक पक्ष है। ''युग विशेष के उत्थान-पतन, उत्कर्ष-अपकर्ष, उन्नति-अवनति, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय, दृष्टि-सृष्टि, परम्पराओं, रूढ़ियों, रीतिरिवाजों, मान्यताओं, आस्थाओं के प्रति जन-सामान्य की रूचि-अरूचि को प्रभावित करने वाली शक्ति ही अपने समग्र रूप में सामाजिक चेतना है।''[1]

> विद्यासगर नौटियाल लोक मानस के कथाकार हैं। समाज में व्याप्त विद्रूपताओं को अपने लेखन का हिस्सा बनाने वाले एक सजग कथाकार हैं। परिवेश के प्रति सजग और समाज सापेक्ष कालजयी साहित्यकार हैं। विद्यासागर नौटियाल का लेखन समाज के सभी वर्गों की गाथा है। विद्यासागर नौटियाल की कहानियां यहाँ की तत्कालीन समाज की जीती जागती तस्वीर दिखातीं हैं। साहित्यकार की जीवन दृष्टि और चेतना इतनी प्रबल है कि उनका साहित्य इसे मुखरित होकर बोलता है। टिहरी गढ़वाल के आस-पास के परिवेश में रचा बसा इनका साहित्य जन समुदाय के दुःख दर्द को सामान्य करने का काम करता है। यहां की नारी की व्यथा-कथा विद्यासागर जी के लेखन की बुनियाद है। बालपन में ही नारी जीवन (पहाड़ी नारी) की विडम्बनाओं का चित्र आंकने वाले कथाकार की पहली कहानी 'मूक बलिदान' नारी के समर्पण एवं त्याग की मिशाल है। सामाजिक विसंगतियों को उजागर करने में उनका साहित्य अग्रणी है। नौटियालजी का साहित्य टिहरी गढ़वाल की समस्त विशेषताओं एवं तत्कालीन समय की सामाजिक विसंगतियों का साक्षी है। विद्यासागार नौटियाल सम्भवतः पहले साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपनी माटी में लोट-लोट कर अपने साहित्य को रचा है और सामाजिक विसंगतियों को उजागर कर एक अन्वेशी के भांति हमेशा कर्मशील रहें हैं। जन्मभूमि का ऋण चुकाने की पुरजोर कोशिश कर पात्रों में भी पहाड़ जैसी जीवंतता दिखाने का सफल प्रयास किया है। विद्यासागर नौटियाल के साहित्य का भास्वर रूप आज हमारे सम्मुख पहाड़ की सांस्कृतिक विरासत के रूप में विद्यमान हैं।

जब समाज में वैषम्य का भाव उत्पन्न हो जाता है तथा रूढ़ियाँ अपने पाँव पसारने लगती हैं तो हमारी चेतना उसका विरोध करती हैं तथा इन विकृतियों को दूर करने का प्रयास करके समाज को नया विकसित रूप देना चाहती है इस सन्दर्भ में अर्चना जैन का कथन है कि - ''समाज में व्याप्त वैषम्य को समाप्त करने का अभियान तथा उसके साथ समाजिकता के रूढ़िवादी विकास के कारण उत्पन्न विकृतियों के निराकरण के द्वारा समाज को नवीन स्वरूप प्रदान करना सामाजिक चेतना का महत्त्वपूर्ण अंग है।''[2]

अतः कहा जा सकता है कि समाज में व्याप्त रूढ़ियों व अशिक्षा के कारण मनुष्य दुष्प्रभावित होता रहता है परन्तु इन प्रतिकूल परिस्थितियों में जो चेतना एक आकर्षक दीपक के रूप में उजागर होकर समाज में नवजागरण की लहर व्याप्त कर दे वही सामाजिक चेतना है।

संसार का कोई भी समाज ऐसा नहीं है जो समस्याओं से आक्रान्त न हो। प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी समस्याएं होती हैं। ''समस्याओं के विश्लेषण के प्रति न केवल सामान्य नागरिक, समाज सुधारक व समाज वैज्ञानिक जागरूक रहे हैं अपितु साहित्यकार भी इन समस्याओं का अन्वेशक व विश्लेषक रहा है। इस संदर्भ में उसके प्रयास बहुआयामी रहे हैं। वह एक चिन्तक के रूप में समस्याओं का निरीक्षण- परीक्षणकर्ता, एक अन्वेशक के रूप में कार्य कारण का व्याख्याता साथ ही उनके प्रभाव -परिणाम का चितेरा

❑ वरिष्ठ असिस्टेन्ट प्रोफेसर-हिन्दी हे०न०ब०ग०के० विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

तथा समाधान का खोजी रहा है। उसकी वाणी और लेखनी दोनों ही इस ओर जागरूक रही हैं तभी तो उसका साहित्य समाज का दर्पण, उसका सृजन पुनर्निर्माण का महाकाव्य बन सका है। जहाँ साहित्यकार एक चिंतक के रूप में इन समस्याओं को विचारता है वहाँ उसकी अभिव्यक्ति सामान्य जन का ध्यान आकर्शित कर उसे इन समस्याओं के पठन एवं मनन की सामग्री प्रदान करती है।''[3]

उक्त पंक्तियों से इंगित है कि कालजयी साहित्यकार समाज की विद्रूपताओं को बड़ी संजीदगी के साथ अपने लेखन का हिस्सा बनाकर समाज तक परोसता है। सम्पूर्ण कुप्रथाओं पर कटाक्ष करता है और स्वस्थ समाज की धारा प्रवाहित करता है। साहित्य और साहित्यकार का समाज की तमाम समस्यओं से जुड़ाव कोई नया नहीं है। समस्त वैज्ञानिक खोजों से पूर्व साहित्य ही इसका अन्वेशक और विष्लेशक रहा है। उपन्यासकार प्रेमचंद की यह मान्यता है कि-''अब साहित्य केवल मन बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और कुछ भी उद्देश्य है। अब वह केवल नायक -नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है।''[4]

साहित्यकार समाज का चतुर चितेरा होता है। साहित्यकार का भोगा हुआ यथार्थ उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति का परिचायक है। इतिहास साक्षी है कि साहित्यकार की भावनाओं का प्रस्फुटन कहीं न कहीं उसके भोगे हुए यथार्थ को बयां करता है। साहित्यकार विद्यासागर नौटियाल इसी कड़ी के एक ज्वलंत हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने अपने परिवेश में फैली रूढ़िवादिता को अपने लेखन का हिस्सा बनाया और उसको मिटाने की पुरजोर कोशिश की। अपनी रचनाओं में उन्होंने समाज में व्याप्त अनेक बुराइयों, कुरीतियों, वाहय आडम्बरों, छुआ-छूत, भ्रष्टाचार, जातिप्रथा, दहेज प्रथा, सामंतशाही क्रूरता, अनमेल विवाह, तानाशाही, पाश्चात्य संस्कृति का कुप्रभाव आदि को दर्शाया है और एक सजग प्रहरी के रूप में अपनी माटी का कर्ज अपने लेखन से अदा किया। जिस मिट्टी में वे पले बड़े उसी के दुःख दर्द की अभिव्यक्ति उनके लेखन का अहम् हिस्सा रहा है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के साथ तारतम्य बनाकर ही वह विकास के पथ पर अग्रसर होता है। साहित्य समाज का दर्पण है। किसी भी राष्ट्र अथवा समाज को वहाँ के साहित्य के द्वारा भली-भाँति समझा जा सकता है। विद्यासागर नौटियाल ने गढ़वाल अंचल के जनजीवन को बहुत ही नजदीकी से देखा व समझा है। उन्होंने पहाड़ की समस्याओं, विषमताओं तथा अभावों का बहुत ही गहराई से विश्लेषण किया। इन सबका समग्रतः सामाजिक रूप उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से चित्रित होता है। इस सम्बन्ध में सुभाष पन्त लिखते हैं- ''उनका सम्पूर्ण रचनात्मक लेखन सिर्फ गढ़वाल के बारे में है। इस तरह वे एक ऐसे लेखक हैं जिसने सिर्फ उस मिट्टी के बारे में लिखा जिस मिट्टी ने उसे जीवन दिया। बातचीत के दौरान वे अक्सर कहते, 'यह मैंने संकल्प लिया है कि मैं सिर्फ पहाड़ के बारे में लिखूँगा।' वे अपने संकल्प पर टिके रहे। कोई भी प्रलोभन उन्हें कभी भी नहीं डिगा सका। यही वजह है कि उनका साहित्य एक ऐसा दर्पण है जिसमें झांक कर पहाड़ और पहाड़ का इतिहास देखा जा सकता है। उसकी धड़कने महसूस की जा सकती हैं।''[5]

विद्यासागर नौटियाल के साहित्य में सामाजिक परिवेश का व्यापक रूप से प्रतिफलन हुआ है। उन्होंने तत्कालीन समाज का अपनी रचनाओं में पूर्ण रूप से चित्रण किया है। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त, छुआछूत, जाति-भावना, रूढ़िवादिता, बेरोजगारी, प्रतिस्पर्धा, जागरूकता, स्त्री एवं दलित संघर्षो का पूर्ण रूप से विश्लेषण किया है जिसका विवेचन निम्न प्रकार से है-

'फट जा पंचधार' कहानी में 'रक्खी' के माध्यम से लेखक ने समाज में व्याप्त रूढ़िवादी भावना को उजागर किया है। पंचधार गांव के सवर्ण नौजवान वीरसिंह द्वारा एक शूद्रा 'रक्खी' को उसके पिता व दादा के कर्ज की एवज में अपनी स्त्री के रूप में रख लिया जाता है परन्तु वीरसिंह के परिवार वाले उसे स्वीकार नहीं करते। वीरसिंह, रक्खी से जीवन भर साथ निभाने का वादा करता है परन्तु बाद में पंचों का फैसला होने पर वह उसे छोड़ देता है तथा बाद में वीरसिंह का शुद्धिकरण करके उसे वापिस बिरादरी में शामिल कर लिया जाता है व रक्खी को गाँव से भी निकाल दिया जाता है। ''ब्राह्मण ने सयाणों को शास्त्र की बातें बताई। एक बात उसने इतनी बार दुहराई कि वह मुझे अच्छी तरह याद हो गई। वह बार-बार कह रहा था- अगम्यागमन, बता रहा था कि इसका मलतब होता है - 'वहां जाना जहाँ नहीं जाना चाहिए। ऊँची कौम का आदमी डोम औरत के साथ रहने

लगे या कोई अपनी ऐसी रिश्तेदार के साथ हम-बिस्तरी कर बैठे जिससे रिश्ते के मुताबिक वह शादी नहीं कर सकता, तो वह अपने किए पर पछतावा कर सकता है। यानी ऐसा करके उसकी शुद्धि हो सकती है।''[6] इससे रूढ़िवादी भावना स्पष्ट होती है कि सवर्ण वीरसिंह का शुद्धिकरण किया जाता है परन्तु रक्खी का नहीं, क्योंकि वह एक शूद्रा है। जाती-पाँति एवं छुआ-छूत को साहित्यकार विद्यासागर नौटियाल ने बड़ी संजीदगी के साथ उजागर किया है।

इनकी कहानी 'भैंस का कट्या' में गज्जू के दूध न पीने पर हौस्याऊँ की माँ इस चीज को नजर लग गई कहती हुई तत्कालीन समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता को उजागर करती हैं-

''- गैणी मुई ले गई थी, उसी की हाक (नजर) लग गई है।

- यही तो मुसीबत है। दूध देना तो पाप है। अपने आप गाय-भैंस पाल नहीं सकते और दूसरे के मवेशियों को टोना-टटमोना करते रहते हैं। चटकारे मारती होगी दूध पीते वक्त, धूर्त कहीं की।

- यही मुसीबत है इस गांव में, भगवान ऐसे दुष्टों को मारता भी तो नहीं, ऐसी बस्ती का नाश हो जाए, तो अच्छा है।

थोड़ी रूककर फिर माँ ने कहा- जरा पडिंत जी के पास जाकर मंत्र तो लगवा दो।''[7]

''**बड़ी दीदी** के पुरखों के कुल में उस त्यौहार के दौरान कोई मौत हुई थी। एक आदमी मरा था। आदमी मरा था कि एक त्यौहार मर गया था, हाड़ पड़ा था। शोक। लगातार शोक। त्यौहार बन्द। पीढ़ी दर पीढ़ी। त्यौहार की खुशियां हमेशा के लिए बंद। त्यौहार के मनाए जाने पर रोक।''[8]

इसी प्रकार से उन्होंने 'पीपल के पत्ते' कहानी में रामू को पुलिस के द्वारा पकड़े जाने पर उसकी पत्नी द्वारा यह कहना कि पीपल के पत्ते का पतबीड़ा बनाने की यह सजा चंद्रबदनी माँ ने दी है यह भी उसकी रूढ़िवादी प्रवृत्ति को दर्शाता है।

नौटियाल जी ने समाज में व्याप्त बेरोजगारी का चित्रण भी अपने साहित्य में किया है कि किस प्रकार से युवा रोजगार की प्राप्ति हेतु पलायन करने के लिए मजबूर है। उनकी कहानी 'मरघट के उस पार में' शंकर सिंह रोजगार की तलाश में गांव छोड़कर आता है और उसे रोजगार के रूप में मरघट की रखवाली तथा साफ-सफाई का काम मिलता है, जिससे वे पैसे कमाकर प्राईवेट मैट्रिक के इम्तिहान की तैयारी कर रहा है। शंकर सिंह बेरोजगार युवाओं के वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हुआ दिखाई देता है-

''-गांव से रोजगार की तलाश में आया था। दुकानों पर काम खोज रहा था। इन लोगों ने यहां लगा दिया।

- लकड़ी देने और पैसे लेने के अलावा और क्या करते हो?

- लोग वापिस चले जाते हैं, तब मैं चिता की जगह को झाड़ू से साफ कर पानी से धो देता हूँ................ .... बाद में, जब धनानंद शवयात्रियों के साथ मरघट से वापिस जाने लगा, शंकर सिंह ने उसे यह बात बताई थी कि असल में यहां रहकर वह प्राइवेट तौर पर हाईस्कूल का इम्तहान देने की तैयारी कर रहा है।''[9]

'गलतफहमी' कहानी में बेरोजगारी की पीड़ा झेलते हुए एक युवक की मनः स्थिति का चित्रण किया है कि किस प्रकार वह रोजगार के अभाव में देहरादून से अपने गाँव जाने के लिए पैदल मार्ग का चुनाव करता है- ''आखिर जब एक रूपए और छह आने बचे तो मैंने पैदल ही चलने का निश्चय किया। रात-भर एक पिटठू (पीठ पर लगाया जाने वाला बड़ा थैला) एक कॉंधा (कंधे पर लटकाए जाने वाला छोटा थैला) को ठीक करता रहा। बिस्तर बाँधे, किताबें बाँधी, देहरादून के मित्रों को, जिन्हें बिना सूचित किए जा रहा था, पत्र लिखे। एक पड़ोसी मित्र को दे दिए वे सब पत्र। बिना तनख्वाह का चिट्ठीरसाँ बन गया था वह बेचारा।''[10] इसके अलावा 'भाई-बहिन का प्यार' में भाई व बहिन को रोजगार की कमी के कारण अनैतिक कार्य करते हुए दिखाया गया है। नौटियाल जी ने इस कहानी में स्पष्ट किया है कि नौकरी न मिलने पर हताश युवा किस प्रकार से अनैतिक काम करने को मजबूर हो रहे हैं। वे अपना पेट पालने के लिए बुरे कामों में लिप्त हो रहे हैं।

नौटियाल जी ने अपनी कहानियों के अतिरिक्त उपन्यासों में भी समाज में अपनी जड़े फैला चुकी बेरोजगारी की समस्या को चित्रित किया है। अपने उपन्यास 'भीम अकेला' में वे स्वयं लिखते हैं- ''प्रधानजी का लड़का जिसने मेरे बारे उन्हें सूचना दी थी, बी0ए0 पास है और वह घर पर रहता है, बेकार है। काम कहीं मिलता नहीं है। बगैर काम के बच्चे को घर से बाहर भेजें तो कहाँ भेजें। मंहगाई इस कदर बढ़ गई है कि एक दिन भी घर

से बाहर रहना मुश्किल हो जाता है।''[11]

इस प्रकार से लेखक ने समाज में व्याप्त बेरोजगारी को लेखनी के माध्यम से उजागर किया है कि शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् भी युवा वर्ग संघर्ष करने को मजबूर हो रहा है तथा धन के अभाव में अपनी जीविका को चलाने के लिए वह अनैतिकता के मार्ग की तरफ जा रहा है।

प्राचीन काल से ही हमारे समाज में नारी का स्थान ऊँचा रहा है। भारतीय परम्परा के अनुसार 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर नारी को पूजनीय स्थान दिया गया है। परन्तु बाद में बाहरी आक्रमणों के फलस्वरूप बदलती राजनीति तथा अन्य कारणों से भी नारी की स्थिति बदलती रही है। उत्तराखण्ड को देवभूमि कहा जाता है क्योंकि यहाँ पर विभिन्न स्थानों पर विभिन्न रूपों में देवताओं का वास रहा है। इसके कारण यह राज्य देवी-देवताओं की उपासना का केन्द्र भी है। यहाँ पर देवताओं की नर व नारी दोनों रूपों में पूजा-अर्चना की जाती है, परन्तु यह एक बिडम्बना है कि यहाँ की नारी खेत, खलिहान से लेकर चूल्हे व चौके के साथ-साथ बच्चों की परवरिश का जिम्मा भी सम्भालती हैं, उसकी स्थिति बहुत दयनीय है। यहाँ के पहाड़ का जीवन पहाड़ सा है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति व आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण यहाँ के पुरूष पलायन करने को मजबूर है। वे शहरों में नौकरी के लिए चले जाते हैं। गाँवों में बच्चे व महिलाएँ रह जाती है जिसके फलस्वरूप खेतीबाड़ी, खान-पान व बच्चों की परिवरिश की जिम्मेदारी महिलाओं पर ही है। कहा जाता है कि पहाड़ का पानी और पहाड़ की जवानी यहाँ के काम नहीं आती है।

विद्यासागर नौटियाल एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने गढ़वाल अंचल की नारी को बहुत ही गहराई से देखा व समझा है तथा इनका चित्रण अपनी लेखनी के माध्यम से किया है। 15 वर्ष की अवस्था में 'मूक बलिदान' नामक कहानी लिखना नारी जीवन को साहित्यकार की एक बड़ी देन है, इस सन्दर्भ में वे स्वयं लिखते हैं-

''**मैंने नारी** के अनेक रूप देखे हैं, खेतों-खलिहानों में, जंगलों-घसिया रकबों में, पहाड़ों की चोटियों-वादियों में, बस्तियों-वीरानों में, घरों के अन्दर और जिन्दगी के हर क्षेत्र में जिन्दगी की जद्दोजहद में जुटी हुई औरत। चरागाहों में ग्वालिनें बनी बेटियाँ, अपने पालतू पशुओं और बनैले खूँखार जानवरों से भी ज्यादा खतरनाक आदमियों की करतूतों का मुकाबला करती औरत। औरत, जिसे खुद अपने जन्मदाता माँ-बाप, गाय-भैंस की तरह, गोरू की तरह बेचने को बेचैन रहते हैं। अपनी बीमार भैंस को जिन्दा रखने के लिए सरकारी जंगल में पतरोल के सामने घास की तरह बिछने को मजबूर घसियारिन। बंधुआ शूद्रा, जिसका अपनी काया पर भी हक नहीं होता। औरत, जिसे राजनेताओं की शह पर नारी देह के थोक व्यापारी दलाल हिन्दुस्तान - भर में फैले हुए वेश्यालयों की ओर धकेलते रहते हैं। मजबूर नारी की उन विभिन्न छवियों को अपनी छवियों में उतारने की कोशिश करता रहा।''[12]

गढ़वाल पर जब गोरखाओं का शासन स्थापित हो गया था तो उस समय एक नियम निकाला गया कि राजकीय कर की अदायगी न होने पर उसे गिरफ्तार कर दास-दासियों का विक्रय कर दिया जाने लगा। हरिद्वार में उन गिरफ्तार लोगों की मंडी लगती थी जहाँ पर लोग उनकी बोली लगाते थे। यह प्रथा बाद में टिहरी के राजा सुदर्शन शाह के समय में भी काफी प्रचलित रही। नर-नारी का यह क्रय-विक्रय साहित्यकार को झकझोरने वाला था। 'सूरज सबका है' में वे लिखते हैं कि ''ग्यारह दासों को मंडी में बेचने के लिए हरिद्वार ले जाया जा रहा था। दो सगे भाई। जवान जवान छोकरे। जेठू और पूसू। दोनों की औरतें। देवरानी-जेठानी। सुमा और ऐतवारी''।[13]

''**19वीं** सदी तक न केवल कुमाऊँ में वरन् पूरे उत्तराखण्ड में स्त्री-पुरूषों को दास-दासियों के रूप में बेचने की एक और कुप्रथा प्रचलित थी। गढ़वाल में यह कुप्रथा सर्वाधिक प्रचलित थी। गढ़वाल दास-दासियों के सबसे बड़े ग्राहक दक्षिण में रोहिले तथा उत्तर में भोटान्तिक लोग थे। टिहरी गढ़वाल के राजा सुदर्शन शाह के शासन काल में भी दास-दासियों का विक्रय भारी मात्रा में होता था। यहाँ ही नहीं बल्कि यह प्रथा कुमाऊँ में बड़े व्यापक पैमाने पर थी, साथ ही बच्चों, युवाओं एवं परित्यक्ता व विधवा स्त्रियों को मैदानी क्षेत्रों में बेचने का प्रचलन काफी था।''[14]

तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति दयनीय थी। उसके साथ जानवरों जैसा व्यवहार किया जाता था। यहाँ तक कि शादी, विवाह के बारे में भी उससे उसकी इच्छा नहीं पूछी जाती थी। विवाह के अवसर पर मायके वाले उसकी कीमत तय करते थे तथा तलाक आदि निपटाने के बाद अगर नए आदमी से उसका सौदा होता तो उसकी रकम भी मायके वालों के खाते में ही जाती थी। इस दयनीय

स्थिति को कथाकार नौटियाल जी ने अपनी कृति 'बागी टिहरी गाए जा...' में चित्रित किया है-

''**सामंती** समाज में औरत और पशु के साथ एक जैसा व्यवहार था दोनों का दरजा समान होता था। औरत को पशु की तरह कोई जानवर बिक जाने पर अपने खूंटे से बेदखल करके किसी दूसरे खूंटे पर बांध लिया जाता है, तगड़ा मोल देकर खरीदी गई औरत भी एक घर से हटाई जाकर समाज के जटिल रीति-रिवाजों और राज्य के कानूनों की सख्त डोर से दूसरे घर की चौहद्दी के अन्दर, किसी दूसरे मर्द की चौकसी में बांध दी जाती थी। कुंआरी बेटी का विवाह किस घर में और किस मर्द के साथ किया जाए, इस बारे में उसकी अपनी कोई इच्छा-अनिच्छा नहीं हो सकती थी। उसके लिए घर और वर का निर्णय करने के मामले में मायके के मर्दो की दिमागी कसरत का अंत इस बिन्दु पर होता था कि उसे खुले बाजार में उनको ज्यादा ऊँची रकम किस घर से हाथ लग सकती है। बेटी अविवाहित हो चाहे विवाहित, उसे जब-जब घर बदलना होगा, उसकी कीमत मायके वाले ही तय करेगें, और रकम प्राप्त भी करेंगे। वह धनराशि बेटी नहीं ले सकती, हमेशा मायके वाले ही प्राप्त करेंगे।''[15]

उत्तराखण्ड की भौगोलिक स्थिति में होने वाली कृषि एवं पशुपालन तथा अन्य गृहस्थी के कार्यो में सघंर्षरत स्त्री को कथाकार नौटियाल जी ने अपनी कहानियों की कथावस्तु बनाया है। ये कहानियाँ उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्र की स्त्री की स्थिति से परिचय करवाती हैं। आज चाहे स्थिति कितनी ही बदल गई हो परन्तु यहाँ की अनउपजाऊ जमीन तथा अन्य संसाधनों की कमी ने नारी की स्थिति में ज्यादा बदलाव नहीं आने दिया है। आज भी ग्रामीण समाज की नारी की स्थिति हमें जमीनी धरातल पर यथार्थ से रूबरू करवाती है तथा नौटियाल जी की कहानियाँ पहाड़ की स्त्रियों की व्यथा को सजीव रूपेण चित्रित करती हैं। इस सम्बन्ध में प्रयाग जोशी जी लिखते हैं- ''पहाड़ों के कठिन भूगोल में विकसित हुई कृषि और पशुपालन की संस्कृतियों के सरलतम जीवन मूल्यों की झाँकियों से सज्जित, जीवन, आजीविका के सहृय संकटों को कर्म सौन्दर्य में बदलते जीवन की ये कहानियाँ, उनकी कथावस्तुओं के साथ तद्रूप हो चुके कथाकार की गहन संवेदनाओं की अभिव्यक्तियाँ हैं। ऐसी अभिव्यक्तियाँ जो कथ्यों के माध्यम से वहाँ की स्त्री की जिम्मेदारी, जोखिम, हादसों व नैतिकता के बोध से तो हिन्दी की कहानी के पाठकों को परिचित कराती ही हैं, जमीनी यथार्थ से सत्यापित, विश्रांति विहीन श्रम व अपार सहनशक्ति की दुनिया का रास्ता भी दिखाती हैं। वह रास्ता जो बुजुर्ग औरतों की पीढ़ियों से चली आती हुई तंगख्याली, भुक्खड़पन और उत्पीड़न के बयावानों से होकर गुजरता है। कहानियाँ, जितनी कहानियाँ है उससे अधिक सामाजिक अध्ययन। वे आंखों देखी, कानों सुनी से ज्यादा झेली, भोगी हुई भी हैं। 'महाराजा काफूशाह का आत्मघात', 'सन्निपात', और 'फट जा पंचधार' तो कहानियों की कहानियाँ हैं। उन्हें उत्तराखण्ड की महाकथायें भी कह सकते हैं। उनमें वहां की सामाजिकता, ऐतिहासिकता संचेतना और औरत के सींचे हुए परिवार- वृक्ष के पत्तों पर पहचाने गए रोग की जड़ में जाने की कोशिश है। व्यवस्था, अर्थतन्त्र और नरवाद की आकाश-बेल से लिपटा हुआ वृक्ष।''[16]

इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति दयनीय थी। उस समय में नारी पर पशुओं के जैसे अत्याचार किया जाता था उसे कोई भी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी । यहां तक कि उसका अपना शरीर भी उसका अपना न था। घरवालों ने जिस किसी के साथ उसका सौदा कर बाँध दिया, उसे वहीं रहना पड़ता था। नौटियाल जी ने गढ़वाली समाज में नारी की तत्कालीन स्थिति का पूर्णरूप से सजीव चित्रण किया है। उन्होंने अपने साहित्य में नारी को दो रूपों में दिखाया है एक तो अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को चुपचाप सहती रहती है तथा दूसरी उन अत्याचारों का मजबूती से सामना करती हुए अंत में निराश हो जाती है। अतः कथाकार नौटियाल जी ने तत्कालीन समाज में नारी को जोखिम उठाते हुए, उत्पीड़न, भुक्खड़पन तथा आजीविका के लिए संघर्षरत आदि स्थितियों से गुजरते हुए दिखाया है।

उत्तराखण्ड में प्राचीन काल से ही दलितों की स्थिति बहुत ही दयनीय रही है। यहाँ पर छुआछूत का भेदभाव होता आया है। दलितों की बस्तियां भी गांवों के निकट नहीं होती थी। यहां तक कि सवर्णो के जल के स्थान पर उन्हें आने तक की अनुमति नहीं थी। कथाकार विद्यासागर नौटियाल ने तत्कालीन समय व समाज में दलितों की स्थिति को अपने साहित्य के माध्यम से चित्रित किया है कि किस प्रकार से दलित-वर्ग अपनी रोजी-रोटी के लिए संघर्षरत हैं। एक तरफ तो आर्थिक स्थिति अच्छी न होना इस संघर्ष का कारण है तथा दूसरी तरफ से दलित होना

भी एक अभिशाप के रूप में उनकी जिन्दगी को बद से बदत्तर बना रहा है। गढ़वाल अंचल में सवर्ण लोग दलितों को अपने पानी की धारा पर आने नहीं देते थे। अगर कोई गलती से उनके बर्तनों पर हाथ भी लगा देता तो वह बर्तन अछूत हो जाता था। इस सन्दर्भ में विद्यासागर नौटियाल ने अपने उपन्यास 'स्वर्ग द्ददा! पाणि, पाणि' में लिखा है-

''**सितानू** हरिजन था। बहू राजपूत वह उसके भाँडे को उठा कर पानी की गिरती धार के नीचे नहीं रख सकती थी। किसी सवर्ण का बर्तन होता तो वह वैसा कर लेती। लेकिन उसके बर्तन को वह हाथ नहीं लगा सकती थी। हाथ लगा देने से उसके गीले हाथ के कारण उसके अपने बर्तन में भरे हुए पानी को छूत लग जाती। तब उसे अपने बर्तन का पानी दुबारा भरना पड़ता।''[17]

इसी उपन्यास में नौटियाल जी ने दर्शाया है कि सवर्ण लोग उनके छुये हुए पानी को उपयोग में लाने से खुद को अछूत मानते थे तथा तन-बदन पर फोड़े होना या फिर शरीर में खाज-खुजली होना भी उसी छूत की वजह होती थी इस सम्बन्ध में नौटियाल जी लिखते हैं-

''**गाँव** की सवर्ण जातियों के लोग आम तौर पर डोमाणा की ओर जाने वाली उस बटिया पर नहीं चलते। गांव के बाहर, नीचे की ओर आने-जाने के लिए उनकी राहें अलग थीं। दोनों औरतों को चढ़ाई चढ़ते देख बिसला को गुस्सा आ गया। वह अपने गुस्से को छुपा नहीं पाई। उनको देख कर अपने मन में आई बात जम्मू से प्रकट कर दी।

- धारा को गंदा कर जाती है डोमिनें।

- धारा पर पानी भरती है और भरा हुआ बंठा सर पर रख कर यहाँ से चपंत हो जाती है। जैसे गांव की बामणियाँ हों।

- हाँ! पानी भर लेने के बाद धारा को धोती तक नहीं है कभी।

- धारा को धोने के लिए जैसे इनका नौकर बैठा हो गाँव में।

- बिट्ठों के घरों की कोई औरत आएगी तो उसी अन-धुली धारा का छुतहा पानी बर्तन में भरकर अपने घर पहुंचा देगी। उस बेचारी को क्या मालूम हो पाएगा कि कुछ देर पहले से म्लेच्छ धारा को गंदा कर गई थी और उसके बाद धारा धोया नहीं गया था।

- मैं तो जब भी यहां आती हूँ पानी से अपना बंठा छालने से पहले धारा को खुद ही खूब अच्छी तरह धो लेती हूँ। तब भरती हूँ पानी।

- छिः छिः घिन आती है। छुतहा हो गया पानी घर ले जाएंगे तो बीमार पड़ जाएंगे। बच्चों के तन-बदन पर फोड़े उग आते हैं।

- और दीदी! बड़ों के बदन में खाज होने लगती है।''[18]

सर्वणों तथा अस्पृष्य जातियों के बीच का भेदभाव सदियों पुराना है तथा यह आज भी चला आ रहा है। कथाकार विद्यासागर नौटियाल ने तत्कालीन समय में व्याप्त इस भेदभाव को अपने उपन्यासों के अलावा कहानियों में भी चित्रित किया है। फट जा पंचधार, कुंवारी धार बोलेगी, सुच्चीडोर, धारा और जाल, दरोगा जी को महुए की भेंट, आदि कहानियाँ है, जिनमें उन्होंने दलितों पर होने वाले अत्याचार व समाज में उनके स्थान को यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

'फट जा पंचधार' कहानी में उन्होंने स्पष्ट किया है कि दलितों के द्वारा सवर्ण लोग अपने काम करवाते थे, जैसे- मकान बनाना तथा लकड़ियाँ लाना। परन्तु काम पूरा करने के बाद यही लोग उन घरों व लकड़ियों को हाथ नहीं लगा सकते थे। इस कहानी में रक्खी कहती है-

''**वीरसिंह** के मकान का निर्माण मेरे बधुंआ कोल्टा दादा ने अपने हाथों से किया था। मकान तैयार हो गया तो ब्राह्मण बुलाया गया। ब्राह्मण ने उस घर की मुख्य चौखट पर सिदूंर-तिलक लगाया। गाय के गोबर से गणेश की मूर्ति का निर्माण कर मंत्रोच्चारण किया। फिर हरी दूब के तिनकों के गुच्छे से वहाँ पवित्र जल और गो-मूत्र का छिड़काव किया गया और घर के अन्दर देवदार की लकड़ी जलाकर हवन हुआ। वीरसिंह के दादाओं ने, गांव के खास-खास लोगों ने, उनके रिश्तेदारों ने और सयाणों के झुंड ने उस पवित्र घर के आंगन में सहभोज किया। उसके बाद मेरे दादा, उसकी जाति के लोगों और उसके वंशजों का जन्म-जन्मांतर उस पवित्र मकान पर हाथ लगाकर छूना तक वर्जित हो गया। हमारे छू देने भर से उस मकान की पवित्रता समाप्त हो सकती थी। उस सहभोज के बाद बचे-खुचे भोजन से एक हिस्सा पाने के लिए मेरे दादा और उसके घर के लोग, मेरी माँ, दादी और बाप, दादा के साथ मकान पर काम करने वाले दूसरे मजदूर-कारीगर उस पवित्र घर के आँगन के एक कोने में सहमे-सहमे से आकर बैठ गए थे।''[19]

इसी कहानी में रक्खी की माँ वीरसिंह के परिवार के लिए घास लेने जाती है। उसकी माँ की मृत्यु पर वीरसिंह द्वारा

उसके दाह-संस्कार के दौरान कंधा न देने पर रक्खी तंज कसती हुई कहती है-

"**वीरसिंह** के घर मुझे दो ही दिन हुए थे कि माँ वीरसिंह के परिवार के लिए घास काटते हुए ढंगार से गिर गई। उसका शरीर दो हिस्सों में मिला था। क्रिया करने के लिए बहुत दूर से हमारे भाई-बंधुओं को बुलाया गया था। वीरसिंह ने दाह-संस्कार का खर्चा दिया। शव को कंधा नहीं दिया, मेरे मुँह के अन्दर जीभ डालकर वीरसिंह मेरा थूक चाट सकता था, मेरी माँ के सूखे, मुर्दा शरीर को कंधा नहीं दे सकता था। मेरी माँ कोल्टा थी, शूद्रा।"[20]

इस प्रकार से हम कह सकते है कि कथाकार विद्यासागर नौटियाल ने तत्कालीन समाज में दलित समाज के संघर्षरत जीवन को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। उनकी कहानियाँ तथा उपन्यासों में दलित वर्ग संघर्ष करता हुआ नजर आता है। यह संघर्ष उनका अपने स्वाभिमान के लिए नहीं है। यह संघर्ष तो उनके अपनी दिनचर्या को पूरा करने तथा अपने पेट पालने के लिए दो वक्त की रोटी का इन्तजाम करने के लिए है।

भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है। यहां पर अनेक धर्मो तथा जातियों के लोग निवास करते हैं जिसके कारण यहां पर सप्रांदायिक दंगे हमेशा होते रहते हैं। जाति-पाति के नाम पर होने वाली सांप्रदायिकता समय-समय पर जनमानस को प्रभावित करती रहती है। अवसरवादी लोगों के निजी स्वार्थ के कारण ये दंगे होते हैं जिसके कारण साधारण से जनमानस को कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। कोई भी साहित्यकार समाज में होने वाली इस प्रकार की घटनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय हिन्दू तथा मुसलमानों में होने वाले सांप्रदायिक दंगों का असर कथाकार विद्यासागर नौटियाल पर पूर्ण रूप से दिखाई देता है। इन्होंने अपने उपन्यास 'उत्तर-बायां है' में हिन्दू-मुसलिम दंगों का यथार्थ रूप से सजीव चित्रण किया है कि किस प्रकार कुछ अवसरवादी लोगों तथा राजनेताओं की वजह से पूरा समाज तितर-बितर हो गया तथा समाज में जो संगठन था हिन्दू व मुस्लिमों का उसमें किस प्रकार से दरार पड़ गई। इस सन्दर्भ में नौटियाल जी का यह कथन द्रष्टव्य है-

"**पूरे** हिन्दुस्तान के अन्दर, उसके शहरों और देहातों में, मुसलमानों की बेकसूर औरतें, बहू-बेटियों से जीना-जबर्दस्ती की जाने लगी थी और उन सबको मुसलमान घर में जन्म लेने के अपराध के कारण जिरह किया जाने लगा था। पाकिस्तान के अन्दर हिन्दू अल्पसंख्यकों को भी ऐसे ही निशाना बनाया जा रहा था। वहां हिन्दू अल्पसंख्यक मारे जाने लगे थे। जो जिन्दा रह पाए उनमें बहुत बड़ी संख्या में लोग शरणार्थी बनकर भारत आने लगे थे। वे टिहरी शहर में भी पहुंचने लगे थे और मुसलमानों के बारे में अमानवीय आप बीती की कहानियां सुना-सुनाकर स्थानीय हिन्दू निवासियों में घृणा, वैमनस्य, सांप्रदायिक उन्माद और उत्तेजना फैलाने का काम करने लगे थे।"[21]

इस प्रकार से नौटियाल जी ने भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के दौरान होने वाले साम्प्रदायिक दंगो का यथार्थ व सजीव चित्रण किया है। वे अपनी कृति 'उत्तर बायां हैं' में कहते हैं कि "उसी दौरान आजादी मिलते ही, पड़ोसी हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिक दंगों की शुरूआत हो गई। पाकिस्तान में हिन्दुओं और भारत में मुसलमानों का सामूहिक संहार किया जाने लगा। बड़े पैमाने पर लूट-पाट शुरू हो गई। चरागाहों में जो गूजर थे, वे सब मुसलमान थे। टिहरी गढ़वाल रियासत के बाहर पड़ोसी आजाद हिन्दुस्तान के मैदानी भागों में मुसलमानों के कत्लेआम की शुरूआत हो जाने की उड़ती-उड़ती, दिल-दहलाने वाली खबरें गूजरों के कानों में भी पहुंचने लगी।"[22]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय पाकिस्तान में हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार हुआ काफी संख्या में लोगों का कत्ल किया गया था, कुछ लोग जान बचाकर शरणार्थी बनकर भारत आ गए थे और उन्होंने यहां पर आकर पाकिस्तान के मुसलमानों के बारे में जो अमानवीय आपबीतियां सुनाई उससे यहां के हिन्दुओं में मुसलमानों के प्रति हिंसा, घृणा व उत्तेजना की भावना जागृत हुई तथा यहां पर भी मुसलमानों को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा व उनको भी सरे आम मारा जाने लगा। हिन्दू व मुसलमान परिवार इन दंगों के कारण एक -दूसरे के खून के प्यासे बन जाते हैं तथा दोनों ही सम्प्रदायों में एक दूसरे के प्रति घृणा व हिंसा की भावना घर कर लेती है, जिससे समाज में वैषम्य बढ़ जाता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि विद्यासागर नौटियाल ने अपने समस्त साहित्य में समाज में व्याप्त जाति-पाति की भावना, बेरोजगारी, स्त्री तथा दलितों पर होने वाले अत्याचार, सम्प्रदायिक दंगें तथा छुआछूत आदि का सजीव चित्रण किया है। साहित्य समाज का दर्पण है तथा कोई भी साहित्यकार समाज में होने वाली घटनाओं से अछूता नहीं रह सकता। कथाकार विद्यासागर नौटियाल भी

तत्कालीन समाज में फैली हुई कुप्रथाओं तथा वैषम्य से आहत हुए तथा अपनी लेखनी के माध्यम से इन विषयों पर चिन्तन-मनन किया। उन्होंने अपने साहित्य में जनमानस के दुःख-दर्द को व्यक्त किया है तथा समाज में व्याप्त अनेक प्रकार की बुराईयों का यथार्थ रूप से चित्रण किया है। वास्तविक रूप से उनका साहित्य उस सम्पूर्ण समाज को बयां करता है, जिसमें रहकर व्यक्ति विभिन्न प्रकार की बिडम्बनाओं का शिकार है। समाज मनुष्य द्वारा ही निर्मित है, किन्तु अनेक कुप्रथाओं का प्रचलन स्वस्थ समाज को बीमार करता है। इन सभी पक्षों पर विद्यासागर नौटियाल ने अपनी लेखनी चलाई है। टिहरी रियासत का क्रूर अत्याचार हो या तानाशाही, गरीबी हो या छुआ-छूत, अंध विश्वास हो या पंचायती फैसले, नारी की दारुण स्थिति हो या पहाड़ी जीवन, राजनीतिक सरोकार हो या टिहरी बांध का विरोध, समस्त सामाजिक सरोकारों को लेकर साहित्यकार सजग प्रहरी की भाँति प्रतिबद्ध रहा है, और सामाजिक विद्रूपताओं को अपने लेखन का हिस्सा बनाकर अपनी लेखनी को यह कालजयी साहित्यकार सदा-सदा के लिए अमर कर गया।

सन्दर्भ

1. पथिक, देवराज, *'नई कविता में राष्ट्रीय चेतना'*, कादम्बरी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980, पृ. 22
2. वही, पृ. 22
3. गुप्ता, एस. आर., *'आधुनिक परिवार : समस्याऐं और संक्रमण'*, सीता प्रकाशन, हाथरस, 1998, पृ. 12
4. प्रेमचंद, *'साहित्य का उद्देश्य'*, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954, पृ. 4
5. पन्त, सुभाष, *'साहित्य के फक्कड़ दरवेश के बहाने'*, लोक गंगा, (लोक चेतना की मासिकी), वर्ष 8, अंक 12, सितम्बर-नवंबर 2012, पृ. 25
6. नौटियाल, विद्यासागर, *'फट जा पंचधार, मेरी कथा यात्रा'*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 76-77
7. नौटियाल, विद्यासागर, *'टिहरी की कहानियां'*, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2000, पृ. 122
8. नौटियाल, विद्यासागर, *'सूरज सबका है'*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 10
9. नौटियाल, विद्यासागर, *'मरघट के उस पार : संकलित कहानियां'*, नेशनल ट्रस्ट बुक इंडिया, नई दिल्ली, 2013, पृ. 83,84
10. नौटियाल, विद्यासागर, पूर्वोक्त, पृ. 201
11. नौटियाल, विद्यासागर, *'भीम अकेला'*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ. 26
12. नौटियाल, विद्यासागर, *'फट जा पंचधार, पाती अनाम पाठक के नाम'*, रेमाधव प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 6,7
13. नौटियाल, विद्यासागर, पूर्वोक्त, पृ. 21
14. बिष्ट, आशा, *'गढ़वाल का ऐतिहासिक, सामाजिक एवं धार्मिक भावनाओं का अध्ययन'*, राघव पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 80
15. नौटियाल, विद्यासागर, *'बाघी टिहरी गाये जा'*, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 36
16. जोशी, प्रयाग, *'पर्वतीय स्त्रियों की व्यथा कथा'*, लोक गंगा, (लोक चेतना की मासिकी), वर्ष 8, अंक 12, सितम्बर-नवंबर 2012, पृ. 57
17. नौटियाल, विद्यासागर, *'स्वर्ग दद्दा! पाणी पाणी'*, अंतिका प्रकाशन, गजियाबाद, 2010, पृ. 26
18. नौटियाल, विद्यासागर, पूर्वोक्त, पृ. 65
19. नौटियाल, विद्यासागर, पूर्वोक्त, पृ. 70
20. वही, पृ. 71
21. नौटियाल, विद्यासागर, *'उत्तर बायां है'*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ0 33,34
22. वही, पृ. 16, 17

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 21 अंक 1, जनवरी–जून 2019
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences- No. 193

चंद्रशेखर की आर्थिक नीति

❑ डा0 आनन्द कुमार

आधुनिक भारत के प्रखर राजनीतिक चिन्तक 'चन्द्रशेखर' जो 'युवा तुर्क' के नाम से प्रख्यात रहे प्रारंभ में अन्य दलों से जुड़ने के बावजूद उनका झुकाव सदैव समाजवाद की ओर रहा। उनकी समाजवादी पृष्ठभूमि ने उन्हें सत्ता और पूंजीवाद का प्रखर आलोचक बना दिया। इंदिरा गांधी के 20 सूत्रीय कार्यक्रम के निर्माण तथा प्रचार में उनकी प्रमुख भूमिका रही। बाद में वे जयप्रकाश नारायण के साथ जुड़े और उनके सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। आपातकाल के दौरान वे जेल भी गए। उन्होंने ''माई प्रिजन डायरी'' ''डायनेमिक्स ऑफ सोशल चेंज इन पोलिटिकल इकोनॉमी आफ इण्डिया'' नाम पुस्तकें तथा ''यंग इण्डिया'' नामक साप्ताहिक पत्र का भी प्रकाशन किया। इन पुस्तकों से उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक विचारों को समझा जा सकता हैं। प्रस्तुत लेख उनकी आर्थिक नीति को प्रकाशित करने का एक प्रयास है।

चन्द्रशेखर आधुनिक भारत के प्रखर राजनीतिक चिन्तक थे। वे प्रारम्भ से ही छात्र राजनीति से जुड़े रहे। अपने विश्वविद्यालय अध्ययन के दौरान वे बी0एच0यू0 के तत्कालीन कुलपति श्री नरेन्द्र देव के सम्पर्क में आये। इसके बाद से समाजवादी आन्दोलन से जुड़ते चले गए। वे प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के राज्य सचिव भी नियुक्त हुए। उन्होंने अपने कार्यो से तत्कालीन समय के प्रमुख समाजवादी चिन्तकों जयप्रकाश नारायण, मधु लिमये, जे0 वी0 कृपलानी, अशोक मेहता, अच्युत पटवर्द्धन को काफी प्रभावित किया। 1957 के चुनाव में उन्होने गाजीपुर–बलिया लोकसभा क्षेत्र से प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से चुनाव लड़ा लेकिन वे चुनाव हार गए। प्रतिनिधि के तौर पर वे सबसे पहले 1962 में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के टिकट पर राज्यसभा के लिए निर्वाचित हुए। इस प्रकार चंद्रशेखर का झुकाव समाजवाद की तरफ रहा। बाद में अन्य पार्टियों से जुड़ने के बावजूद उनका झुकाव समाजवाद की और ही बना रहा। 1965 में उन्होंने कॉंग्रेस ज्वाइन किया और वे ''युवा तुर्क'' के नाम से प्रसिद्ध हुए। चन्द्रशेखर की समाजवादी पृष्ठभूमि ने उन्हें सत्ता और पूँजीवाद का प्रखर आलोचक बनाया। इंदिरा गाँधी के 20 सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रमों के निर्माण तथा प्रचार में उनकी मुख्य भूमिका रहीं बाद में 1974 में वे जयप्रकाश नारायण के साथ जुड़े और उनके सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। आपातकाल के दौरान वे जेल भी गए। उन्होंने ''माई प्रिजन डायरी'' ''डायनेमिक्स ऑफ सोशल चेंज इन पोलिटिकल इकोनॉमी आफ इण्डिया'' नाम पुस्तके लिखी थीं इन पुस्तकों से उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक विचारों को समझा जा सकता हैं। उन्होने यंग इण्डियन'' नाम साप्ताहिक पत्र का भी प्रकाशन किया। यह पत्रिका भी उनके विचारों को जानने का मुख्य स्त्रोत है।[1]

1977 के चुनाव में वे बलिया से जनता पार्टी के टिकट पर चुनाव जीते। इसी वर्ष वे जनता पार्टी के अध्यक्ष भी बने। 1980 में वे पुनः बलिया से जनता पार्टी के टिकट पर चुनाव जीते। 1984 के आमचुनाव में वे बलिया से चुनाव हार गए लेकिन 1989 में उन्होंने उत्तर प्रदेश के बलिया तथा बिहार के महाराजगंज से चुनाव लड़ा और दोनो स्थानों से चुनाव जीते। 1990 में जब बी0जे0पी0 ने वी0पी0 सिंह सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया तो चन्द्रशेखर ने कॉंग्रेस पार्टी के सहयोग से अपनी सरकार बनायी। उन्होने 10 नवम्बर 1990 को प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। यद्यपि उनकी सरकार मात्र चार महीने ही चली लेकिन इसी अल्प अवधि में उन्होने अपनी आर्थिक नीतियों को जनता के सामने रखा। उन्होने 2004 तक बलिया लोकसभा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व किया।[2]

चंद्रशेखर यानी एक प्रखर वक्ता, लोकप्रिय राजनेता, विद्वान लेखक और बेबाक समीक्षक, देश के प्रधानमंत्री के रूप में आठ महीने से भी कम के कार्यकाल (10 नवंबर, 1990 से 20 जून, 1991) में ही उन्होंने नेतृत्व क्षमता और दूरदर्शिता की ऐसी छाप छोड़ी जिसे आज भी याद किया जाता है। समाजवादी संकल्पों के व्यापक आवरण में रहते हुए उन्होंने मतभेदों को कभी दलीय और विचारधारात्मक

❑ प्रवक्ता, श्री हरिहर महादेव इन्टर कॉलज, देवचन्दपुर, वाराणसी (उ.प्र.)

संकीर्णता में सीमित नहीं किया। राष्ट्रीय मसलों और जनता के सवालों पर सरकारों का विरोध भी किया और आवश्यक सहयोग भी। इंदिरा गांधी ने जब आपातकाल लगाने की घोषणा की उसी रात अर्थात् 25 जून को चंद्रशेखर नारायण से मिलने संसद भवन थाने गये। वे उनसे मिल कर जब निकल रहे थे, तो किसी पुलिस अधिकारी ने चंद्रशेखर को सूचना दी कि आपको भी गिरफ्तार किया जाता है। चंद्रशेखर उनकी इजाजत से पुलिसकर्मियों के साथ अपने घर गये, जरूरी सामान लिया और जेल चले गये। अगर गौर करें तो चंद्रेशेखर कांग्रेस के अकेले ऐसे नेता थे, जो कि आंदोलन के सर्मथन में नहीं, बल्कि जयप्रकाश नारायण के समर्थन में थे। चंद्रशेखर की ऐसी दृढ़ धारणा थी कि जेपी और इंदिरा गांधी के बीच टकराव देश हित में नहीं है। हुआ भी वही, इंदिरा गांधी ने देश में अपातकाल लगा दिया। आपातकाल लगाया जाना एक काला अध्याय था। आपातकाल के दौरान चुनाव की घोषणा हुई। चंद्रशेखर जनता पार्टी के बड़े नेताओं में से एक थे। दिल्ली के प्रगति मैदान में 1 मई, 1977 को जनता पार्टी का विधिवत गठन हुआ। इसकी अध्यक्षता मोरारजी देसाई ने की थी। इस सम्मेलन के बाद रामलीला मैदान में एक सभा हुई। इस सभा में एक व्यक्ति एक पद के सिद्धांत को मानते हुए मोरारजी देसाई ने घोषणा की कि चंद्रशेखर जनता पार्टी के अध्यक्ष होंगे। इस तरह चंद्रशेखर जनता पार्टी के पहले अध्यक्ष बने। 23 मार्च, 1977 को आपातकाल हटा। इसके कई कारण थे। इस दौरान जितने भी बड़े नेता थे वे मोरारजी देसाई की सरकार में मंत्री बनना चाहते थे। 24 मार्च, 1977 को केंद्र में जनता पार्टी की सरकार बनी। 22 से 24 मार्च के बीच जनता पार्टी के तमाम नेता मंत्री बनने की कोशिश करते दिखे। चंद्रशेखर को भी मंत्री बनने का प्रस्ताव था, लेकिन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उस समय जयप्रकाश नारायण जसलोक अस्पताल में भर्ती थे। उन्होंने चंद्रशेखर को संदेश दिया कि यदि मोरारजी देसाई आपको मंत्री बनाते है, तो आपको मंत्रिमंडल में शामिल होना चाहिए। उन्होंने जेपी की सलाह को ठुकराते हुए कहा कि मोरारजी देसाई ने मंत्री बनने का प्रस्ताव किया है, लेकिन मैं मंत्रिमंडल में शामिल नहीं होऊंगा, चंद्रशेखर ने प्रस्ताव इसलिए ठुकराया, क्योकि मोरारजी देसाई से उनका मतभेद था। वे कहा करते थे कि यदि भारत को समृद्ध और खुशहाल बनाना है, तो उसके लिए दूरदृष्टि रखनी होगी, सभी को मिल कर काम करना होगा। सभी को यह अहसास करना होगा कि यह भारत यहां रहनेवाले सभी लोगों का है। किसी एक का या किसी खास का नहीं है। तात्कालिक लाभ के लिए वह कभी कोई बयान भी नहीं देते थे। आज चंद्रशेखर जी होते तो देश में जो तमाम तरह की समस्याएं है, उसे सुलझाने में काफी मदद मिलती। वह अलग-अलग प्रदेशों की अलग-अलग समस्याओं से परिचित थे। चाहे वह कश्मीर का मुद्दा रहा हो, पंजाब या फिर पूर्वोतर भारत का। वे समस्याओं का स्थायी हल निकालने में विश्वास रखते थे। चंद्रशेखर संवेदनशील थे, भावनात्मक थे, लेकिन सख्त भी उतने ही थे। गलत कामों को वह हरगिज बर्दास्त नहीं करते थे। आज देश में कई तरह की समस्याएं है। आज देश में विपक्ष की भूमिका को नकारा जा रहा है। जबकि चंद्रशेखर जी हमेशा स्वस्थ लोकतंत्र में विपक्ष को भी उतना ही महत्व देते थे। वे पूरी तरह निरपेक्ष थे। चाहे वह सत्ता मे रहे हों या विपक्ष में, जो सही और सच था वही बोलते थे। चाहे इसके लिए उन्हें किसी तरह को जोखिम ही क्यों नहीं उठाना पड़े। सच बोलने में उन्होंने कभी भी समझौता नहीं किया। यही कारण रहा कि विपक्ष भी उनका उतना ही सम्मान करता था। आज देश में पक्ष-विपक्ष की परिपाटी है। एक खेमा पक्ष में तो दूसरा खेमा विपक्ष मे होता है। जबकि चंद्रशेखर जी हमेशा बीच का रास्ता अपनाते थे। वह गांधी की तरह रास्ता चुनते थे। यही कारण रहा कि बाबरी मसजिद जैसे विवादित मुद्दे को भी उन्होंने लगभग सुलझा लिया था। वे कहते थे कि जो अल्पसंख्यक हैं उनकी भाषा सख्त हो सकती है, लेकिन उनकी भावना नहीं, क्योंकि यदि उन्हें अपने देश में रह कर किसी तरह की परेशानी उठानी पड़ रही है, तो निःसंदेह उनकी भाषा सख्त होगी ही। यही कारण था कि जब भी उनसे मिलने अल्पसंख्यक, दलित, आदिवासी या समाज के निचले पायदान पर खड़े समूह आते थे, तो वे हमेशा उनकी भावना का ख्याल रखते थे।

जीवन-यात्रा 1927 : 17 अप्रैल को बलिया जिले (यूपी) के इब्राहिम पी गांव में जन्म। 1951 : इलाहाबाद विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र में परास्नातक। बलिया में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के जिला सचिव पद पर निर्वाचित। 1962 : उत्तर प्रदेश से प्रसोपा से राज्यसभा के लिए निर्वाचित। 1964 : प्रसोपा छोड़ कर कांग्रेस में शामिल हुए। 1967 : कांग्रेस के महासचिव बने। 1969: 'यंग इंडिया' नामक साप्ताहिक पत्रिका की शुरूआत।

1975 : आपातकाल में गिरफ्तार, पत्रिका पर तालाबंदी। 1977 : नवगठित जनता पार्टी में शामिल हुए और इसके अध्यक्ष बने। 1983 : छह जनवरी से 25 जून तक 4,260 किलोमीटर की पद यात्रा की। 1990 : विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार के गिरने और जनता दल में फूट के बाद कांग्रेस के समर्थन से भारत के प्रधानमंत्री बने। 1991 : पांच मार्च को चंद्रशेखर सरकार से कांगेस ने समर्थन वापस लिया। अगले दिन पद से इस्तीफा। कार्यवाहक प्रधानमंत्री के रूप में 20 जून तक कार्यरत। 2007 : आठ जुलाई को 80 वर्ष की आयु में कैंसर की बीमारी से निधन। संसदीय मर्यादा समस्याएं जटिल होती जाएं, लोगों के अंदर निरूत्साह की भावना आये तो स्थिति विस्फोटक हो जाती है। लोगों के मन की आकांक्षाएं पूरी नहीं होती है, उसके कारण उनमें निराशा की भावना पैदा होती है। ऐसी स्थिति में अगर संसदीय संस्थाएं भी अपनी मर्यादा को छोड़ कर लोगों का यह विश्वास भी न रख पायं कि उनके द्वारा उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति हो रही है तो ऐसे ही समय में अराजकतावादी शक्तियों को बल मिलता है। देश की मुख्य धारा राजनीति में सक्रिय कुछ राजनीतिक पार्टियां भी भूमंडलीकरण–उदारीकरण का विरोध करती हैं। धर्म के नाम पर आदमी आदमी का खून न बहाये, धर्म के नाम पर अल्पसंख्यकों के मन में दशहत न पैदा की जाये। अगर दहशत पैदा की जायेगी तो हम उसके खिलाफ संघर्ष करंगे, हम उसके खिलाफ लड़ाई लड़ेगें मेरा दृष्टिकोण इस मामले में बहुत ही स्पष्ट है। धर्म के नाम पर एक-दूसरे की हत्या नहीं होनी चाहिए। यह धर्म के खिलाफ है। चाहे इसलाम हो या हिंदू, चाहे ईसाई मत हो, किसी भी धर्म में इसे उचित नहीं ठहराया गया है।[3]

चंद्रशेखर ने देश की नब्ज टटोलने के लिए भारत भ्रमण किया और प्रचार व शोहरत से दूर किसान और मजदूरों की समस्या पर अग्रणी भूमिका निभाते रहे। समाजवादी विचारधारा में अटूट विश्वास रखनेवाले पूर्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर की मौजूदा राजनीतिक परिस्थितियों में महत्ता काफी बढ़ गयी है। छात्र राजनीति से राजनीति की शुरूआत करने वाले चंद्रशेखर प्रधानमंत्री बनने के बाद भी सिंद्धांतों की राजनीति से नहीं भटके। सोशलिस्ट पार्टी में बिखराव और फिर कांग्रेस में जाने का उद्देश्य पद हासिल करना नहीं था। कांग्रेस में रहते हुए भी उन्होंने हमेशा सिद्धांतों की लड़ाई लड़ी। इस कारण उनका इंदिरा गांधी से विवाद हुआ, लेकिन वे नहीं झुके। इंदिरा गांधी द्वारा 1975 में लगाये गये आपातकाल का उन्होंने जम कर विरोध किया और इसके लिए उन्हें जेल भी जाना पड़ा। अगर वे चाहते तो कांग्रेस में रहते कोई पद हासिल कर सकते थे, लेकिन उनके लिए पद से अधिक सिद्धांत महत्वपूर्ण थे। इंदिरा गांधी की नीतियों के विरोध के अगुआ बने। सादगी पसंद जीवन जीने में विश्वास रखने वाले चंद्रशेखर अपने बेबाक बोल के लिए जाने जाते थे, आर्थिक मुद्दो से लेकर विदेश नीति के मसले पर उनकी राय काफी महत्वपूर्ण होती थी। लोकतांत्रिक मूल्यों में विश्वास करने वाले चंद्रशेखर संवैधानिक संस्थाओं की मजबूती के पक्षधर थे। वर्ष 1991 में जब मनमोहन सिंह ने आर्थिक सुधार की नीतियों को लागू करने का फैसला किया, तो उन्होंने भविष्य में इससे होने वाले नुकसान के बारे में चेताया था। उनका मानना था कि कोई भी विदेशी कंपनी भारत में पैसा लगा कर देश के लोगों का कल्याण नहीं करेगी। इन कंपनियों का उद्देश्य भारत से लाभ कमा कर अपना हित साधना होगा और इससे देश की गरीबी कम नहीं होगी। अगर आज इस बात पर गौर करें तो देश में आर्थिक असमानता पहले की तुलना में बढ़ी है। महंगाई बढ़ रही है और संपन्न लोगों के पास ही तमाम सुविधाएं उपलब्ध हैं। गांव, गरीब, आदिवासी, मजदूर की स्थिति पहले से खराब हुई है। आज देश में आंकड़ों में भले गरीबी घट गयी हो, लेकिन वास्तविकता में ऐसा नहीं है। देश की मौजूदा स्थिति क्या है? कश्मीर में अलगाववादी शक्तियों, तो देश में सांप्रदायिक राजनीति देश के विकास में सबसे बड़ी बाधा है और आनेवाले समय में इसके परिणाम भयंकर होंगे। चंद्रशेखर के राष्ट्रवाद में देश में शांति और सौहार्द की बात होती थी। वे मानते थे कि ग्रामीण क्षेत्र को मजबूत बना कर ही रोजगार के अवसर पैदा किये जा सकते हैं, क्योकि आज भी 70 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है। लेकिन आर्थिक विकास के नाम पर शहरों में बड़ी-बड़ी कंपनियां लगाने पर जोर दिया जा रहा है। देश में बेरोजगारों की संख्या बढ़ती जा रही है। चंद्रशेखर का स्पष्ट मानना था कि विदेशों में भीख का कटोरा लेकर घूमने से देश का विकास नहीं होगा। भारत अपनी जरूरतों और शर्तो के आधार पर भी आगे बढ़ सकता है। देश में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से समस्या का समाधान नहीं होने वाला है। भारत के लोगों में क्षमता है और वे अपने पैरों पर खड़ा होकर देश का भला कर

सकते हैं। आर्थिक उदारीकरण के बाद भले ही विकास दर में बढ़ोत्तरी हुई हो, लेकिन व्यापार संतुलन गड़बड़ा गया है। अब देश की अर्थव्यवस्था की सेहत दूसरे देशों पर निर्भर हो गयी है। चंद्रशेखर चाहते थे कि आर्थिक तरक्की करने के लिए कृषि क्षेत्र को मजबूत किया जाना चाहिए। आज सबसे खराब स्थिति कृषि क्षेत्र की है। किसान आत्महत्या करने को मजबूर हैं। आज देश के लोगों की भावना की समझ नेताओं में नहीं है। चंद्रशेखर ने देश की नब्ज टटोलने के लिए भारत भ्रमण किया और प्रचार व शोहरत से दूर किसान और मजदूरों की समस्या पर हमेशा अग्रणी भूमिका निभाते रहे। विचारधारा अलग होने के बावजूद वे दूसरे दलों के नेताओं से मिलने में परहेज नहीं करते थे। उनकी स्पष्ट राय थी कि राजनीति में विचारों की मतभिन्नता होती है और इसका व्यक्तिगत संबंधों पर असर नहीं पड़ना चाहिए। विरोधियों की हमेशा शब्दों की मर्यादा में ही आलोचना करते थे। आज राजनीति में कड़वाहट और शब्दों की मर्यादा नहीं दिखती है। सत्ता के लिए कभी सिद्धांतों से समझौता न करने वाले चंद्रशेखर जैसे नेता आज भारतीय राजनीति में नही दिखते हैं। छात्र जीवन से लेकर प्रधानमंत्री तक का उनका सफर संघर्ष से भरा रहा। उनका प्रधानमंत्रित्व काल काफी छोटा रहा, अगर वे लंबे समय तक इस पद पर रहते, देश को नयी दिशा की ओर ले जाने में सक्षम होते। प्रधानमंत्री रहते उन्होंने पड़ोसी देशों के साथ संबंध बेहतर बनाने का हरसंभव प्रयास किया। अपने सिद्धांतों और विचारों के कारण वे भारतीय राजनीति में अपनी एक अलग पहचान बनाने में कामयाब रहे। भारतीय राजनीति में युवा तुर्क के रूप में विख्यात रहे पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय चंद्रशेखर की पहचान एक ऐसे समाजवादी नेता की थी, जिसके माध्यम से न केवल राम मनोहर लोहिया के विचार आगे आए, बल्कि जिसने देश की राजनीति में एक अलग स्थान बनाया, प्रधानमंत्री के रूप में अपने छोटे-से कार्यकाल में उन्होंने इस बात का बोध कराया कि निहित स्वार्थों को त्याग कर कैसे पूरे राष्ट्र की धरोहर थे और रहेगे। राजनीति का अर्थ उनके लिए राज करने की नीति नहीं था, बल्कि राजनीति उनके लिए जनसेवा और अन्याय विहीन भारत की स्थापना का माध्यम थी, वह एक दृढ़ नेता और नेक इंसान की तरह घृणा और अन्याय को मिटा देने का प्रयास करते रहे। वह जीवनपर्यत जातिवाद, सांप्रदायिकता, गरीबी और बेबसी से जूझ रहे देश में नवीन अमृत संचार का प्रयास करते रहे। उन्होंने कभी अपने बारे में नहीं सोचा, उन्होंने सदैव समाज के बारे में सोचा। घनघोर संकट के बीच अपनी मान्यताओं के लिए अकेले खड़े होने का गुण उन्हें समकालीन नेताओं से अलग करता है।

उनके जीवन पर बहुत कम किताबें लिखी गई है, लेकिन हाल में श्री चंद्रशेखर जी स्मारक ट्रस्ट, आजमगढ़ उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'राष्ट्रपुरूष चंद्रशेखर'[4] में उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं पर बड़ी बेबाकी से प्रकाश डालने की कोशिश की गई है, जिस तरह पांच तत्वों से शरीर बना है, उसी तरह इस किताब को भी पांच खंडो में विभाजित किया है, जिससे चंद्रशेखर का व्यक्तित्व परिभाषित होता है, पहले खंड में उनके भाषण, दूसरे में उनसे जुडी यादें और विचार है, तीसरे में उनकी कहानी उन्हीं की जुबानी, चौथे में उनकी कहानी-जिनकी यादों को चंद्रशेखर कभी अपनी जिंदगी से बाहर नही निकाल पाए तथा पांचवे खंड में वह राष्ट्रपुरूष क्यों है, इसे रेखांकित किया गया है, किताब की भूमिका में दिनेश दीनू ने लिखा है कि चंद्रशेखर जी के पास जो जाता था, उसका स्वागत गुड़ और पानी से होता था। भारतीय जन संस्कृति की यह परंपरा उनकी चौखट पर हमेशा रही, इस पुस्तक में भी उसी गुड और पानी की मिठास है, यह किताब बताती है कि किस तरह उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के एक छोटे-से गांव इब्राहिम पट्टी से निकल कर एक व्यक्ति देश का प्रधानमंत्री बन गया, बचपन के सामाजिक परिवेश का उनके व्यक्तित्व और विचारों पर कैसा प्रभाव पड़ा। इस पर किताब में विस्तार से चर्चा है। किताब में बताया गया है कि वह सामाजिक और राजनीतिक परिवेश के साथ कैसे सामंजस्य स्थापित करते थे, जैसे कि एक बार वह विवाह समारोह में गए। वहां वह जमीन पर बिछे गद्दों पर बैठे गए और उन्होंने उपस्थित महिलाओं से गाली (संस्कार गीत) सुनाने की फरमाइश की। उस वक्त वह राजनीतिज्ञ की जगह एक घरेलू चंद्रशेखर नजर आ रहे थे। एक पूर्व प्रधानमंत्री। एक महान सांसद, एक क्रांति का प्रतीक अपने पूरे आवरण को किस घर के बाहर किस तरह छोड़ आया था। आज के नेताओं से इस तरह की उम्मीद नहीं की जा सकती।

पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को उन्होंने अपना आर्थिक सलाहकार भले ही बनाया था, लेकिन पीवी नरसिम्हा राव के कार्यकाल में बतौर वित्त मंत्री मनमोहन

सिंह की चंद्रशेखर जी ने सदैव आलोचना की। पूरी जिंदगी उन्होंने समाजवादी सिद्धांतों को अपनी राजनीति का आधार बनाए रखा। वह कांग्रेस के बंटवारे के समय इन्हीं मूल्यों के लिए इंदिरा गांधी के साथ गए थे, उनका मानना था कि भारत जैसे देश में, जहां की दो-तिहाई आबादी खेती पर निर्भर है, वहां उदारीकारण और वैश्वीकरण की नीतियों की जरूरत नहीं है, वैश्वीकरण के भारतीय जीवन पर होनें बाले असर को उन्होंने पहचान लिया था और जीवनपर्यंत वह इसका विरोध करते रहे, चंद्रशेखर का अर्थशास्त्र प्रचलित सैद्धांतिक खांचे से नहीं, बल्कि देश की हकीकत से संचालित होता था, बैकों के राष्ट्रीकरण का श्रेय भले ही तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को दिया जाता है, मगर हकीकत में वह चंद्रशेखर ही थे, जिन्होंने संसद में इस बिल को मजबूती से लाने में भूमिका अदा की थी। वह तब कांग्रेस के महासचिव थे। एस.के. गोयल ने यह बिल प्राइवेट मेंबर बिल के तौर पर तैयार किया था, मगर लंबी बातचीत के बाद चंद्रशेखर ने इस पर एक मजबूत प्रस्तुति बनाई और इसे पार्टी की तरफ से पेश करने का निर्णय लिया। देश के लिए वैकल्पिक आर्थिक नीति लाने का श्रेय भी चंद्रशेखर को जाता है, जिसके आधार पर अपने पहले कार्यकाल में इंदिरा गांधी ने समाजवादी नीतियां बनाई।

सामाजिक रूप से वह कितने सचेत थे, इस किताब में कई उदाहरण हैं, इंदिरा गांधी द्वारा जयप्रकाश नारायण को जेल में डालने की सार्वजनिक रूप से आलोचना करके वह रातों रात लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के प्रतीक बन गए थे। इसके बाद इंदिरा गांधी ने आपातकाल के दौरान उन्हें जेल में डाल दिया था, लेकिन जनता पार्टी के गठन के समय वह अध्यक्ष पद के सबसे निर्विवाद नाम थे। उन्होंने इंदिरा गांधी के ऑपरेशन ब्लू स्टार का विरोध किया था, वह स्वर्ण मंदिर में सेना भेजने के सख्त खिलाफ थे। उस वक्त सारा विपक्ष इंदिरा जी के कदम की सराहना कर रहा था, लेकिन चंद्रशेखर ने उसका विरोध किया था, उन पर इसे लेकर राजनीतिक हमले किए गए, लेकिन वह अपने मत से टस से मस नहीं हुए। इसके बाद इंदिरा गांधी की हत्या हो गई और देश में सिख विरोधी दंगे भड़क गए। बावजूद इसके वह राजनीतिक लाभ-हानि का आकलन किए बगैर अपने सहयोगियों के साथ दंगाग्रस्त इलाकों में घूमते रहे।

चंद्रशेखर भारत की विरासत को समझते थे और मानते थे कि इस साझी विरासत को संभालना देश के हर व्यक्ति का दायित्व है। वह सांप्रदायिकता के खिलाफ थे। उन्होंने बाबरी मस्जिद ढहाए जाने के बाद संसद में कहा, यह जो गिराई गई है, वह महज मस्जिद नही थी, यह भारत की गौरवशाली परंपरा थी, भारत का इतिहास था, भारत का सह-अस्तित्व था और भारत की मानवीय परंपरा थी, जिसे हवाओं में उड़ा दिया गया। भारत के करोड़ों नागरिकों का हृदय टूटा है, जिसे जोड़ा नहीं जा सकेगा।

बिना झुके, बिना समझौते के खरी-खरी सीधी बात करने वाला एक साधारण इंसान देश की राजनीति के लिए कैसे अपरिहार्य हो जाता है। यह किताब उसे विस्तृत तरीके से बताती है, चंद्रशेखर वास्तव में राष्ट्रपुरूष थे, यदि वह लंबे समय तक देश के प्रधानमंत्री रहते, तो आज देश की दशा-दिशा कुछ और होती। संसद में जब चंद्रशेखर बोलते थे, तो पूरा सदन उनकी बात शांत होकर सुनता था। उनके बोलने के दौरान शायद ही कभी संसद में टोका-टाकी हुई हो, उनके जैसे नेता की कमी देश को हमेशा खलेगी।

चन्द्रशेखर के अन्दर समाजवादी भावनाओं की जड़ें उनके प्रारम्भिक राजनीतिक काल से ही मजबूत थी। उनमें आचार्य नरेन्द्र देव और जय प्रकाश नारायण की विचारधारा का समावेश था, जिसे उन्होंने कभी छुपाया भी नहीं चाहे वे कांग्रेस में रहे हो या विपक्ष में। उन्होंने अपनी समाजवादी अर्थतंत्र को छोड़ा नहीं। उनका आर्थिक दृष्टिकोण जिसे उन्होंने संसद में बहस में बार-बार परिलक्षित किया।

चन्द्रशेखर का स्पष्ट मत था कि भारत की जनसंख्या इतनी बड़ी है और बेरोजगारी का आकलन इतना ज्यादा है कि लोगों का काम बड़े कल कारखानों से पूरा नहीं हो सकता। यहाँ तो छोटे और लघु ग्रामीण उद्योग-धन्धों की जरूरत है जिससे अधिक से अधिक लोगों को रोजगार मिल सके। उनका मानना था कि भारत में बुनकर कारीगरी, दस्तकारी आदि की समृद्ध परम्परा है अतः इसके विकास से ही ग्रामीण भारत का विकास हो सकता है। साथ ही उनका कहना था कि इसी कुटीर उद्योग में ही सामाजिक न्याय भी छुपा हुआ और इससे ही भारत में दलित और पिछड़ी जातियों को स्वरोजगार मिलेगा जिससे उनका शोषण बन्द होगा।

चन्द्रशेखर का मानना था कि स्वतंत्रता के बाद भारत ने अपने विकास को एक आयाम दिया है। अगर सरकारी आर्थिक आंकड़ों का हवाला दिया जाय तो प्रगति कम नहीं

है पर मुख्य चीज यह है कि हमारी प्रगति स्वावलम्बन पर नहीं टिकी है। हमने अपने आर्थिक तंत्र को मजबूत नहीं बनाया। उनका कहना था कि भारत ने भुखमरी और खाद्यान्न संकट का बहुत हद तक हल निकाला है। पर हमारे विकास के यंत्र अभी भी विदेशों से मांगने पड़ते है। हमारे पास आज भी पूंजीगत बचत का अभाव है जिससे हम विकास नहीं कर पा रहे है। चन्द्रशेखर का कहना था कि विकास के पैसों के बन्दरबाँट ने आर्थिक विकास को धीमा किया है।

चन्द्रशेखर विदेशी कंपनियों को नवउपनिवेशवाद का यंत्र मानते थे। उनका कहना था कि भारत ने जो 1991 में नई आर्थिक नीति अपनायी है वह देश हित में नहीं है। उनका कहना था कि उदारीकरण, विनिवेश और निजीकरण भारत जैसे ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाले देश के लिए उचित नहीं है। उनका कहना था कि 1942 में अगर महात्मा गाँधी भारत छोड़ों का नारा दे सकते थे तो 1991 में हम विदेशियों को बुलाने के लिए मजबूर नहीं थे। भारत 1942 से बुरी हालत में 1991 या 1999 में नहीं आया। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हमारा विकास करने नहीं बल्कि अंधाधुंध मुनाफा कमाने आ रही है। चन्द्रशेखर का मानना था कि हमारी सरकारों ने विश्व बाजार और प्रतिस्पर्धा के नाम पर जिस नीति को अपनाया है वह हमारी संप्रभुता का हनन है। चन्द्रशेखर ने बलिया प्रेस क्लब के व्याख्यान में कहा कि जिस स्वावलम्बन और आर्थिक आजादी की कीमत हमारे राष्ट्रपिता करते थे वह उदारीकरण और विदेशी निवेश की भेंट चढ़ गया है। इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत के लघु और कुटीर उद्योग का विनाश कर दिया है जिसका परिणाम हम उत्तर भारत में कपड़ा उद्योग की दयनीय हालत को देखकर लगा सकते हैं। आर्थिक उदारीकरण गरीब लोगों के लिए आर्थिक गुलामी का रूप लेता जा रहा है।[5]

श्रमिकों के सम्बन्ध में उनकी पार्टी की सरकार ने सकारात्मक और रचनात्मक श्रमनीति को अपनाया। इमरजेंसी के दौरान सेवामुक्त किये गये कामगारों को पुनः रोजगार प्रदान किया गया। चन्द्रशेखर ने श्रमिकों के बोनस, जी0पी0एफ0, महिला और पुरूष समान वेतन के लिए सरकार पर दबाव डाल कर इसे लागू करवाया। यह संगठन और अध्यक्ष का ही प्रभाव था कि सभी कर्मचारियों को 8.53 प्रतिशत बोनस व पी0पी0एफ0 पर ज्यादा ब्याज दर और पुरूष-महिला समान वेतन कानून पारित किया गया।

चन्द्रशेखर की नीति सदैव महिलाओं को राष्ट्रीय जीवन में योगदान के लिए अधिक सक्षम बनाने की रही। इसी को ध्यान में रखकर जनता पार्टी की सरकार ने महिलाओं को विकास कार्यक्रमों से लाभ और रोजगार के अवसरों के अध्ययन हेतु एक कार्यदल नियुक्त किया था। तदनुसार छठी पंचवर्षीय योजना शायद भारत में पहली योजना थी जिसमें महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर तलाशने का विशेष रूप से उल्लेख हुआ। महिलाओं के आर्थिक विकास एवं कल्याण की दिशा में एक प्रमुख कदम उठाते हुए जनता पार्टी की सरकार ने खादी और ग्रामोद्योग, हस्तशिल्प और हथकरधा जैसे क्षेत्रों में जिसमें महिला रोजगार की पर्याप्त गुंजाइश थी, पूँजी-निवेश दो वर्षो में ही पाँच गुना बढ़ा दियां महिलाओं के जीवन स्तर को सुधारने के लिए चन्द्रशेखर की पार्टी एवं सरकार ने सभी रोजगारों के लिए समान वेतन कानून भी लागू किया।[6]

चन्द्रशेखर के सामने उक्त समय में सबसे बड़ी समस्या देश को दिवालिया होने से बचाने का था। 1991 से पहले की सरकारों ने कर्जखारी से देश को दिवालिया बना दिया था। पर 1991 में कर्ज देने वाले साहूकारों से देश बचाने का भार मिला चन्द्रशेखर सरकार को। उस समय उन्होने रिजर्व बैंक का सोना गिरवी रख कर भुगतान संतुलन के गंभीर संकट से देश को बचाया। उस समय उन्हें न जाने क्या क्या कहा गया है। पर आज उदारीकरण के जाने माने हिमायती कहते है कि उस वक्त सोना गिरवी रखने का साहस और दृढ़संकल्प न दिखाया गया होता, तो आज देश कंगाल रहता। अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में उसकी साख खत्म हो गयी होती। उदारीकरण की न पृष्ठभूमि बनती और न ही भारत विकसित होने या महाशक्ति बनने का सपना देखता।[7]

चन्द्रशेखर ने लाइसेन्स प्रणाली पर किसी प्रकार के नियंत्रण की संभावना से उन्होंने इन्कार किया था और कहा था कि सरकार यह पहले ही स्पष्ट कर चुकी है कि वह पेटेण्ट ऐक्ट पर कोई समझौता नहीं करेगी।[8]

चन्द्रशेखर ने कहा कि उदारीकरण हर समस्या का निदान नहीं है। उदारीकरण को तभी तक स्वीकारा जा सकता है, जब तक वे लालफीताशाही एवं भ्रष्ट्राचार रोकने में सहायक हैं। उदारीकरण को मजदूरों की छटनी के रूप में स्वीकार नहीं है। उनका कहना था कि तकनीकी सहायता एवं विदेशी मद्द की आवश्यकता होगी, परन्तु

प्रत्येक चीज एक सीमा के अन्तर्गत होनी चाहिए। हमारे देश की आर्थिक व्यवस्था खराब हालत में है, परन्तु हमारे यहाँ लोगों में चेतनाशक्ति हैं तथा आर्थिक संरचना में जान है, जिसके द्वारा हम देश को दलदल की स्थिति से उबार सकते है। परन्तु इस कार्य हेतु हमें देश के सभी वर्ग के लोगों के सहयोग की जरूरत है। आर्थिक ढाँचे को मजबूत करने के लिए उद्योगपतियों, व्यापारियों एवं विदेशों में रह रहे भारतीयों के सहयोग की महती आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध में उनका कहना था कि इसमें परिवर्तन आवश्यक है। उनका कहना था कि सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण नहीं किया जायेगा। उनका कहना था कि सरकारी उपक्रमों को बेचकर धन कमाने से देश की भलाई नहीं हो सकती। उनका स्पष्ट मत था कि विकास कार्यों के लिए गरीबों की जगह धनाढ्य लोगों से ज्यादा टेक्स लेने की आवश्यकता है। उन्होने कहा था कि राजस्व संग्रह में वृद्धि सुनिश्चित करने का हर सम्भव उपाय किया जा रहा है। साथ ही उन्होने लोगों से आर्थिक समस्या से निपटने के लिए कमर कस लेने का अनुरोध भी किया और जोर देकर कहा कि भारत कैसा बने इसकी विश्व के सामने क्या तस्वीर निखरे इसका निणर्य इस देश की जनता और यहाँ की संसद स्वयं तय करेगी, कोई बाहरी ताकत नहीं। देश को तरक्की की राह पर ले जाने के लिए स्वदेशी और स्वावलम्बन को अपनाना होगा।[9]

प्रधानमंत्री के तौर पर उनकी आर्थिक नीति : चन्द्रशेखर के प्रधानमंत्री बनने के समय देश की आर्थिक स्थिति बेहद खराब थी। भुगतान संतुलन की समस्या पैदा हो गयी थी। उस परिस्थितियों में चन्द्रशेखर ने 'सोना' गिरवी रखकर आई0एम0एफ0 से कर्ज प्राप्त किया था। देश दिवालिया, होने से बचा था। उस समय बहुत से लोगों ने इस कदम की आलोचना की थी पर आज भी आर्थिक विशेषज्ञ इसे दूरगामी और साहसी कदम मानते है जिस निर्णय ने देश को दिवालिया होने से बचाया।

आर्थिक उदारीकरण को सिर्फ तकनीकी क्षेत्रों में लागू करने के समर्थक थे। बहुत से क्षेत्रों में तकनीकि सहायता एवं बाहरी मद्द की आवश्यकता है लेकिन प्रत्येक चीज एक सीमा के अन्दर ही, होनी चाहिए।[10] इन्होंने देश को आर्थिक संकट से उबारने में योजना आयोग की महती भूमिका पर भी काफी बल दिया था और कहा था कि योजनाओं के सफल क्रियान्वयन से देश आर्थिक दृष्टि से विकसित और मजबूत होगा।[11]

1991 में भारत की आर्थिक स्थिति ग्रीस जैसे ही हो गई थी। भारत भी दिवालिया होने की कगार पर था। उस समय चन्द्रशेखर केयर टेकर प्रधानमंत्री थे। उनकी अनुमति से भारत सरकार ने 47 टन सोना विदेश में गिरवी रखकर कर्ज चुकाया था। नवम्बर 1990 से जून 1991 तक सात महीने के लिए वे देश के प्रधानमंत्री थे। जब वे प्रधानमंत्री बने तब देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त खराब थी। पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या हो चुकी थी। भारत की राजनीतिक हालात भी अस्थिर थे। भारत की अर्थव्यवस्था भुगतान संकट में फॅसी हुई थी। इस समय त्ठप् ने सोना गिरवी रख कर्ज लेने का फैसला लिया। उस समय के गम्भीर हालात का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि देश का विदेशी मुदा भागदार 1.1 अरब डालर ही रह गया था, इतनी रकम तीन हफ्तों के आयात के लिए भी पूरी नहीं थी। भारत के इस आर्थिक संकट के समय एन. आर. आई. ने भी पैसा भेजना बन्द कर दिया था। इसके अलावा विश्व बैंक और अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भी कर्ज देने से मना कर दिया था। साख निर्धारण करने वाली संस्थाओं ने भारत को सबसे नीचे की श्रेणी में डाल दिया था। देश का बाहरी कर्ज सत्तर अरब डॉलर के ऑफर को पार कर गया था। निवेशकों ने दूरी बना ली थी। उन्होंने भारत में लगा अपना पैसा निकाल लिया। भारत की ऐसी हालात के लिए सोवियत संघ का बिखराव भी एक कारण माना गया।

ऐसे हालात से निपटने के लिए चंद्रशेखर सरकार ने 47 टन सोना दो जहाजों में लादकर बैंक ऑफ इंगलैण्ड के पास गिरवी के लिए भेजा। यह संकट पॉच साल पहले राजीव गॉधी के शासन के दौरान ही शुरू हो गया था। बाहरी कर्ज ने महज 290 अरब डॉल वाली भारतीय अर्थव्यवस्था की हालत खराब कर दी। ऐसी स्थिति में अंतराष्ट्रीय मुदाकोष से कर्ज लेकर आर्थिक सुधार करने के सिवा और कोई चारा नहीं था।[12]

इसके बाद जून 1991 में हुए चुनाव में विपक्षी पाटियों ने इसे मुद्दा बनाया। चुनाव के बाद कॉग्रेस की सरकार बनी। पी0 वी0 नरसिन्हा राव प्रधानमंत्री बने। उन्होंने मनमोहन सिंह को वित्त मंत्री बनाया। इन्होंने देश में आर्थिक बदलाव की शुरूआत की। लेकिन चंद्रशेखर ने देश के आर्थिक संकट से निबंटने के लिए जो निर्णय लिए वह निश्चय ही प्रशंसनीय कदम था।

वे भारत के समाजवादी आंदोलन के अकेले ऐसे

व्यक्तित्व थे जिसे प्रधानमंत्री बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बहुत से व्यक्तियों का यह मानना था कि उनके प्रधानमंत्री बनने से ज्यादा महत्व उनकी लंम्बी राजनीतिक यात्रा का है। परिस्थितियों के एकदम अनुकूल नहीं रहने के बावजूद वे समाजवादी विचारधारा से अलग नहीं हुए। नेता के तौर पर अपनी जनता को सच्चा नेतृत्व देने के लिए उन्होंने लोकप्रियता नही कदमों से परे जाकर अलोक प्रिय होने के खतरे भी उठाय थे। इस सम्बन्ध में उनके निकट सहयोगी अशोक श्रीवास्तव[13] ने लिखा है कि 6 जनवरी 1983 से 25 जनू 1983 तक देशवासियों से मिलने एवं उनकी महत्वपूर्ण समस्याओं को समझने के लिए उनके द्वारा की गई भारत यात्रा की याद दिलाते हैं। इस यात्रा के अन्तर्गत उन्होंने दिल्ली से कन्याकुमारी तक पैदल 4260 किलो मिटर की यात्रा की थी। किसी भी भारतीय नेता द्वारा की गई यह अब तक की सबसे वही पदयात्रा थी। राजनीति में उनकी पारी सोशलिस्ट पार्टी से शुरू हुई और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी और प्रज्ञा से शुरू हुई और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी और प्रज्ञा सोशलिस्ट पार्टी के रास्ते कांग्रेस, जनता पाटी, जनता दल, समाजवादी जनता दल और समाजवादी जनता पार्टी तक पहुँचकर खत्म हो गई। 1965 में कॉग्रेस की उस वक्त की कथित समाजवादी नीतियॉ से प्रभावित होकर उन्होंने अशोक मेहता के साथ कॉग्रेस में शामिल होना स्वीकार किया। 1967 में कॉग्रेस संसदीय दल के महासचिव बनने के बाद उन्होंने सामाजिक बदलाव वाली नीतियों पर बल दिया और उच्च वर्गों में बहुत समाधिकार के खिलाफ आवाज उठाई। **उन्होंने** भूमण्डलीकरण के रास्ते आयी गैर बराबरी और बेरोजगारी बढ़ाने वाली जिन आर्थिक नीतियॉ का कुफल हम भोग रहे हैं उसके बारे में उन्होंने समय रहते बता दिया था। उनका सुविचारित और स्पष्ट मत था यह देश जब भी मजबूत होगा, अपने आंतरिक संसाधनों के बल पर होगा। बहुराष्ट्रीय कंपनियॉ द्वारा किया जाने वाला विदेशी निवेश जो इसके लिए मियादी बुखार में रोटी के टुकड़े जैसा होगा। स्वदेशी और स्वावलंबन अर्थात आत्मनिर्भरता की भावना को प्रक्षय देने के लिए गलत समझे जाने का खतरा उठाकर भी वे स्वदेशी जागरण मंच द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में गए।[14]

इस प्रकार स्पष्ट है कि चंद्रशेखर की आर्थिक नीतियों पर समाजवादी चिन्तन का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने अपने आर्थिक चिन्तन में समाज के सभी वर्गों को स्थान दिया है। यद्यपि वे आर्थिक उदारीकरण के समर्थक थे लेकिन इसे उन्होंने सिर्फ तकनीकी क्षेत्रों में अपनाने का समर्थन किया था। उन्होंने अपने आर्थिक चिन्तन में योजना आयोग की उपयोगिता ओर उसके महत्व पर विशेष बल दिया था। उनका यह मानना था कि योजनाओं के सफल क्रियान्वयन से देश आर्थिक दृष्टि से विकसित और मजबूत होगा।

सन्दर्भ

1. कुमार आनन्द, *'भारतीय राजनीति में चंद्रशेखर का योगदान',* अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार), 2013, पृ0 16
2. दैनिक समाचार पत्र ''आज,'' लखनऊ, 11 नवम्बर 1997
3. *'चन्द्रशेखर के विचार', 'रहवरी के सवाल',* उद्धृत कुमार आनंद, पूर्वोक्त, पृ. 35
4. 'राष्ट्रपुरूष चन्द्रशेखर', उद्धृत कुमार आनंद, पूर्वोक्त, पृ. 12
5. अप्रैल, 1999 को बलिया प्रेस क्लब द्वारा आयोजित अपने अभिनन्दन समारोह में चन्द्रशेखर द्वारा दिया गया वक्तव्य।
6. जैन, एन0सी, *'जनता पार्टी- महामंत्रियों की रिपोर्ट',* 1987, पृ0 78-79
7. दैनिक समाचार प्रभारत खबर, पटना, 3 अक्टूबर, 2010, पृ0 17
8. चन्द्र, अत्तर, *'द लौंग मार्चः प्रोफाइल ऑफ प्राइम मिनिस्टर चन्द्रशेखर',* मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1991, पृ0 89
9. नैयर, कुलदीप, *'फैसला इमरजेंसी का कच्चा चिट्ठा',* राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ0 205
10. चौबे, कृपा शंकर, *'भारतीय राजनीति के फक्कड़ कबीर- चंद्रशेखर',* आनन्द प्रकाशन, रवीन्द्र सर जी, कोलकाता, 1999, पृ0 55
11. कोहली, अनिल, *'शेखरः स्टेटमेंटस, पॉलिसिज, एण्ड ओपिनियन',* रिलायन्स पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1977, पृ0 282
12. दैनिक भास्कर, दिल्ली, 8 जुलाई 2015
13. उद्धृत कुमार आनंद, पूर्वोक्त, पृ. 39
14. द वायर, दिल्ली, 15 फरवरी 2019

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	: भारत-चीन कूटनीतिक सम्बन्ध
लेखक	: डॉ. मानिकलाल गुप्त
प्रकाशक	: अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष	: 2019
मूल्य	: रू. 495
पृ. सं.	: 130

यह पुस्तक भारत-चीन कूटनीतिक संबंधों पर गहन प्रकाश डालती है। लेखक ने इसमें औपनिवेशिक काल से 21 वीं शताब्दी की दहलीज तक के विभिन्न घटनाक्रमों का उल्लेख किया है। इस पुस्तक में औपनिवेशिक काल में ब्रिटेन, रूस आदि देशों की महत्वाकांक्षाएं एवं हितों का भी गहनता से उल्लेख किया गया है। क्षेत्रीय भावनाओं के औपनिवेशिक राष्ट्रवाद से टकरावों, समझौतों, सहयोग, घात, प्रतिघात, विचारों, घटनाओं और कालखण्डों को रेखांकित और मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। लेखक ने इसमें ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया है।

लेखक ने औपनिवेशिक काल में भारत-चीन कूटनीतिक संबंधों के मकड़जाल और जटिलताओं को असाध्य समस्या के रूप में उल्लेखित किया है, जिन्होंने आगे चलकर भारत के लिए जटिल समस्याएं उत्पन्न कीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात के काल से ही चीन की बढ़ती महत्वाकांक्षाओं ने भारत-चीन संबंध में निरंतर संघर्ष को गति प्रदान की, जिससे भारत-चीन सम्बन्ध जटिल बन गए। शीत युद्ध के बाद से ही चीन की बढ़ती क्षेत्रीय, वैश्विक महत्वाकांक्षाएं, इरादे, एवं नीतियां रही हैं। चीन एक महाशक्ति के रूप में ऊंची उड़ान भरना चाहता है। लेकिन यहां भारत और चीन दोनों के अपने क्षोभ, टकराव, विवाद, और सहयोग के मिले-जुले समीकरण देखने को मिलते है। दोनों ही इक्कीसवीं शताब्दी की महाशक्तियां होंगी इसलिए भारत-चीन संबंध विश्व समुदाय का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। यही कारण है कि आज भारत-चीन संबंध शोधकर्ताओं का पसंदीदा विषय बन गया है। चीन की अपनी महत्वाकांक्षाएं और इरादे हैं जिनका विश्लेषण और मूल्यांकन करना शोधकर्ताओं के लिए जरूरी हो जाता है। लेखक ने इन्हीं बिन्दुओं को समेटते हुए पुस्तक को बारह अध्यायों में विभक्त किया है-

लेखक ने अपनी इस पुस्तक में पृष्ठभूमि के अंतर्गत इस बात को उजागर किया है कि प्राचीनकाल से ही यूरोप एवं एशिया के मध्य रेशम पथ पर स्थित पूर्वी तुर्किस्तान को उच्च कोटि के व्यापारिक केन्द्र होने की प्रतिष्ठा प्राप्त रही है जो कि भारत, तिब्बत, चीन, कोकंद और रूस के काफिलों का मिलन स्थल रहा है। औपनिवेशिक काल में ही लद्दाख और पूर्वी तुर्किस्तान ब्रिटिश कूटनीति के दायरे में उपस्थित हो गया था। इसी परिदृश्य में कूटनीतिक सीमा विवाद को निपटाने का उत्तरदायित्व ब्रिटिशों का था। भारत-चीन कूटनीतिक संबंध और सीमा विवाद का होना कुछ ही समय की बात थी। लेकिन तत्कालीन सीमा आयोग कश्मीर के राजा गुलाबसिंह और चीनियों के मध्य समझौता कराने में सफल नहीं हो सके। अन्ततः आज का चीन-भारत सीमा संघर्ष इसका ही परिणाम है।

प्रथम अध्याय में लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि औपनिवेशिक काल के प्रारम्भ में ही ब्रिटिश अधिकारियों ने भूटान के सामरिक महत्व को भाप लिया था जो कि चीन व तिब्बत से सम्बंध स्थापित करने की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में है। ब्रिटिश यह समझ चुके थे कि भूटान ही भारत-चीन कूटनीतिक संबंधों के चक्रव्यूह में प्रवेश करने का प्रथम द्वार है। अगले द्वार कश्मीर-लद्दाख, सिक्किम, गिलगिट, पूर्वी तुर्किस्तान, पामीर तथा तिब्बत भी इसकी परिधि के अगले पड़ाव में आ सकते थे। अतः यह सब औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश महत्वाकांक्षा को दर्शाता है।

द्वितीय अध्याय में लेखक ने लार्ड मेयों की नीति पर प्रकाश डाला है। वास्तव में लार्ड मेयो ने सर जॉन लारेन्स की नीति को अप्रभावी माना क्योंकि वे मध्य एशिया में रूस के बढ़ते प्रभाव को नहीं रोक सके। लार्ड मेयो ने ब्रिटिश हित को साधने में जॉन लॉरेन्स को असफल माना। इससे मध्य एशिया में ब्रिटिश प्रतिष्ठा को बड़ा आघात लगा। वायसराय लार्ड मेयो ने पूर्वी तुर्किस्तान व चीन तक मित्रों और स्वतंत्र राज्यों की एक पेटी बनाने का पथ प्रशस्त किया ताकि रूसी और ब्रिटिश क्षेत्रों के बीच अपने से प्रभावित परन्तु स्वतंत्र राज्यों की ऐसी श्रृंखला तैयार कर स्थापित हो सके जो एक ऐसे कुशन की तरह दोनों साम्राज्यों के बीच सीधे सम्बन्ध की समस्याओं को कम कर सके। परन्तु उसे इस प्रकरण में पूर्णतया कूटनीतिक पराभाव प्राप्त हुआ। इस कूटनीतिक चक्रव्यूह में ब्रिटिश निरंतर फंसते चले गये और रूस के साथ-साथ चीन भी उसकी परिधि में आ गया। अतः चीन

का महत्व बढ़ गया।

अध्याय तृतीय को लेखक ने इस तरह से समझाने का प्रयास किया है कि इससे शोधकर्ताओं को उपरोक्त समस्याओं की जड़ को जानने में सहायता मिलेगी। इसमें तत्कालीन ब्रिटिश अधिकारियों जिनमें लार्ड लिटन, लार्ड डफरिन, लार्ड लैंसडाउन, लार्ड कर्जन आदि ने ब्रिटिश राज्य के प्रभाव में वृद्धि करने का भरसक प्रयास किया। लेखक ने औपनिवेशिक काल में कश्मीर की समस्या, दर्दिस्तान की समस्या, सिक्किम की समस्या एवं पामीर की समस्या आदि पर प्रकाश डाला है। यह सभी संघर्ष के क्षेत्र बने हुए थे। पूर्वी तुर्किस्तान और कश्मीर की भी अत्यंत संकट ग्रस्त स्थिति हो गयी थी। वास्तव में ब्रिटिश सरकार मध्य एशिया में रूस और चीन के बढ़ते प्रभाव को भी नियंत्रित करना चाहती थी। लेकिन व्यापार को गति प्रदान करने के लिए भारत की औपनिवेशिक सरकार व इग्लैण्ड की सरकार चीन से अच्छे संबंध चाहती थी साथ ही इससे रूस के विरूद्ध एशिया में ब्रिटिश सरकार को मित्र प्राप्त हो सके। चीन ने 1890 की कलकत्ता संधि को महत्वपूर्ण माना और तिब्बत-सिक्किम के बीच सीमा रेखा को चीन ने स्वीकार किया। ब्रिटिश चाहते थे कि चीन अपनी सीमा कश्मीर तक ले आए जिससे रूस को ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्र में प्रवेश का अवसर प्राप्त न हो सके। इस समय ब्रिटिश सरकार अपना दायित्व का निर्वाह सजगता से नहीं कर सकी और क्षेत्र में कई संघर्ष व समस्याएं बनी रही। जिसने भविष्य में क्षेत्रीय संकटों को जन्म दिया।

अध्याय चतुर्थ में लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि ब्रिटिश अधिकारी लार्ड कर्जन ने तिब्बत में सैन्य हस्तक्षेप व तिब्बत पर आक्रमण की नीति अपनाकर ब्रिटिश प्रभुत्व जमाने का असफल प्रयास किया। लेकिन औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश और चीन के बीच तिब्बत पर प्रभुत्व जमाने और समस्या सुलझाने में रूस का पेंच फंस गया था। रूस तो दलाई लामा को मानता था लेकिन ब्रिटिश और चीनी उन्हें स्वीकार नहीं करते थे। अंतः एक समझौते के माध्यम से भारत की औपनिवेशिक सरकार को तिब्बत से संपर्क चीन के माध्यम से ही करना था। अर्थात तिब्बत पर चीन की संप्रभुता प्राप्त हो गयी थी। तिब्बत समस्या भारत-चीन कूटनीतिक संबंधों में सम्प्रभुता के संघर्ष के रूप में सामने आई। भारत के स्वतंत्र होने तक तिब्बत में चीन की सम्प्रभूता विद्यमान थी चूंकि भारत की ब्रिटिश सरकार ने तिब्बत में चीन की सम्प्रभूता को स्वीकार कर उसे मान्यता दे रखी थी।

अध्याय पंचम में लेखक ने यह दर्शाया है कि हिमालय के पार तिब्बत व चीन की सीमाओं से नेपाल जुड़ा हुआ है। नेपाल के शासक नहीं चाहते थे कि ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यापार की ओट में नेपाल में राजनीतिक व सैनिक हस्तक्षेप का पथ प्रशस्त करें क्योंकि भारत का उदाहरण उनके समक्ष था। नेपाल में सदैव तिब्बत व चीन से राजनीतिक व व्यापारिक संबंधों को महत्व दिया और प्रभाव बनाया लेकिन उसने कभी ब्रिटिशों की नाराजगी की परवाह नहीं की। अतः नेपाल के साथ तिब्बत व चीन के संबंधों को ब्रिटिश सरकार पसंद नहीं करती थी।

अध्याय षष्ठम में लेखक के द्वारा इस बात को स्पष्ट किया गया है कि 1914 में त्रिमुत्री सम्मेलन में एक समझौते के अनुसार तिब्बत पर चीनी अधिपत्य को स्वीकार कर लिया गया लेकिन इसमें यह स्पष्ट किया गया था कि चीन तिब्बत के शासन प्रबंध में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा और न ही सैनिक व असैनिक कर्मचारियों को रखेगा। भूटान के पूर्व से 140 कि.मी. तक तिब्बत और उत्तरपूर्वी भारत के बीच सीमा निर्धारित की गयी। यह सीमा मैकमोहन रेखा के नाम से जानी जाती है। इस समय जहां चीन अपने आंतरिक संकटों में उलझा था वहीं तिब्बत व भारत सरकार के संबंध मैत्रीपूर्ण बने रहे।

सप्तम अध्याय में लेखक ने भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत की चीन के प्रति कूटनीति को स्पष्ट किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने चीन के प्रति मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण का परिचय दिया। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का दृष्टिकोण चीन के प्रति सदैव सहानूभूतिपूर्ण रवैये के चलते चीन जन गणतंत्र को मान्यता दी थी। सुरक्षा परिषद में भी चीन को उचित स्थान दिलवाने पर बल दिया। लेकिन चीन द्वारा तिब्बत पर अधिकार करने के बाद भारतीय कूटनीति में क्षूब्धता आई। 1954 में भारत और चीन के बीच एक संधि पर हस्ताक्षर के बाद भारत को तिब्बत पर चीन के अधिकार को स्वीकार करना पड़ा। चीन ने भारत के साथ लगी सीमा रेखा (मैकमोहन रेखा) को भी मान्यता नहीं दी। दूसरी और भारत का दलाई लामा के प्रति प्रेम और सहानुभूति चीन को पसंद नहीं थी, क्योंकि चीन से विवाद के बाद दलाई लामा का भारत में शरण लेना चीन को सहन नहीं हुआ। चीन ने भारत पर तिब्बत में हस्तक्षेप का आरोप लगाते हुए भारतीय सीमा पर सैनिक हलचल प्रारंभ कर दी। वास्तव में एक गंभीर पूर्व संकेत के रूप में लेखक ने इसमें चीन के वास्तविक कूटनीतिक दांव पेंच एवं

1962 के व्यापक अतिक्रमण का संकेत माना।

अष्टम एवं नवम अध्याय में लेखक ने इस बात को स्पष्ट किया है कि 1960 के अंत तक जवाहरलाल नेहरू को यह प्रतीत हो गया था कि चीन के मूल व्यवहार और उसके आसपास की परिस्थितियां खतरनाक हैं। चीन भी भारत को यह दर्शाने लगा था कि यदि भारत चीन के विरूद्ध गतिविधियों में संलिप्त रहता है तो चीन के पास विकल्प खुले हैं। चीन ने भारत पर 1962 में आक्रमण करके भारत के नैतिकता और शांति प्रयासों पर कुठाराघात कर भारत-चीन संबंधों में विश्वास को नेस्तनाबूत कर दिया। चालबाज चीन ने सकारात्मक रूख एवं मैत्रीपूर्ण संबंध की चाह वाले दोस्त भारत की पीठ में छूरा घोंपा था। चीन के इस कदम से नेहरू को गहरा आघात लगा, उनकी मृत्यु के पीछे यह भी एक कारण रहा। नेहरू के पश्चात भारतीय विदेश नीति पर चीनी कारक की छाया स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगी। 1962 में भारत-चीन युद्ध के उपरान्त भारत ने चीन को संतुलित करने एवं शत्रुतावृत्ति को कम करने के लिए प्रेरित किया। भारत ने कूटनीतिक रूप से सोवियत संघ से सहयोग बढ़ाना प्रारम्भ किया। भारतीय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और फिर राजीव गांधी ने चीन के साथ सहयोग बढ़ाने के सार्थक कूटनीतिक प्रयास किये, जिससे भारत-चीन के मध्य राजनीतिक एवं व्यापार संबंध विकसित होते गये। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में भारतीय कूटनीति कई चुनौतियों से जूझ रही थी। किन्तु सोवियत संघ के विघटन के बाद उससे अलग हुए मध्य एशिया के दूसरे देश भी भारत के अच्छे मित्र सिद्ध हो सकते है। चीन और पाकिस्तान का बढता राजनयिक और न्यूक्लियर गठजोड़ भारत के लिए चिन्ताजनक बन गया था। वहीं भारत ने परमाणु परीक्षण कर अपने पड़ोसियों के आशंकित खतरे से सतर्कता का संदेश दिया। लेकिन चीन ने एशिया में अपने प्रभूत्व को बढ़ाने के लिए और भारत के दावों को समाप्त करने के लिए भारत को चारो तरफ से घेरने की कूटनीति शुरू कर दी है। इसलिए चीन अपने एवं भारत के पड़ोसियों के साथ मिलकर विभिन्न आर्थिक गलियारों का निर्माण करने के साथ-साथ नौसैनिक सुविधायें जुटा रहा है।

दशम अध्याय में लेखक ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि 1962 के युद्ध के बाद से दोनों देशों के मध्य संबंध लगभग तनावपूर्ण ही रहे हैं। कई बार भारत व चीन के मध्य सीमा विवाद गम्भीर रूप से प्रस्फूटित हुये हैं। जिससे दोनों के देशों के बीच अविश्वास की भावना बढ़ी है। चालबाज चीन बार-बार सीमा विवाद उत्पन्न करता है और शांति वार्ताओं के समय भी भारत को चिकोटी काटता है। वह भारत पर एक मनोवैज्ञानिक युद्ध की छाया को हमेशा बनाए रखना चाहता है। चीन के इस दृष्टिकोण से भारत-चीन संबंध जटिल हो गये हैं। भारत व चीन के प्रमुख सीमा विवादो नाथूला विवाद, अरूणाचल प्रदेश में चीनी हस्तक्षेप, लद्दाख विवाद, डोकलाम में चीन द्वारा सड़क निर्माण विवाद, चीन की प्रमुख बेल्ट व सड़क परियोजनायें, मैकमोहन रेखा, अक्साई चीन, पाक अधिकृत कश्मीर, ब्रम्हपुत्र बांध, तिब्बत व दलाईलामा, हिन्द महासागर, दक्षिण चीन सागर, आदि को इस अध्याय में समेकित करने का प्रयास किया है।

ग्यारहवें अध्याय में लेखक ने चीन की अति महत्वाकांक्षी परियोजना वन बेल्ट-वन रोड़ के उद्देश्य को उल्लेखित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि किस तरह अमरीका को पछाड़कर चीन एक महान विश्वव्यापी आर्थिक महाशक्ति बनना चाहता है। वह इसके माध्यम से एशिया, अफ्रीका और यूरोप तक अपनी पहुंच बनाना चाहता है। इसके लिए वह सिल्क रोड़-इकोनॉमिक बेल्ट और मेरीटाइम सिल्क रोड़ के माध्यम से विश्व के कई देशों को जोड़कर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है। चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा इस परियोजना का ही हिस्सा है। भारत द्वारा पी.ओ.के. में इस गलियारे को स्वीकार करने का मतलब इस पर अपना अधिकार छोड़ने जैसा होगा।

लेखक ने इस पुस्तक में विषय से संबंधित नवीन अनुसंधानों और नवीन सामग्री, नवीन विचारों का संयोजन, संग्रंथन और नवीन आंकलन कर विवेचन किया है। इस पुस्तक में उपयोगी एवं सारगर्भित पाठ्य सामग्री है। यह पुस्तक लेखक के विस्तृत एवं गहन अध्ययन का परिणाम है। यह पुस्तक भारत-चीन संबंधों पर केन्द्रित शोध कार्य एवं इसमें रूची रखने वाले शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। अतः हम लेखक को उनके इस महत्वपूर्ण योगदान की सराहना करते हुए भविष्य में भी इसी तरह लेखन कार्य करने के लिए शुभकामनाएं प्रेषित कर उनके स्वस्थ एवं दीर्घायू होने की कामना करते है।

समीक्षक

डॉ. वीरेन्द्र चावरे

प्राध्यापक

राजनीति विज्ञान एवं लोकप्रशासन अध्ययनशाला

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, (मध्यप्रदेश)

डॉ. राकेश कुमार स्मृति शोध पुरस्कार

डॉ. राकेश कुमार की स्मृति को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए **'समाज विज्ञान विकास संस्थान', बरेली (उ.प्र.)** ने यह निर्णय लिया था कि शोध अध्येताओं को अच्छे शोध-लेख लिखने के लिए प्रेरित करने हेतु शोध पत्रिका **''राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा''** में शोध अध्येताओं द्वारा लिखे गये वर्ष के दोनों अंकों के शोध पत्रों को विशेषज्ञों के द्वारा मूल्यांकित कराकर सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र लिखने वाले शोध अध्येता को **'डॉ. राकेश कुमार स्मृति शोध प्रशस्ति पत्र'** तथा **रू. 2100/-** मूल्य की शोध सहायक पुस्तकें पुरस्कार स्वरूप संस्थान द्वारा प्रदान की जायेंगी।

संस्थान के उपर्युक्त निर्णय के क्रम में वर्ष 2018 के दोनों अंकों में शोध अध्येताओं द्वारा लिखे गये शोध पत्रों का विद्वानों द्वारा मूल्यांकन कराकर वर्ष 2018 के सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र लिखने वाले शोध अध्येता की घोषणा की जाती है।

सुश्री रितिका सिंह, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, डी.एस.बी. परिसर, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड) को उनके शोध पत्र ''बाल संम्प्रेक्षण गृह - एक समाशास्त्रीय अध्ययन'' को 2018 का डॉ. राकेश कुमार स्मृति शोध पुरस्कार प्रदान किया जाता है। उन्हें एक प्रशस्ति पत्र तथा रू. 2100/- मूल्य की पुस्तकें प्रदान की जाती हैं।

संस्थान के इस कार्य में प्रोफेसर विभा मुकेश, दर्शनशास्त्र विभाग, हे.न. बहुगुणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय श्रीनगर (उत्तराखण्ड), प्रोफेसर पी.के. सिन्हा, समाजशास्त्र विभाग तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार) तथा डॉ. मंजू पंवार, विभागाध्यक्ष समाजकार्य विभाग, भगत फूल सिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत (हरियाणा) ने प्रशंसनीय सहायता प्रदान की है। संस्थान इन विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करता है।

डॉ. जे.एस. राठौर
सचिव
समाज विज्ञान विकास संस्थान, बरेली

राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा

स्वत्वाधिकार का घोषणा पत्र

फार्म - 4 (नियम 8)

1.	प्रकाशन का स्थान	:	समाज विज्ञान विकास संस्थान 29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005
2.	प्रकाशन की अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. जे.एस. राठौर
	क्या भारतीय नागरिक हैं		हाँ
	पता		29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005
4.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. जे.एस. राठौर
	क्या भारतीय नागरिक हैं		हाँ
	पता		29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005
5.	संपादक का नाम	:	डॉ. जे.एस. राठौर
	क्या भारतीय नागरिक हैं		हाँ
	पता		29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005
6.	स्वामी का नाम	:	समाज विज्ञान विकास संस्थान, 29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005

मैं डॉ. जे.एस. राठौर एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

(डॉ. जे.एस. राठौर)
प्रकाशक के हस्ताक्षर

श्रद्धांजलि

वर्ष 2019 में पत्रिका के निम्नलिखित तीन आजीवन सदस्यों का असामयिक निधन हो गया। पत्रिका परिवार उनको श्रद्धांजलि अर्पित करता है तथा इस असीम दुःख की घड़ी में ईश्वर से प्रार्थना करता है कि उनके परिजनों को इस दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करें।

1. डॉ. अमित अग्रवाल, एसोशिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र, एम.बी. (पी.जी.) कालेज, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)
   जन्म 29.11.1973 - मृत्यु 18.03.2019
2. डॉ. साधना अग्रवाल, अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग एवं प्राचार्या गिन्दो देवी गर्ल्स (पी.जी.) कालेज, बदायूं (उ.प्र.)
   जन्म 09.07.1957 - मृत्यु 11.04.2019
3. डॉ. अनुराग सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, के.के. कालेज इटावा (उ.प्र.)
   जन्म 02.10.1978 - मृत्यु 08.04.2019

सचिव
समाज विज्ञान विकास संस्थान, बरेली